भूमिका

एक समय की बात है कि मै कलकत्ते के एक प्रसिद्ध ग्रन्थागार मे किसी से वार्तालाप कर रहा था। अन्य विषयो के उपरात लेखन-कला और लेखको पर भी चर्चा होने लगी। एक सज्जन ने कहा कि हम भारतीयो को अग्रेजी पढते इतने दिन हो गये फिर भी हम ऐसे बहुत कम लेखक तैयार कर सके, जिनकी रचना विदेशो मे सम्मान पा सके। उनका प्रतिवाद करते हुए एक दूसरे सज्जन ने कहा कि ऐसी बात नही है। दूर की जाने दीजिये। कलकत्ता-विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डा० अधार-चन्द्र दास ऐसे सुयोग्य लेखक हैं कि इनकी पुस्तक, "ऐन इन्ट्रोडक्शन टु लॉजिक" की अमेरिका मे भी उतनी ही बिक्री होती है, जितनी भारत मे। तत्क्षण मेरे मन मे यह बात आई कि जब इतनी उत्तम पुस्तक है, तो इससे हिन्दी भाषा-भाषियो को भी क्यो न लाभान्वित कराया जाय। सुयोग भी अच्छा मिल गया। प्रो० सुविमल मुखर्जी, कलकत्ता विश्व विद्यालय मे राजनीति के लेक्चरर और मेरे भूतपूर्व सहयोगी, ने डाक्टर अधारचन्द्र दास से मेरा परिचय करा दिया और मैंने अनुवाद का कार्य प्रारम्भ किया। अनुवाद के पूर्व डा० अधारचन्द्र दास ने पुस्तक का सशोधन भी कर दिया। जिससे प्रथम संस्करण मे जो त्रुटियाँ रह गई थी वे अनुवाद मे नही आने पाई। दूसरी नई चीज यह है कि प्रत्येक अध्याय के अन्त मे "अनुशीलन" के रूप मे सभी महत्वपूर्ण प्रश्न दे दिये गये है, जहाँ कही आवश्यक समझा गया वहाँ उत्तर के लिये समुचित सकेत भी दे दिया गया है। इस पुस्तक की तीसरी विशेषता यह है कि अन्त मे भारतीय न्याय-पद्धति पर भी एक अध्याय दे दिया गया है। अन्त मे अग्रेजी टेकनिकल शब्दो के हिन्दी पर्यायी भी दे दिये गये हैं। जहाँ तक बन पडा है, भाव और शैली को अक्षुण्ण रखते हुये भाषान्तर किया गया है।

इस पुस्तक मे लेखक ने निगमन और न्यायशास्त्र के सभी महत्वपूर्ण प्रश्नो का इस ढंग से विवेचन किया है, कि व्याख्या वोधगम्य होने के कारण विषयारम्भ करने वालों के लिये भी पूर्ण रूप से लाभप्रद है, साथ ही नवीन दृष्टान्त, नई विवेचनशैली और नया दृष्टिकोण विषय के अनुभवी विद्यार्थियो के लिये भी लाभप्रद है।

सुयोग्य लेखक ने इस पुस्तक मे निगमनात्मक न्याय की सरल व्याख्या प्रस्तुत की है। "पहले न्यायशास्त्र की परिभाषा दी गई है। कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाओ का विवेचन किया गया है और अन्त मे अपना सुझाव दिया गया है। फिर एक-एक करके उन सभी समस्याओ पर विचार किया गया है जो माध्यमिक परीक्षा के सिलेवस को पूरा करती हैं। जहाँ तक हो सका है, उदाहरण नित्य प्रति के जीवन के व्यवहार से चुने गये हैं, जिससे न्याय का हमारे नित्यप्रति के अनुभव और जीवन से पूरे सम्बन्ध की प्रतीति कराई गई है। आशा की जाती है कि जिस भाँति मूल पुस्तक विद्यार्थियो तथा सामान्य पाठको के लिये उपयोगी सिद्ध हुई है उसी भाँति यह पुस्तक भी उपयोगी सिद्ध होगी।

—अनुवादक

विषय-सूची

अध्याय ३
चिन्तन के नियम

अध्याय ४
पद और निर्णय-वाक्य

अध्याय ५
पदों का श्रेणी विभाग

अध्याय ६

अभिधेय

अध्याय ७

लक्षण या परिभाषा

अध्याय ८

विभाजन

अध्याय ९

निर्णय वाक्यो का तात्पर्य

अध्याय १०

निर्णय वाक्यो में प्रकारान्तर

अध्याय ११

निर्णय वाक्यो का चतुरंग विधान

अध्याय १२

निर्णय वाक्यो की प्रतिपक्षिता

अध्याय १३

अनुमान

अध्याय १४

अव्यवहित अनुमान

अध्याय १५

न्याय

अध्याय १६

न्यायात्मकतारहित अनुमितियाँ और उभयपाश

अध्याय १७

अध्याय १८
न्याय का कार्य और मूल्य

अध्याय १९
तर्काभास

अध्याय २०

अध्याय २१
भारतीय अनुमान के सिद्धान्त

पारिभाषिक शब्दावली

Absolute–निरपेक्ष ।
Absolute idea–अमूर्त भावना ।
Abstract–अमूर्त ।
Absurdity–असगति ।
Accidental–आनुषगिक ।
Agitation–उद्विग्नता, विक्षोभ ।
Affirmative— अस्तित्वदर्शक, विधिरूप ।
Ambiguous—सन्दिग्ध, द्वयर्थक ।
Analogus–सादृश्य, अनुधर्म ।
Analytical judgment–विश्लेषक निर्णय निर्देश ।
Analytical proposition–विश्लेषक निर्णय वाक्य ।
Anticipation–अग्रज्ञान ।
Aphorism–सूत्र ।
Application–उपनय, प्रयोग ।
Appeal–सम्वेदन ।
Appreciation—गुणविवेचन, गुणोत्कर्ष ।
Apprehension–धारणा, भीति, आलोचन ।
Appropriativeness–उपयुक्तता
Apriori–सहजोपलब्ध, स्वत सिद्ध।
Aptitude–योग्यता ।
Archaic–प्राचीन, आर्ष ।
Argument–तर्क, नय, न्याय, दलील
Argumentation–तर्क - वितर्क, हेतुपन्यास ।
Argumentam ad crumenon प्रलोभन न्याय ।
Argumentam ad baculum–शस्त्रन्याय, डडेका न्याय ।
Argumentam afortiori–न्याय (सुतरा, नतरा)
Argumentam ad ignorantium–प्रवचन न्याय ।
Argumentam ad hominum व्यक्तिगत दोष दर्शन न्याय ।
Argumentam ad vericundiam–आप्तवचन-न्याय ।

Arrangement-व्यवस्था।
Arithmetical progression-व्यक्त श्रेणी।
Art-शिल्प, कला।
Auditory Art-श्रव्य-कला।
Visual Art-दृश्य कला।
Usefull Art-उपयोगी कला।
Articular sensation-ग्रथिज, वेदन।
Articulate-ग्रथिज, स्पष्ट।
Ascent-आरोहण,।
Ascertainment-निर्णय, निर्धारण, निश्चय।
Aspect-अवस्था, रूप, अश।
Aspiration-स्पृहा।
Assertion-प्रतिपादन. कथन।
Assimilation-एकीकरण।
Association-साहचर्य्य सस्कार।
Association of ideas-विचार, सगति, प्रत्यय सम्बध, भावना-सगति।
Association of contiguity-साहचर्य्य, संगति।
Association by contiguity-सामीप्य निवन्धन।
Association of similarity-सादृश्य सगति।
Free-association-अतत्रसाहचर्य्य
Associational-अनुषगी।
Law of association साहचर्य्य धर्म, नियम।
Attention-मनोयोग।
Expectant attention--पूर्व सिद्धि अवधान।
Passive attention—उदासीन लक्ष्य।
Attribute-गुण, धर्म।
Attitude-मनोवृत्ति।
Augment-वृद्धि।
Authority complex-अंकुश ग्रथि
Automatism-स्वयचर्य्या।
Average-मध्यममान।
Balance-तुला, समतुलन, समावस्था
Begging the question-साध्याभ्युपगम।
Being-सत्
Non-being-असत्
Between the horns of the dilema-उभय सकट।
Body-पिण्ड।
Bonafides-नेकनीयती।
By product-उपसर्ग।
Call-आह्वान
Cardinal-मूलभूत।
Casual-अनियमित, आकस्मिक।

Categorematic — निरन्वय, स्वाधीन ।
Categorecal–निरपेक्ष, अनौपाधिक
Categorecal proposition—निरन्वय निर्देश, निरपेक्षवाक्य, शुद्ध विधान ।
Categorecal imperative—निरपेक्ष विधि ।
Categorecal judgment–निरपेक्ष निर्णय ।
Cathorsis–रसोद्रेक ।
Cathoritic theory-परिष्कृतिवाद
Causation–कारणता, कार्य्य कारण भाव ।
Law of universal causation–कार्य्य कारण की विश्व व्यापकता का नियम।
Material cause–समवादि कारण, उपादान कारण।
Efficient cause–उत्पादक कारण
Intsrumental cause निमित्त कारण ।
Formal cause–असमवायि कारण
Centrifugal–केन्द्रापसारी ।
Cessation–विराम, उपशम, निवृत्ति
Character–शील-प्रकृति ।
Circulus in Definiendo—परिभाषा चक्रक ।
Circulus in probando–प्रमाण चक्रक ।
Classics–आकर ग्रन्थ ।
Code–सहिता ।
Cogitation–सचिन्तन ।
Cognition–उपलब्धि, अनुभवसिद्ध ज्ञान ।
Cohesion of ideas–प्रत्यय सबध
Coherence–सश्लेष ।
Coincidence–समानुपात ।
Collective term—सामाहार वाचक पद ।
Common-sense–व्यवहार बुद्धि ।
Complex–ग्रथि, साकर्य्य ।
Component–आरम्भक अवयव।
Fallacis of composition & division–सकलन और व्यवकलन दोष ।
Concept–बोध भावना ।
Conceptual process–धारणा प्रक्रिया ।
Conclusion—उपसहार, निगमन वाक्य ।
Concordance–समन्वय ।
Concrete–मूर्त ।
Concurrence-समापात, एकमति
Conduction–प्रवाहन ।

Conference–मत्रणा परिषद ।
Confirmity–अनुरूपता ।
Congenital–सहजात, पैदायशी ।
Congruity–सागत्य, सामजस्य ।
Conjugation–विभक्ति, सयोग ।
Conjunct–सश्लिष्ट ।
Conjunctive–सयोजक ।
Connotation—सामान्याभिधान, जातिबोधन ।
(Denotation–अभिधान)
Connotative–गुण बोधक ।
Conscious activity—चेतन व्यापार ।
Consciousness–चेतना, प्रज्ञाबुद्धि
Consecration–सस्कार, अभिमत्रण
Consequent–अनुवर्ती, परिणात्मक
Conservation–सरक्षण ।
Conservative–प्रगति-विरोधी ।
Conserve–रक्षण ।
Consilence of Induction–सिद्धातऐक्य, व्याप्तिपद ।
Consistency–पूर्वापर-सगति ।
Consonance–अनुरूपता ।
Constraint–नियमन, निरोध ।
Constructive–रचनात्मक, निर्माणात्मक ।
Constructive imagination–विधायक कल्पना
Consummation–निष्पत्ति ।
Contact sensation— संस्पर्श संवेदन ।
Contagion–स्पर्श सचार ।
Content–विषय ।
Contingent–औपाधिक ।
Continuity of interest—रसनिर्वाह ।
Contraction–संकोचन ।
Contradiction–प्रतिवाद, विरोध
Contradictory–व्याघातक ।
Contrary–प्रतिकूल ।
Controvesial–विवादास्पद ।
Convention–रूढ़ि, लोकाचार ।
Conventional–रूढिगत ।
Convulsion–सक्षोभ, कंप ।
Converted–परिवर्तनीय, प्रतिज्ञा
Coordinate–समन्वय ।
Copula–(उद्देश्य विधेय)संयोजक ।
Corollary–उपसिद्धात ।
Corporation–संघ ।
Correlation–अन्योन्य सम्बन्ध ।
Correlative–परस्परापेक्ष ।
Correspondence–अनुरूपता ।
Conter part–प्रतिरूप ।
Creative faculty–निर्माणशक्ति
Crisis–संकट, निर्णयावसर ।

Criticism of interpretation निरूपणात्मक विवेचन ।
Critique–मीमासा ।
Crossdivision—संकर मिश्रण, सकर-विभाग ।
Culpable–निन्दनीय ।
Cumulative–विवर्धित ।
Curiosity–कुतूहल ।
Cutaneous-sensation—त्वचा-सवेदन ।
Cynics–मानव द्वेषी ।
Decay–अपक्षय ।
Decision–(निर्णय, निश्चय) फैसला ।
Deduction–परामर्शानुमान ।
Deductive–निगमनात्मक, निर्णय प्रयोजक ।
Deductive logic–निगमन-शास्त्र
Deductive method–निगमन पद्धति ।
Definition–व्याख्या, परिभाषा, लक्षण, निर्देश ।
Definite–व्यक्त, नियत, स्पष्ट निर्णीत ।
Dejure–न्यायत
Demontratedtruth— प्रज्ञपित सिद्धात, प्रमाणित अर्थ ।

Demonstration–उपपादन, प्रदर्शन
Demonstrative—प्रतिपादक, प्रदर्शनकारी, उपपादक ।
Denomination–नाम, अभिधान
Denominative–संज्ञापक, गुण-वाचक
Denotation–व्यक्ति-बोधन, विशेपाभिधान, व्यक्ति विशिष्ट ।
Derivative–व्युत्पन्न, साधितशब्द
Deviation–व्यत्यय, मार्गच्युति ।
Dialectic–तर्क ।
Didactice–उपदेशात्मक ।
Dictum–आप्त वचन ।
Differenciation–विभेदन, व्यावृत्ति
Differantia–व्यावर्तक धर्म
Dilemma–पाश, नदी व्याघ्र न्याय, उभयतः पाशरज्जु न्याय ।
Discipline– नियमन, अनुशासन, सयमन, तत्रनिष्ठा ।
Discrepancy–असगति ।
Disjunctive–वैकल्पिक ।
Disjunctive judgment–वैकल्पिक निर्णय ।
Dissolution–विच्छेद ।
Distinctive–व्यवच्छेदक ।
Distribution–अवच्छेद विभाग, बाट
Dogmatism—हठोक्ति,

Element–असकारि तत्व, वीज-भूत (अश), मूलभूत, पच महाभूतात्मक ।
Elimination–अपनयन, दूरीकरण
Emanation–निःसरण, विवर्त, सृष्टि
Emotion–भाव, विकार, आवेग मनोविकार, उर्मि, अत क्षोभ, लागणी वृत्ति ।
Empirical–अनुभव मूलक ।
Vital-energy–जीवन-बल ।
Enthymeme–अवयव हीन वाक्य, लुप्तावयव तर्क ।
Enunciation–(उद्देश्य) कथन ।
Episyllogism–उपजीवक अनुमान
Equilibrium–साम्यावस्था ।
Equivocal–द्वयर्थक ।
Esoteric–रहस्यमय, गुप्त ।
Essential–तात्त्विक, मूलभूत ।
Essentialattribute– स्वाभाविक धर्म ।
Ethical–नैतिक ।
Excludedmiddle—मध्यमनिरास न्याय ।
Exhaustive–सर्वग्राही ।
Extensive syllogism–विस्तारक अनुमान ।
Fact–(तथ्य) तत्त्व, प्रमेय ।
Faculty–विशेष बौद्धिक शक्ति ।
Faith–निष्ठा ।
Fallacious reasoning–तर्काभास
Fallacy–हेत्वाभास, पक्षाभास, सिद्धान्ताभास, निग्रहस्थान ।
" of Accident–सोपाधिक हेत्वाभास ।
False Analogy–सादृश्याभास ।
Fancy–बुद्धि-विलास ।
Feeling–सवेदन ।
Figure–(वाक्य-प्रकार) निगमन अनुमानका मूलभूत आकार ।
Formal—विधिवत्, औपचारिक, नियमानुरूप, (रीत्यानुरूप) (वाह्य आकृतिगत) प्राकारक ।
Formal logic–रूपानुमान, प्राकारक न्याय ।
Formalism–रीत्यानुसारिता ।
Formula–सूत्र ।
Forum–न्यायसभा, न्यायाङ्गण ।
Fundamental–आधारभूत, प्रधान, मौलिक ।
Fundamental principles–मूलतत्त्व ।
" cause–मूलकारण
Fusion–समिश्रण ।
General–सामान्य, व्यापक ।
General consciousness–सामाजिक सवित ।

General concept–सामान्य भावना
" idea " धारणा
" inference—सामान्य अनुमान।
" term—सामान्यवाचक पद।
Generalisation–व्याप्ति निर्देश।
Generic–जाति-सम्बन्धी।
Generic property–जाति धर्म, लक्षण।
Harmoney–स्वर साम्य, सुसंगति।
Heredity–आनुवंशिक, कुल-क्रमागत
Hereditary–वंशपरम्परा, वंशानुगत
Hierarchy–विषम-धार्मिक।
Hetrogeneous–अनेक जातिक।
Homogeneous—एक जातिक, समधर्मक।
Hypothesis–अनुमानाश्रय, कल्पनाश्रय।
Hypothetical inference–कल्पना-सम्भावनावाद, अभ्युपगम सिद्धान्त तर्क।
Working Hypothesis–काम चलाऊ, कल्पनाश्रय।
Hypothetical–अभ्युपगत, सापेक्ष।
Hypothetical proposition–सान्वय निर्देश वाक्य।
Hypostasis–वास्तवत्वारोपण।
Idea–भावना।
Image–प्रतिभास।
Identical–अभिन्न, एकरूप।
Identity proposion–अभिन्न विधान, तादात्म्य निर्णय।
Illation–तर्क, अनुमान, अनुमिति।
Illogical–असंगत।
Imagination–कल्पना।
Cognitive imagination–ज्ञान कल्पना, स्वरूप-कल्पना।
Immediate–प्रत्यक्ष, अव्यवहित।
Impassioned–आवेशयुक्त।
Imperative idea–अभिभावीप्रत्यक्ष
Impersonal judgment–निर्णय
Implicit–गर्भित, उपलक्षित।
Import–अर्थ, अर्थ-व्याप्ति-।
Import of proposition–निर्णय वाक्यार्थ।
Impulsive–आदेशात्मक।
Imputation–दोषारोपण।
Induction–आगमन, व्याप्तिग्रह।
Incidental–नैमित्तिक, प्रासंगिक।
Indirect inference–व्यवहितानुमान।
Individual–व्यक्ति, एकनिष्ट, अविभाज्य।

Induction-अनुमान, परीक्षा-प्रसूत, अनुमान, व्याप्ति-सग्रह, आगमन, व्याप्ति व्यापार, व्याप्ति-न्याय ।
Theory of Induction-व्याप्तिवाद ।
Inductive-आगमनात्मक ।
Inductive logic-व्याप्तिवाद, आगमन-शास्त्र ।
Inductive reasoning-व्याप्ति ग्रह तर्क ।
Inductive science - व्याप्ति निबन्धन शास्त्र ।
Inductive syllogism-न्यायानुमान ।
Inference-व्याप्ति ग्रहात्मक निगमन अनुमान ।
Explicit inference-स्पष्टानुमान
Inferential knowledge-अनुमति ज्ञान ।
Inferioritycomplex--निकृष्टता ग्रन्थि ।
Infima species-अपरतम जाति ।
Informal-अनौपचारिक ।
Inheritence-आनुवंशिकता ।
Inseparable accidence-अविश्लेष्य उपाधि ।
Instinct-सहजबुद्धि या वृत्ति ।
Regulative instinct-नियामक वृत्ति ।
Instinctive-प्रकृति-सिद्ध, स्वयप्रेरित ।
Institution-अनुष्ठान, सस्था ।
Intelligence-बुद्धि, मनीषा ।
Inter-action--अन्योन्यक्रिया, परस्पर क्रिया ।
Interdependence-अन्योन्याश्रय ।
Intrinsic & extrinsic-असली और बेरूनी, प्रकृत्या और विकृत्या ।
Introduction-प्रस्तावना, भूमिका, प्रवेशक ।
Introspection-अन्तर्दर्शन, आत्मपरीक्षण ।
Intuition-प्रत्यक्ष ज्ञान, सहजोपलब्धि (perception)
Intuitive-नैसर्गिक, साक्षात् ।
Intuitive knowledge-सहजज्ञान
Inventive faculty-नवनिर्माण शक्ति ।
Inversion-विपर्य्यय
Irrelevant conclusion-अप्रासगिक उपसंहार ।
Judging-निर्देश-व्यापार, निर्णय-व्यापार ।
Judgment-निर्णय, निर्णय बुद्धि, अवधारण, गुणदोष विवेचन, फैसला ।

Analytic—judgment विश्लेष्य निर्णय।
Synthetic-judgment संश्लिष्ट निर्णय।
Justification-समर्थन, औचित्य साधन।
Juxta position-सन्निधि,सन्निकर्ष
Logic-तर्कशास्त्र,न्यायशास्त्र, आन्वीक्षिकी विद्या, बुद्धि-व्यापार-शस्त्र या विद्या।
Logical-तर्क-सम्मत।
Logical mind-तर्क-बुद्धि, न्याय निष्णान्त बुद्धि।
Logical process-तर्क व्यापार।
Logical theory-तर्क-वाद।
Major term-साध्य।
Minor term-पक्ष।
Middle term-लिंग या हेतु।
Major premise—साध्यावाक्य,
Minor premistr-पक्ष वाक्य।
Mamal-स्तनपायी प्राणी।
Manifestation-अभिव्यक्ति, व्यंजन, प्रकटीकरण।
Master-piece-अन्यमणि।
Material cause-उपादानकारण।
Mediate-knowledge-परोक्षज्ञान
Mediate inference-मध्यानुमान, व्यवहित तर्क।

Metaphorical-लाक्षणिक।
Metaphysics-अध्यात्म शास्त्र।
Method of agreement-अन्वय पद्धति।
„ „ difference-व्यतिरेकपद्धति।
Method of concomitant variation-सहक्रमविकारपद्धति, सहभावी परिवर्त्तन पद्धति।
Method of residues-अवशेष पद्धति।
Middle term (मध्यपद) हेतु or लिंग।
Minor premise-पक्षायव वाक्य।
Minor term-पक्ष।
Mode-(रीति, विधि) प्रकार।
Modification-परिवर्त्तन।
Modus opeorandi-विधान क्रम
Modus ponendo tollens-साधन द्वारा वाधन।
Molecule-कण, अणु।
Moleculor-आणविक।
Mood-योग, वृत्ति, प्रकार।
Valid mood-यथार्थ योग, प्रमाण संगति प्रकार।
Reduction of mood-प्रकृति विन्यासि।

Moral sentiment–नीति भावना
Motive–प्रेरक हेतु ।
Name–नाम, सज्ञा।
Naming–अभिध।न ।
Negative–नकारात्मक, निषेधात्मक
Negative proposition–निषेधात्मक निर्णय वाक्य ।
Nomnaclature––निघन्टु, नाममाला ।
Norm–प्रीतमान, आदर्श, नमूना ।
Normativesceince––आदर्श निर्धारक विज्ञान ।
Notion–भावना ।
Nucleus–कोष केन्द्र, आकर्षण विन्दु
Object–उद्देश्य, विपय. व्यातार्थ, तात्पर्य्य, अर्थ ।
Objective logic–विषयात्मक तर्क शास्त्र ।
Objective method–पदार्थ रीति
Objective value–विनिमयापेक्षी मूल्य ।
Objectivity–विषयप्रधानता ।
Observation–निरीक्षण ।
Obversersion-अस्तिनास्ति रूपाँतर, प्रतिवर्त्तन, विपरीत करण ।
Opposite term–विरोधीपद ।
Opposition–विरोध, विपक्षता ।
Panorama–महादृश्य ।
Paradox–xविरोधाभास ।
Particular–अपूर्ण व्याप्ति ।
Particular proposition–एक देशीय वाक्य, अपूर्ण व्याप्ति वाला निर्देश, अल्पाग्राही निर्णय वाक्य ।
Perception–इन्द्रियगतज्ञान, दर्शन ।
Petitio principil–आत्माश्रय ।
Pluratity of cause–अनेक कारणवाद ।
Positive–अनभवात्मक, विधिरूप, प्रत्यक्षात्मक ।
Possession–स्वाम्य, धारण, आवेश
Port hoc ergo proper hoc–अतएव. तत्कारण ।
Postulate ––स्वय सिद्ध प्रमाण ।
Predicable–विधेयक ।
Predicability– विधेयता, विद्यमानता ।
Predicate–विधेयपद ।
Predication–विधान ।
Predicative–विधायक ।
Premise–निगमन समर्थक निर्णय वाक्य ।
Presence of mind–प्रसगावधान
Presumption–तर्क, सम्भावना, अटकल ।

Privative term–पर्य्युदासक पद।
Pros & cons–समक्ष और विपक्ष।
Problem–समस्या, साध्य, प्रमेय, पक्षप्रश्न।
Process–विधि, प्रक्रिया।
Process of abstraction–विकल्पन, प्रकृश।
Projection–प्रकल्पना, आरोपण, ग्राह्य आरोपण।
Propensity–प्रवणता।
Proposition– (प्रतिज्ञा) निर्णय वाक्य।
Prosyllogism–पूर्वानुमान।
Quality–गुण, धर्मभाव, स्वरूप।
Quantity–परिमाण, प्रचय, मात्रा, राशि।
Radiation–अश प्रसरण।
Rational–बौद्धिक।
Real-Proposition–वस्तु निर्देशक वाक्य।
Reason–वुद्धि-व्यापार।
Reasoning–ऊहापोह, बुद्धि-व्यापार न्याय।
Reciprocal–इतरेतर, अन्योन्य।
Reciprocal terms–परस्परानुवर्त्ती पद।
Reduction ad absurdum–अनिष्पपत्ति।
Reflex action–सहजक्रिया।
Regular–नियमानुसार।
Regulative–व्यवस्थापक, नियामक
Relative–सापेक्ष।
Retrospect–प्रत्यावलोकन।
Rudiment–अकुर।
Scholasticism–सम्प्रदायवाद, इस काल तर्क वाद आकारवाद की पराकाष्ठा पर पहुंच गया था।
Self-assertion–स्वप्रतिपादन।
Sensation–सवेदन, सस्कार वेदना, निर्विकल्प ज्ञान।
Sense of proportion औचित्य प्रमाणवुद्धि।
Simple apprehension–आलोचन साधारण ग्रहण।
Simple proposition– सरल निर्णय वाक्य।
Sorites–न्याय श्रेणी, मालानुमान, सन्धान शृखला, अनुमान शृखला।
Species–उपजाति।
Speculative–मननात्मक।
Stimulus–उत्तेजक, प्रवृत्तिकारक।
Stumlus response–विषय प्रतिक्रिया।
Subaltern genera-व्यापक-व्याप्य
Subcontraries–अनुविपरीत।

Subject–उद्देश्य, द्रष्टा, विषयी, अधिष्ठान ।
Subjective–आत्मगत, पृथक, अन्त - सृष्टि विपेयक ।
Subjective method– आत्म निरीक्षण पर निर्भर रीति ।
Subjectivity–स्वानुभववाद ।
Substance– द्रव्य, सत्त्व, तत्त्व, तत्त्वार्थ ।
Summum Bonum–निश्रेयस् ।
Susceptibility– ग्रहणक्षमता, भावग्राहीत्व ।
Syllogism–न्याय, पचावयव, निगमनात्मक अनुमान अनुमान ।
Cojnunctive Syllogism– सयोजक अनुमान ।
Disjunctive Syllogism–सकेत-पक्षान्तरानुमान ।
Constructive conjunctive Syllogism–अन्वयी सकेतानुमान ।
Disjunctive Syllogism–पक्षान्तरानुमान, विकल्पात्मक अनुमान ।
Prosyllogism–पूर्व अनुमान ।
Synthesis–सयोगीकरण, समन्वय ।
System–पद्धति, परिपाटी ।
System of notions–सामान्य-विन्यास ।
System of signs–लिंगपद्धति ।
Talent–मेधा, बुद्धि, प्रतिभा ।
Technique–हथोटी, कारागरी ।
Term–पद (धर्मी या धर्म सूचक शब्द)

Theory–सिद्धान्त, वाद, तर्क, उपपत्ति ।
Thinking–तर्क व्यापार, मनोव्यापार, मनन ।
Thought-process–विचार-प्रक्रिया
Transcendence–अतीत्व ।
Transference–स्थानान्तर ।
Transition stage–संक्रान्तिकाल ।
Treatment–निरूपण, चिकित्सा ।
Unconscious cerebration– अज्ञात मनोव्यापार ।
Understanding–प्रज्ञा ।
Uniformity–समरूपता ।
Universal proposition–सर्वदेशीय निर्देश, सामान्य निर्णय वाक्य, सर्वव्यापी वाक्य, सर्वतन्त्र निर्देश ।
Universality– सर्व - व्यापकता, सामान्यता ।
Fallacy of Universal conclusion from particuler–सर्वदेशीय निगमन का हेत्वाभास ।
Law of Universal causation –कारणता का नियम ।
Univocal–एकार्थक ।
Utilitarianism–उपयोगितावाद ।
Valid–सुसगत, प्रामाणिक ।
Validity–प्रामाणिकता ।
Verbal proposition–शब्द सबन्धी निर्णय ।
Vision–दर्शन, दृष्टि, आर्ष दृष्टि ।
Volition-इच्छा-व्यापार, सकल्प ।
Will–सकल्प शक्ति, सकल्प ।

न्यायशास्त्र परिचय

न्यायशास्त्र

अध्याय १

लक्षण और सीमा-विस्तार

१ न्यायशास्त्र (Logic) अथवा अन्वीक्षिकी विद्या का भिन्न-भिन्न भाँति से लक्षण दिया गया है

नैयायिको ने न्याय के भिन्न-भिन्न लक्षण (Definition) दिये है।

किसी वस्तु या विषय का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के लिए आवश्यक होता है कि सबसे पहले उसका लक्षण ज्ञात किया जाय। जब किसी वस्तु का नाम रखा जाता है, तब अभिप्राय यह होता है कि वह वस्तु अन्य वस्तुओ से पृथक् समझी जाय। न्यायशास्त्र के नाम का भी यही प्रयोजन है। इसका लक्षण ऐसा होना चाहिए, जिससे इसमे तथा अन्य विद्याओ में जो अन्तर है, वह स्पष्ट हो जाय। यद्यपि नैयायिकों (Logicians) ने न्यायविद्या के जो लक्षण दिये हैं, वे सर्वसम्मत नही है, तथापि यदि न्याय के वस्तु-विषय और अनुसन्धान क्षेत्र का निर्देश कर दिया जाय तो न्यायशास्त्र का लक्षण भली-भाँति स्थिर हो जाता है।

२ न्यायशास्त्र विज्ञान है या कला ?

पोर्टरॉयल (Port Royal) नैयायिको (Logicians) ने न्याय (Logic) को चिन्तन-व्यापार की उपयोगी कला माना है। अन्य बहुतेरो ने इन्ही का समर्थन किया है। किन्तु इनसे पृथक् ऐसे भी नैयायिक है, जो इसे मनोव्यापार (Thinking) का विज्ञान मानते है। मनोव्यापार एक बहुत व्यापक पद है। इसके अन्तर्गत ऐसे सभी मानसिक तत्त्वो और व्यापारो जैसे—बोध (Concept), भावना (Idea), अन्तर्प्रेरणा (Intuition), प्रत्यक्ष-अनुभूति (Perception), स्मरण (Memory), कल्पना (Imagination) और अनुमिति (Inference) का समाहार रहता है।

यदि कहा जाय—"न्यायचिन्तन (Thought) का विज्ञान है" तो यह लक्षण न्याय के क्षेत्र का लघन करके मनोविज्ञान के क्षेत्र मे दखल देता है। यदि यह लक्षण मान लिया जाय तो न्याय और मनोविज्ञान मे अन्तर बतलाना कठिन हो जायगा। मनोविज्ञान (Psychology) मनस्तत्व का विज्ञान है। इसमे मानसिक अवस्थाओ के मूलाधार का वर्णन तथा मनस्तत्त्वो के विकास-क्रम की व्याख्या रहती है। न्याय (Logic) न तो मानसिक अवस्थाओ के मूलाधारो से सम्बन्ध रखता है, न उनके विकास-क्रम की ही छानबीन करता है। वह केवल उसके विकसित रूप यानी तार्किक-प्रक्रियाओ (Reasoning) से ही सम्बन्ध रखता है। इस दृष्टि से न्याय (Logic) का क्षेत्र मनोविज्ञान (Psychology) के क्षेत्र से संकुचित है।

"न्याय (Logic) चिन्तन व्यापार का विज्ञान है।" इस लक्षण में अति व्याप्ति का दोष है।

३. क्या न्याय (Logic) केवल अनुमिति या परिणामोपलब्धि (Inference) की ही जाँच करता है ?

मिल प्रभृति नैयायिको (Logicians) का कहना है कि न्याय का वास्तविक साध्य विषय अनुमिति अथवा परिणामोपलब्धि (Inference)

ही है। उनका कहना है कि जिन प्रश्नो से न्याय का सरोकार है, उनका सम्बन्ध अनुमिति तथा उसकी नियमानुकूलता से ही है। इसलिए न्याय को विज्ञान के अन्तर्गत नही रख सकते। परन्तु इनका मत सर्वमान्य नही है। यह झगडा तै नही हो पाता कि न्याय किसकेअन्तर्गत रखा जाय--विज्ञान के या कला के? कुछ विद्वान कहते है कि न्याय तर्क की कला है, तो अन्य कहते है कि न्याय तर्क का विज्ञान है। ह्वेटले (Whately) ने दोनो मतो का समन्वय करके बतलाया है कि न्याय, कला और विज्ञान दोनो ही के अन्तर्गत आ सकता है।

ह्वेटले का मत

(१) न्यायशास्त्र (Logic) तर्क (Reasoning) के विज्ञान की दृष्टि से—

(अ) संकीर्ण अर्थ में—

विज्ञान (Science) शब्द का प्रयोग प्राय उन विद्याओ के लिए किया जाता है,जो भौतिक ज्ञान का अनुसधान करती है,जैसे भौतिकशास्त्र (Physics), जीवशास्त्र (Biology), पदार्थशास्त्र (Chemistry) और प्राणिशास्त्र (Zoology) इत्यादि। निरीक्षण (Observation) और प्रयोग (Experiment) इन विद्याओ मे ज्ञानवृद्धि के साधन है।

(ब) व्यापक अर्थ में—

परन्तु कभी-कभी विज्ञान (Science) शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया जाता है और तब विज्ञान का अर्थ होता है व्यवस्थित ज्ञान अथवा व्यवस्थित रूप से ज्ञानोपार्जन। किसी वस्तु का सुसम्बद्ध और व्यवस्थित ज्ञान प्राप्त करना ही विज्ञान का उद्देश्य माना जाता है।

इस दृष्टि से न्याय को भी विज्ञान कह सकते है। परन्तु यह शास्त्र उस प्रकार का विज्ञान नही है जिस प्रकार के भौतिकशास्त्र या पदार्थशास्त्र विज्ञान है। इन शास्त्रो मे परिणामोपलब्धि अक्सर निरीक्षण और प्रयोग द्वारा की जाती है, जो न्यायशास्त्र मे सम्भव नही है।

विशेषणं ज्ञानं विज्ञानं

प्रयोगो द्वारा तर्क की क्रियाओ-प्रक्रियाओ की जाँच नही की जा सकती और न तो इसकी उपलब्धि को किसी प्रयोगशाला में जाँचा ही जा सकता है।

न्याय (तर्क विज्ञान) तर्क का सुव्यवस्थित अध्ययन है।

न्यायविद्या को विज्ञान केवल इसीलिए कह सकते है कि यह भी तार्किक प्रक्रियाओं का व्यवस्थित रूप से अध्ययन करती है। इसके अध्ययन का उद्देश्य तर्क सम्बन्धी सिद्धातो और स्वरूपो का विवेचन होता है। इसमे हम यही जानने का उद्योग करते है कि किन दशाओ मे तर्क सगत रहता है और किनमे नही। न्याय-सगतता की जानकारी के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम तर्क के स्वरूपो और सिद्धान्तो की जानकारी करे। इसलिए हम तर्क की प्रकृति अथवा तर्क के आधारभूत तत्वो का विश्लेषण करते है, क्योकि इसी से हम उन स्थितियो का ज्ञान प्राप्त कर सकते है, जो तर्क को सगत बनाने के लिए अनिवार्य है। अस्तु, संगतता को ही दृष्टिगत रखकर हम न्यायशास्त्र को विज्ञान कह सकते है।

(२) न्यायशास्त्र तर्क (Reasoning) की कला की दृष्टि से—

(अ) विज्ञान और कला में अन्तर—

जबतक हम विज्ञान और कला के अर्थ को ठीक-ठीक समझकर उसमे जो अन्तर है, उसे समझ नही लेते, तबतक हम यह नही बतला सकते कि न्यायशास्त्र को कला कहने का क्या अभिप्राय है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, प्राकृतिक पदार्थों के सम्बन्ध मे व्यवस्थित रूप से ज्ञानार्जन करने को ही विज्ञान कहते है, अर्थात् यह ज्ञान का वह कोष है, जो पदार्थो को प्रकृति और धर्म के विश्लेपण से उपलब्ध सिद्धान्तों से बना है, इसका प्रयोजन ज्ञानार्जन ही है, अस्तु इसे सिद्धान्तवाद के ही अन्तर्गत रखा जा सकता है, व्यावहारिक उपयोगिता इसका ध्येय नही है।

(ब) कला क्या है ?

इसके प्रतिकूल कला, रीतियो के ऐसे समूह को कहते है, जो व्यावहारिक लक्ष्य को दृष्टिगत रखकर बनाया जाता है। कला हमको किसी काम के करने की विधि बतलाती है, उदाहरण के लिए हम जर्राही और नौका संचालन को ले सकते

है, इनमे हम जो कुछ सीखते है, वह व्यवहार में लाने को सीखते हैं। जर्राही मे रोग को अच्छा करना सिखाया जाता है और नौका सचालन मे सफलतापूर्वक यात्रा करना। इन दोनो कलाओ मे कुछ रीतियाँ हैं, जिनके सीखे विना प्रयोजन सिद्ध नही होता। किन्तु जर्राही या नौका सचालन की कला मे भी मूलभूत रूप से विज्ञान विद्यमान है, क्योकि पहले वस्तु की प्रकृति और धर्म का ज्ञान किया जाता है,तब तद्विषयक नियम वनाये जाते हैं,इसलिए विज्ञान पहले आता है और कला वाद मे।

(स) कला विज्ञान पर आधारित है—

वास्तव में कला का विकास विज्ञान के ही आधार पर होता है। जर्राही की कला कई विज्ञानो का सहारा लेकर खडी होती है। मुख्यत इसे अस्त्रचिकित्सा-शास्त्र (Anotomy), शरीरशास्त्र (Physiology) और पदार्थशास्त्र (Chemestry) का सहारा लेना पड़ता है। जब तक मानव शरीर के अवयवो की पूरी जानकारी नही हो जाती, जब तक रक्त-संचालन, पाचन और स्नायु सम्बन्धी सारी प्रक्रियाओ का पूरा-पूरा ज्ञान नही हो जाता, तब तक कोई व्यक्ति कुशल जर्राह नही वन सकता। शारीरिक अवयवो की व्योरेवार जानकारी किये विना चीर-फाड करने मे कोई व्यक्ति निपुण नही वन सकता। जव वह इस निपुणता को प्राप्त कर लेता है,तभी वह मनुष्य शरीर के रुग्ण अश पर औजार चला सकता है। इसी प्रकार नौका सचालन की कला भी बहुत से विज्ञानो का सहारा लेती है। ज्योतिष विद्या की सहायता से समुद्र मे नाविक अपना स्थान निश्चित करता है कि वह कहाँ पर है। दृष्टि विद्या (Optics) से अपने औजार वनाता है और यन्त्र विद्या से (Mechanics) अपने जहाज की गति को ठीक रखता है।

(द) न्यायशास्त्र कला की दृष्टि से—

अव हमें यह देखना है कि जब हम न्याय को तर्क की कला कहते है,तव हमारा वास्तविक अभिप्राय क्या होता है। न्याय तर्क की कला के रूप मे उन रीतियों का समूह है,जो हमें ठीक-ठीक तर्क करना सिखाती है, जिस प्रकार वह जर्राह जो

जर्राही की कला मे भली-भाँति प्रवीण है, सफलतापूर्वक चीर-फाड़ कर सकता है।

न्याय तर्क की कला होने के कारण हमें ठीक-ठीक न्याय करना सिखाता है।

अथवा जिस प्रकार वह नाविक, जो नौका सचालन की कला मे भली-भांति पटु है, जहाज को कुशलतापूर्वक चला लेता है उसी प्रकार जो मनुष्य तर्क की कला मे भली-भाँति निपुण है, वह ठीक-ठीक तर्क कर सकता है और तर्क सम्बन्धी भूलो से बच सकता है।

(इ) क्या न्याय कला और विज्ञान दोनो है ?

जैसा कि ऊपर देखा जा चुका है, प्रत्येक कला का आधार विज्ञान ही होता है। इसलिए यदि न्यायशास्त्र चिन्तन व्यापार की कला है, तो वह चिन्तन व्यापार के विज्ञान को आधारभूत अवश्य रखता है। चिन्तन व्यापार की कला की दृष्टि से न्याय कुछ नियमो व विधानो का संग्रह है, जिनके अनुकूल इसकी सारी क्रियायें होती है। हम ऐसे नियम अथवा विधान जो चिन्तनमे हमारा पथ-प्रदर्शन कर सकते है, तभी बना सकते है जब हम संगतता की सारी परिस्थितियो और चिन्तन व्यापार की प्रकृति की पूरी जानकारी रखते है। हम इन्हे तभी जान सकते है, जब चिन्तन व्यापार का विधिपूर्वक विश्लेषण करे। ऊपर यह बताया जा चुका है कि व्यवस्थानुसार किसी वस्तु का अध्ययन करना ही विज्ञान है। इसलिए जो ज्ञान चिन्तन व्यापार के विश्लेषण को आधारभूत रखता है, वही चिन्तन का विज्ञान है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि चिन्तन की कला उसके विज्ञान पर आधारित है।

(फ) यदि न्याय कला है, तो वह विज्ञान भी है—

इस धारणा के साथ ही कि न्याय (Logic) चिन्तन व्यापार की कला है, यह धारणा भी जुड़ी रहती है कि न्याय चिन्तन (Thought) का विज्ञान भी है। इसका कारण यह है कि कला सदैव विज्ञान की मुखापेक्षिणी रहती है, क्योंकि बिना ज्ञान के क्रिया हो ही नही सकती, हम पहले जानेगे तब करेंगे, इसलिए चिन्तन व्यापार के नियम बनाने के पहले यह नितान्त आवश्यक हो जाता है कि

हम उसके मौलिक तत्वो और संगतता की अनुकूलता के सम्बन्ध में पूरी जानकारी कर ले। तात्पर्य यह है कि पहले हम चिन्तन व्यापार मे विज्ञान के अस्तित्व को स्वीकार करें और तब उसमे कला के स्वरूप को देखें। मिल साहब के कथनानुसार न्याय के कलात्मक रूप की आवश्यकताएँ उसके वैज्ञानिक रूप की व्याप्ति को निर्दिष्ट करती है। इसलिए यदि हम इस धारणा से प्रारम्भ करते है कि न्यायविद्या एक कला है, तब भी हमे यह मानना पड़ेगा कि वह विज्ञान भी है। क्योकि कला विज्ञान ही द्वारा विकास पाती है।

परन्तु यदि हम इस परिभाषा से प्रारम्भ करें कि न्याय चिन्तन व्यापार का विज्ञान है,तो हमे यह स्वीकार करने की आवश्यकता नही है कि वह उसकी कला भी है। विज्ञान के रूप में न्याय तर्क-व्यापार के विभिन्न स्वरूपो को अपना वस्तु-विषय बनाता है और उससे सम्बद्ध अन्य प्रक्रियाओ का भी अनुसंधान करता है। अस्तु इस दृष्टि से भी न्याय का उद्देश्य ज्ञानार्जन ही है, व्यावहारिक उपयोगिता नही। इस ज्ञान को उपयोगी कला के निर्माण करने के काम में यदि लाया जाय तो यह दूसरी बात है। न्याय का जब हम विज्ञान की दृष्टि से विचार करते है,तब हमारा लक्ष्य चिन्तन व्यापार का भली-भाँति विवेचन करना ही होता है। और तब हम चिन्तन व्यापार की संगतता ढूँढते है। तब यह आवश्यक नही होता कि हम किसी व्यावहारिक उपयोगिता की खोज मे लगे रहे। उदाहरण के लिए भौतिकशास्त्र को लिया जा सकता है। इस शास्त्र का ज्ञाता जब किसी प्राकृतिक व्यापारका अनुसंधान करता है,तब उसका लक्ष्य केवल ज्ञानार्जन ही रहता है, वह इस बात की परवाह नही करता कि इस प्रकार जो ज्ञान वह अर्जित करता है, वह किसी उपयोगमें लगाया जायगा या नही। इस रूप मे विज्ञान का किसी उपयोगी कलासे कोई सम्बन्ध नही होता। इसके प्रतिकूल उपयोगी कला सदैव विज्ञान पर निर्भर रहती है। एटम बम बनाना एक उपयोगी कला है। यह विज्ञान की कई शाखाओ पर निर्भर है। साराश यह कि न्याय का वह रूप जो उपयोगी कला है निरपेक्ष नही है। वह न्याय के उस रूप पर निर्भर है, जो विज्ञान कहलाता है, परन्तु न्याय का वह रूप जिसे विज्ञान कह सकते है, निरपेक्ष है, वह न्याय के उस रूप पर निर्भर नही रहता, जिसे उपयोगी कला कहते है।

(ह) न्यायशास्त्र (Logic) चिन्तन व्यापार की उपयोगी कला नहीं है :—

नैयायिको मे इस विषय को लेकर बहुत वाद-विवाद चला है कि न्यायशास्त्र विज्ञान है अथवा उपयोगी कला। उपर्युक्त विवेचन मे हमने देखा है कि न्याय-शास्त्र कुछ नैयायिको के मत से विज्ञान और उपयोगी कला दोनो ही है। अब विचार यह करना है कि न्याय वास्तव मे उपयोगी कला है या नही। यदि न्यायशास्त्र चिन्तन व्यापार की कला है, तो वह व्यक्ति जो न्यायशास्त्र में पूरा दक्ष हो गया है तर्क द्वारा परिणामोपलब्धि (Inference) पर पहुँचने मे कभी कोई भूल नही कर सकता और तर्क करने मे उन सब लोगो से कही अधिक विशेषता प्राप्त कर लेगा, जिन्होने न्यायविद्या की शिक्षा-दीक्षा नही पाई है। परन्तु हम देखते है कि सदैव ऐसा नही होता। अक्सर ऐसे लोग भी जिन्होने न्याय की शिक्षा नही पाई है, अच्छी तरह तर्क कर लेते है। कभी-कभी तो वे पटु नैयायिको को भी चक्कर मे डाल देते हैं। इससे ज्ञात होता है कि न्यायविद्या उपयोगी कला नही कही जा सकती। प्रकृति ज्ञान या अन्तर्प्रवृत्ति का परिणामोप-लब्धि प्राप्त करने मे कम हाथ नही रहता। दी हुई समस्या को (Problem) या निर्णयवाक्य (Proposition) को अपने उद्देश्यानुकूल बनाना और फौरन परिणामोपलब्धि पर पहुँचना अधिकतर अन्तर्दृष्टि पर निर्भर होता है। किन्तु अन्तर्दृष्टि को नियमबद्ध नही कर सकते और न यह सब मनुष्यो में समान रूप से रहती ही है, इसलिए यह आवश्यक नही कहा जा सकता कि जो न्याय पढ लेगा, वह बहुत बडा तर्क विशारद हो जायगा।

न्याय को उपयोगी कला नहीं कहा जा सकता।

(ई) न्याय चिन्तन व्यापार के केवल विज्ञान की दृष्टि से—

"न्यायशास्त्र चिन्तन व्यापार के विज्ञान के अतिरिक्त और कुछ नही है" यदि ऐसा है, तब इसका वस्तु विषय भी कुछ-न-कुछ अवश्य ही होगा। विज्ञान की प्रत्येक शाखा कोई-न-कोई प्राकृतिक दृश्य वस्तु या तत्त्व को ही अपना विषय वस्तु (Subject matter) बनाती है, यह बात तो है नही कि जिस विषय

का विज्ञान अनुसन्धान करता है, उसे वह स्वय उत्पन्न करता है। साध्य विषय तो पहले से ही मौजूद रहते है। प्रकृति के जितने विभाग है, उनमे प्रत्येक के अध्ययन के लिए विज्ञान की कोई-न-कोई शाखा निर्दिष्ट है। चिन्ता की प्रक्रिया (Thought Processes) भी तो एक तत्त्व है, इसलिए इसके अध्ययन के लिए भी तो एक विज्ञान होना चाहिए। चिंता की प्रक्रिया क्या वस्तु है ? यह किन तत्त्वो से बनी है ? चिंता की प्रक्रिया के मूलभूत सगत कौन-कौन से रूप है ? इन सब प्रश्नो का अध्ययन जिस विज्ञान द्वारा किया जा सकता है, वही न्यायशास्त्र है। तर्क भी चिन्तन का एक रूप है। जब हम सोचते है, तब हम किसी वस्तु के बारे में ही सोचते है। प्राय. जब हम अपने दैनिक जीवन में निष्कर्ष निकाला करते है, तब हमारा ध्यान वस्तु के बाह्य रूप पर ही रहता है। अन्त.प्रवृत्ति के व्यापारो पर नही रहता। 'जब हम ध्यानपूर्वक विचार करते है, तब देखते है कि ज्ञान की प्रत्येक क्रिया के साथ मन के तत्त्वो की एक शृंखला-सी जुडी रहती है। शृंखला की इन कडियो में धारणा (Concept), भावना (Idea), निर्देश (Assertion), निर्णय (Judgement) और अनुमिति (Inference) का नाम लिया जा सकता है। मन पहले वस्तु और उसके गुण तथा उससे सम्बन्ध रखनेवाली अन्य बातो को ग्रहण करता है। यह मन का पहला काम होता है। इसके बाद अन्तर्दृष्टि द्वारा वह विचार-पद्धति के मूल तत्त्वो तक पहुँचता है, यह मन का दूसरा काम होता है। मध्ययुग के नैयायिको ने न्याय-शास्त्र को इसी दूसरे काम का विज्ञान बताया है। तर्क एक मनस्तत्त्व है। इसलिए न्याय यदि तर्क का विज्ञान है, तो वह इस तथ्य का अनुसधान करता है कि मन की गति मे तर्क की क्रियाएँ किस प्रकार संश्लिष्ट होती है, संक्षेप मे इतना कहना काफी होगा कि न्याय विज्ञान की दृष्टि से उस रीति की जाँच करता है, जिसके द्वारा हम सामान्य निर्णय-वाक्य से निष्कर्ष (From general proposition to conclusion) पर पहुँचते है।

३. न्याय की उपयोगिता

(१) न्यायशास्त्र के अध्ययन से भाषा के प्रयोग में निश्चितता आती है— यह बतलाया जा चुका है कि न्याय उपयोगी कला नही है, क्योकि यह आवश्यक नही

है कि न्याय पढने से मनुष्य तर्क करने में निपुण हो ही जाता है, फिर भी न्याय का अध्ययन निष्प्रयोजन नही है, इससे यदि और लाभ न हो तो न सही, पर मानसिक सयम तो अवश्य प्राप्त होता है। यह भाषा का ठीक-ठीक व्यवहार करना सिखाता है और हमे वस्तु या विषय का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने और भूलो से बचने की प्रवृत्ति देता है।

(२) तर्क की जाँच में सहायता मिलती है—

न्याय के अध्ययन से हम यह जान सकते है कि हम ठीक-ठीक तर्क कर रहे है या नही तथा हमारा तर्क सगत है या असगत। चिंतन अथवा बुद्धि व्यापार का भाषा से घनिष्ठ सम्बन्ध है। तर्क चिंतन का ही एक रूप है, इसलिए न्यायशास्त्र जब तर्क का विश्लेषण करता है, तब वह भाषा की भी व्याख्या करता है अर्थात् शब्दो, पदो, वाक्यो, प्रमेयो और साध्यो आदि का।

साधारणत. अपने दैनिक जीवन मे हम सदैव कहा करते है कि अमुक बात सच है, अमुक झूठ, अमुक संगत है, अमुक असंगत। सच, झूठ, संगत या असंगत का अन्तर बराबर दिखलाया करते हैं। किन्तु जिन लोगो ने न्याय नही पढा है, वे अक्सर यह नही बतला सकते कि अमुक निर्णय वाक्य (Proposition) क्यो असत्य है ? अथवा अमुक अनुमिति (Inference) क्यो सगत अथवा असगत है ?

(३) न्याय तर्क की संगतता या असंगतता का निर्देशक है—

न्याय के अध्ययन से हमे एक कसौटी मिलती है, जिससे सत्यता और संगतता की परीक्षा की जाती है। इस कसौटी का हम तर्क की प्रक्रियाओ मे साभिप्राय उपयोग कर सकते हैं और जाँच सकते है कि दिये हुए निगमनसमर्थक वाक्यो (Premises) द्वारा जो परिणामोपलब्धि हुई है वह रीत्यानुकूल है या नही। न्याय का यही व्यावहारिक मूल्य है। पर इसलिए इसे हम उपयोगी कला नही कह सकते। यह ठीक है कि न्याय के पढने से हम जान लेते है कि अमुक तर्क रीत्यानुसार है, अथवा नही है, पर इससे हमारी तर्क-शक्ति का विकास नही होता। सिद्धान्त का प्रभाव व्यवहार पर अवश्य पडता है और हमको मानना

पडता है कि तर्क की प्रक्रियाओ का ज्ञान और सगतता की स्थापना करनेवाली परिस्थितियो की जानकारी का प्रभाव तर्क करने मे अवश्य सहायक होता है, परन्तु न्याय सम्बन्धी सिद्धान्तो से परिणामोपलब्धि (Inference) तक पहुँचने में जो कुछ सहायता मिलती है, वह इतनी नही है कि उसे कला की सज्ञा दी जाय।

४. न्यायशास्त्र विधेयात्मक (Positive) और आदर्श निर्धारक (Nor-mative) विज्ञान की दृष्टि से—

(१) विधेयात्मक और निर्धारक विज्ञान—

विधेयात्मक विज्ञान तथ्यो का अध्ययन करता है और आदर्श निर्धारक विज्ञान माप या कसौटी की जाँच करता है।

आदर्श निर्धारक विज्ञान उसे कहते है, जो माप अयवा आदर्श का विवेचन करता है, जैसे नीतिशास्त्र (Ethics)। हम अपने नित्यप्रति के कामो मे सत्य, असत्य, भले-बुरे की परख किया करते हैं और ऐसे नैतिक माप-दंड की चर्चा करते है, जिससे शुद्ध, अशुद्ध और सत्, असत् में अन्तर व्यक्त होता है। उसी के द्वारा किसी कार्य या आदर्श का औचित्य अथवा अनौचित्य निर्धारित होता है।

(२) न्यायशास्त्र एक आदर्श निर्धारक विज्ञान है—

नीतिशास्त्र की तरह न्यायशास्त्र भी आदर्श निर्धारक विज्ञान है। हम अपने नित्यप्रति के जीवन मे सच, झूठ में अन्तर ज्ञात करते हैं। सगत और असगत को पहचानते हैं और सच, झूठ की कसौटी का जिक्र करते है। न्यायशास्त्र तर्क (Reasoning) के भिन्न-भिन्न रूपो की जाँच करता है और उन दशाओ को व्यक्त करता है, जो सत्यता वा सगतता के लिये अनिवार्य है तथा उस कसौटी को भी परखता है, जिससे तर्क की सगतता या असगतता निश्चित की जाती है।

(३) न्यायशास्त्र व्यावहारिक विज्ञान नहीं है—

परन्तु यदि यह कहा जाय कि न्याय निर्धारक विज्ञान है, तो इसका आशय यह नही है कि वह व्यावहारिक विज्ञान है। नीतिशास्त्र का सम्बन्ध नैतिक जीवन या चेतना से है। इसके अध्ययन से हमे नैतिक धारणाओ, आदर्शो और उनके

मौलिक तत्त्वो का बहुत कुछ ज्ञान होता है। किन्तु हमारी स्वाभाविक नैतिकता नीतिशास्त्र के अध्ययन से नही बढती। नीतिशास्त्र के अध्ययन करने पर भी हम जितने नैतिक पहले थे, उतने ही रह जाते है। कारण यह है कि नैतिकता व्यवहारजन्य है, जब कि नीतिशास्त्र का व्यवहार से कोई लगाव नही है। वह केवल नैतिक धारणाओं, मान्यताओ और आदर्शों के समूह का ऐसा ज्ञान है, जो केवल सिद्धान्त (Theory) से सम्बन्ध रखता है, व्यवहार से नही। नैतिकता हमारे व्यवहार, हमारी रहन-सहन पर निर्भर करती है। नीतिशास्त्र हमें केवल यही बताता है कि क्या करना चाहिए और क्या नही करना चाहिए। नीतिशास्त्र हमारे आचरण को व्यवस्थित नही करता। आचरण की व्यवस्था ज्ञान पर निर्भर नही होती, वह तो सकल्प अथवा इच्छाशक्ति की दृढता पर निर्भर करती है। इसी प्रकार न्यायशास्त्र भी चिन्तन व्यापार की प्रक्रियाओ को संचालित नही करता, गो कि यह वही ज्ञान-राशि है, जो चिन्तन के विभिन्न रूपो के विश्लेषण से प्राप्त मौलिक तत्त्वो के सग्रह से बना है।

आदर्श निर्धारक विज्ञान व्यावहारिक विज्ञान नहीं होता।

नीतिशास्त्र हमारे आचरण को व्यवस्था अथवा क्रम-विधान नही देता। आचरण की व्यवस्था अथवा क्रम-विधान ज्ञान वा चिन्तन पर निर्भर नही रहता, यह तो सकल्प अथवा इच्छाशक्ति की दृढता पर निर्भर रहता है। इसी प्रकार न्याय भी तर्क-सबधी प्रक्रियाओ का क्रम-विधान नही करता, गोकि यह वही ज्ञान-राशि है, जो चिन्तन के विभिन्न रूपो के संग्रह के विश्लेषण से प्राप्त मौलिक तत्त्वो से बना है। जोजफ ने इस विषय को बहुत अच्छी तरह से समझाया है। उनका कहना है कि 'प्राणिशास्त्र जीव-विज्ञान है, किन्तु यह जीवो की भिन्न-भिन्न उपजातियो को उन्नत या अवनत नही करता। इसकी दशा ठीक वैसी ही है, जैसी गतिविद्या (Dynamics) की है। यद्यपि यह गति और शक्ति का विज्ञान है, तथापि यह चालक-यन्त्रो में कोई सुधार या हेर-फेर नही करता।' प्राणिशास्त्र, गतिशास्त्र, भौतिकशास्त्र या पदार्थशास्त्र सब भावात्मक या विधेयात्मक (Positive)

विज्ञान है। इनमे से प्रत्येक दृश्य-वस्तु (Phenomenon) को जिस रूप मे पाते है, उसी रूप मे उसका अध्ययन करते है और कारण-स्वरूप उनमे किन तत्त्वो का समाहार है और किन नियमो के अनुसार उनकी गति-विधि होती है, आदि प्रश्नो को अपने अनुसधान का क्षेत्र बनाते है। वे किसी आदर्श की प्राप्ति के पीछे नही पडते। आदर्श का विधान करना उनका लक्ष्य नही होता। इसीलिए ये विज्ञान आदर्श निर्धारक विज्ञानो (जैसे नीतिशास्त्र या न्याय) से पृथक् माने जाते है। परन्तु विधेयात्मक विज्ञानो और आदर्श-स्थापक विज्ञानो में बहुत-सी ऐसी बाते भी है, जो मिलती-जुलती है। इन सबो का काम केवल सिद्धान्तो का निरूपण ही करना है, व्यवहार से इनका सरोकार नही है। ये कोई सुधार करने की दृष्टि से अपने विषय के क्षेत्र मे अनुसन्धान नही करते।

५. न्यायशास्त्र तथ्यात्मक और रीत्यात्मक (Material & Formal)

(१) **तर्क का स्वरूप और विषय**—अनुभवजन्य जितनी भी हमारी बातें है, उनके दो पार्श्व होते है। पहला पार्श्व है वस्तु और दूसरा है स्वरूप। जैसे एक मेज है। यह लकड़ी की बनी हुई होती है, यहाँ पर लकडी वस्तु है, परन्तु मेज से वही काम नही लिया जाता है, जो कुर्सी से। दोनो भिन्न-भिन्न काम के लिए बनायी जाती है। प्रयोजन के अनुसार उनका स्वरूप भी भिन्न होता है। मेज और कुर्सी दोनो एक ही वस्तु अर्थात् लकड़ी की बनी रहती है, पर दोनो के स्वरूप भिन्न होते है, अस्तु प्रत्येक पदार्थ के दो पार्श्व हुए—पहला वस्तु, दूसरा स्वरूप। इसी प्रकार चिन्तन के भी वस्तु या तथ्य और स्वरूप या आकार दो पार्श्व होते है।

चिन्तन की वस्तु है चिन्त्यविषय और स्वरूप है उसकी चिन्तन-पद्धति। तर्क (Reasoning) चिन्तन (Thought) का एक रूप है। इसलिए

वस्तु (Matter) और आकार (Form)

इसके भी दो पार्श्व है, वस्तु और आकार। जिस विषय के सम्बन्ध मे हम तर्क करते है, वह तर्क की वस्तु है और जिस ढग से हम तर्क करते है, वह है इसका आकार। यदि कहा जाय कि सामने पहाड़ पर धुआँ उठ रहा है, तो वहाँ आग जरूर होगी। पहाड पर धुआँ या

आग का होना वस्तु या तथ्य है और वहाँ धुआँ के होने पर आग के होने का जो क्रम-विधान या रीति है, वह तर्क (Reasoning) का आकार है। वस्तु और आकार में अन्तर तो बताया जा सकता है, पर ये अलग नही किये जा सकते। तर्क के आकार को आसानी से समझने के लिए सांकेतिक चिह्नो का व्यवहार किया जाता है। यह न्याय (Syllogism).—

मनुष्य मरणशील है।
सुकरात एक मनुष्य है।
इसलिए सुकरात मरणशील है।

संकेतो द्वारा इसको नीचे लिखे ढग से रखा जा सकता है—

सब स है य
म है स
इसलिए म है य

इस प्रकार संकेतो द्वारा आकार को स्पष्ट कर देने से तर्क के आकार और वस्तु में जो अन्तर है, वह स्पष्ट हो जाता है। उपर्युक्त तर्क मे सुकरात की मरणशीलता वस्तु या तथ्य है और जिस क्रम से मरणशीलता निश्चित की गई है, वह आकार है।

वस्तुवाद (Material) और आकारवाद (Formal) न्याय के दो रूप

न्यायशास्त्र के दो भाग किये जाते है। एक मे तर्क के आकार का और दूसरे में वस्तु का आधार होता है। शुद्ध तर्क अथवा आकारवाद (Formal Logic) केवल तर्क की पद्धति अथवा स्वरूप से सम्बन्ध रखता है। इसलिए रीत्यात्मक (Formal) होता है। वस्तुवाद (Material Logic) अथवा व्यावहारिक (Applied) न्याय चिन्त्य विषय का विवेचन करता है। इसलिए तथ्यात्मक होता है। रीत्यात्मक न्याय दिये हुए निगमनसमर्थकनिर्णयवाक्य (Premis) से फल प्राप्ति की क्रिया तक पहुँचने की प्रक्रिया से ही सरोकार रखता है। उसमे उन वाक्यो वा शर्तो की शुद्धि या अशुद्धि पर ध्यान नही दिया जाता और न इस बात से वास्ता रहता है कि निष्कर्ष सत्य है या असत्य।

कुछ नैयायिक (Logicians) रीत्यात्मक न्याय को रीति की शुद्धि का न्याय मानते हैं, अर्थात् इसे वह शास्त्र मानते है, जिसमें निष्कर्ष निगमनसमर्थकनिर्णय वाक्यो से नियमानुकूल निकाला जाता है। इसमे इस बात पर विचार नही किया जाता है कि दी हुई शर्तों मे वास्तविक सत्य है या नही। वस्तु जगत में उनकी सत्यता वा असत्यता निष्कर्ष निकालने मे बाधक नही होती और जहाँ तक आकार का सम्बन्ध है, यह निष्कर्ष ठीक माना जाता है, चाहे उसमे वास्तविक तथ्य न भी हो।

इन शर्तों से : "सब मनुष्य काले है।"
ब्राउन महोदय मनुष्य है।

यह निष्कर्ष निकाला जाय कि ब्राउन महोदय काले है, तो यह रीतिवादी नैयायिक की दृष्टि मे सगत होगा। यह स्पष्ट है कि पहली शर्त असत्य है। फिर भी दी हुई शर्तों से निष्कर्ष निकल ही आता है कि "ब्राउन महोदय काले है" गोकि वास्तव में ब्राउन महोदय गोरे है।

इसके विपरीत वस्तु-परक या तथ्यात्मक न्याय हमारी उन चिन्तन क्रियाओ के आधार पर दृष्टि रखता है, जो हम अपने दैनिक व्यवहार मे किया करते है। यहाँ पर यह भी याद रखना चाहिए कि तथ्यात्मक न्याय यद्यपि तर्क मे आधारभूत तथ्यो का अनुसन्धान करता है, तथापि वह भौतिकशास्त्र या पदार्थशास्त्र की तरह इस बात से प्रयोजन नही रखता कि पदार्थों की किस प्रकार से उत्पत्ति हुई अथवा किस प्रकार कोई बात घटित हुई। वह पदार्थ को जिस रूप मे पाता है, उसी रूप मे उसका अध्ययन करता है। दूसरे शब्दो मे इसे यो कह सकते है कि तथ्यात्मक न्याय तथ्य सम्बन्धी तर्क की रीतियो का अध्ययन करता है। इस सम्बन्ध में तथ्यात्मक और रीत्यात्मक न्याय मे यह अन्तर होता है कि रीत्यात्मक न्याय तार्किक रीतियो का निरपेक्ष रूप से अध्ययन करता है, जबकि तथ्यात्मक न्याय रीतियो के साथ चिन्त्य विषय को सापेक्ष रखता है। इसमें तर्क के उस रूप का अध्ययन रहता है, जिसे हम अपने दैनिक जीवन मे व्यवहार में लाते है। तथ्यात्मक न्याय मे हम तर्क के तत्त्वो का विश्लेषण करते है। अर्थात् दी हुई शर्तों और उनसे प्राप्त परिणामो को हम वास्तविक जगत के धरातल पर रखकर

ही सगतता या असंगतता का निश्चय करते है। इसमे हम यह देखते है कि जो शर्त्त दी हुई है, वह वास्तव मे सत्य है या नही।

तथ्यात्मक न्याय तर्क की उस पद्धति का अनुसन्धान करता है, जो अनुभव और वास्तविक जगत के अनुकूल है और वास्तविकता से ही अपना प्रयोजन रखता है।

इसीलिए यह कहा जाता है कि तथ्यात्मक न्याय तथ्य से ही प्रयोजन रखता है। यह तथ्य शर्तो की वास्तविकता के अनुरूप होने से ही निर्धारित होता है। जब यह कहा जाता है कि "दूध श्वेत है" तब यह वाक्य तथ्य की दृष्टि से सत्य होता है, क्योकि यह वस्तु के एक ऐसे गुण का निर्देश करता है, जो वास्तविक तथ्य है।

पहले कहा जा चुका है कि वस्तु के आकार और तत्त्व मे घनिष्ट सम्बन्ध है। वे एक दूसरे से पृथक् नही किये जा सकते। उनमे अन्तर अवश्य वतलाया जा सकता है। फिर भी तर्क के इन दोनो अगो को सकेतो के माध्यम से मन मे अलग-अलग करके सोचा जा सकता है। इसका तात्पर्य यह

रीत्यात्मक और तथ्यात्मक न्याय में पूर्ण निरपेक्षिता नहीं है।

नही है कि विना वास्तविक अनुभूतियो का सहारा लिये ही हम तर्क की प्रकृति और रीति को समझ सकते है। उन्हे समझने के लिए हमे वास्तविकता का आधार लेना ही पडेगा। इसके विरुद्ध तर्क की सगतता को निश्चित करने के लिए तथ्यात्मकन्याय को भी रीति का अनुशरण करना पडता है। दी हुई शर्त या शर्तो से परिणाम पर पहुँचने की क्रिया को तर्क कहते है और तर्क की संगतता का अर्थ है परिणामोपलब्धि की क्रिया की शुद्धता। इन सवका सम्वन्ध तर्क की रीति से है। फिर तर्क के वाक्य, शर्ते और निष्कर्ष, जो सव मिलकर तर्क की प्रक्रिया को पूर्ण करते है, किसी तथ्य का निर्देश करते है अथवा तथ्यो के मध्य कोई निश्चित सम्वन्ध वतलाते है। इस प्रकार तर्क की सारी क्रिया किसी तथ्य से ही सम्वन्ध रखती है, जो निर्दिष्ट हो जाने पर तर्क की वस्तु कहलाता है। जब तर्क के आकार और तथ्य एक दूसरे से अलग नही किये जा सकते और जब एक को समझने के लिए

दूसरे का समझना अनिवार्य्य है, तब रीत्यात्मक और तथ्यात्मक न्याय मे अन्तर केवल आनुपातिक (Relative) है, अखड (Absolute) नही। अन्तर केवल प्रधानता और अप्रधानता का है। जब आकार को प्रधानता दी जाती है, तब तर्क रीत्यात्मक कहा जाता है, और जब वस्तु को प्रधानता दी जाती है तब तर्क तथ्यात्मक कहा जाता है।

६ न्यायशास्त्र (Logic) का सीमा-विस्तार

हम पहले देख चुके है कि न्याय का नाता केवल तर्क-व्यापार, निष्कर्ष और निष्कर्ष निकालने मे नियमानुकूलता से है। तर्क विचार का एक रूप है और विचार भाषा के माध्यम से व्यक्त होते है। इसलिए भाषा से इसका गहरा लगाव है। तर्क-क्रिया या निष्कर्ष-प्राप्ति वाक्यो द्वारा होती है। इनमें से प्रत्येक वाक्य किसी वस्तु-स्थिति या व्यापार को व्यक्त करते है। प्रत्येक वाक्य पदो से बने हुए होते है। प्रत्येक पद किसी-न-किसी वस्तु का नाम होता है। इस तर्क-व्यापार मे—

"जहा धुआँ होता है, वहाँ आग होती है।
सामने पहाड पर धुआँ है।
इसलिए सामने पहाड पर आग है।"

इसमें दो शर्ते है और एक निष्कर्ष है। ये सब मिलकर तीन वाक्य बनाते है। जिनमे प्रत्येक वाक्य पदो से बना हुआ है। इसलिए तर्क-व्यापार का विवेचन करने के पहले वाक्यो का विवेचन आवश्यक हो जाता है और वाक्यो के विवेचन के पहले पदों का विवेचन आवश्यक हो जाता है, क्योकि वाक्य पदो से ही बनते है। इसलिए न्यायशास्त्र का काम पद, वाक्य और तर्क-व्यापार, सबकी व्याख्या करना है। इसके अतिरिक्त कुछ और भी प्रक्रियाए है, जो निष्कर्ष-प्राप्ति मे सहायता देती है, जैसे नामकरण, लक्षण, विभाजन, पृथक्-करण (Abstraction) और वर्गीकरण। ये सब न्याय की सीमा की परिधि के ही अन्तर्गत है।

७ न्यायशास्त्र सब विज्ञानो का विज्ञान है

हमारे मत में न्याय तर्क-व्यापार का विज्ञान है। परन्तु बहुत से नैयायिकों ने इसे विज्ञानो का विज्ञान कहा है, किन्तु इस शब्द समूह का अकसर भ्रामक प्रयोग

पाया जाता है। जेवन्स इसका यह अर्थ समझते है कि विज्ञान की प्रत्येक शाखा एक विशिष्ट न्यायशास्त्र है। उनका कहना है कि "विज्ञान की प्रत्येक शाखा के अध्ययन करनेवाले यह जानते है कि उनकी शाखा पर वृहद् विज्ञान का कितना ऋण है। इसी को स्वीकार करते हुए उन्होने वृहद् विज्ञान के नाम के आधार पर अपनी शाखा का नाम रखा है।" Biology, Socialogy, Zoology, Psychology सभी का लॉगी (Logy) से अन्त होता है। इसलिए जेवन्स सोचते है कि सभी विज्ञानो का नाम लॉजिक (Logic) के नाम के आधार पर रखा गया है। पर यह मत भ्रामक है। Logic शब्द ग्रीक शब्द Logos से निकला है, जिसका अर्थ है, शब्द अथवा आन्तर-प्रवृत्ति। अब चूंकि Logos का अर्थ आन्तर-प्रवृत्ति या मनोव्यापार होता है, इसलिए लोग अकसर इसका अर्थ 'ज्ञान' करते है। अगर विज्ञान का नाम लॉगी (Logy) से अन्त होता है, तो इसका तात्पर्य है, उस वस्तु का ज्ञान जिसके अन्त मे यह शब्द प्रयुक्त हुआ है न कि और कोई चीज। साधारणत लॉजिक (Logic) अर्थात् न्यायशास्त्र का अर्थ होता है, तर्क-विज्ञान। यह नही कहा जा सकता कि लोग कैसे अन्य विज्ञानो को न्याय की शाखा कहते है। अन्य विज्ञान वाह्य भौतिक पदार्थों, तत्त्वो वा तथ्यो का अनुसधान करते है। न्याय आन्तर-प्रवृत्ति, तर्क-व्यापार का अनुसधान करता है, फिर अन्य विज्ञानो से और न्याय से मूल और शाखा का सम्बन्ध कैसे हो सकता है। हाँ, यह अवश्य कहा जा सकता है कि प्रत्येक विज्ञान में तर्क की कुछ-न-कुछ आवश्यकता पडती ही है। न्यायशास्त्र तर्क के मौलिक सिद्धातो का अनुसधान करता है। इस दृष्टि से इसको विज्ञानो का विज्ञान कह सकते है। प्रत्येक विज्ञान तर्क-व्यापार की सारी प्रक्रिया, शर्तों की सत्यता और अनुमान की सगतता की कसौटी को स्वीकार करके अपने अनु-सन्धान में अग्रसर होता है। न्यायशास्त्र अन्य विज्ञानो की इन मान्यताओ ही का अनुसन्धान करता है। इसलिए यदि यह कहा जाय कि न्यायशास्त्र विज्ञानो का विज्ञान है, तो इसका मतलब यह हुआ कि न्यायशास्त्र अन्य विज्ञानो से बढकर है, क्योकि यह तर्क और तर्क के सिद्धान्तो का अनुसन्धान करता है, जिनका उपयोग सभी विज्ञान करते है।

अध्याय १ का सारांश

भिन्न-भिन्न नैयायिको ने न्यायशास्त्र के भिन्न-भिन्न लक्षण दिये है। कोई कहता है कि न्यायशास्त्र तर्क (Reasoning) की कला है या तर्क का विज्ञान है तो कोई न्यायशास्त्र को चिन्तन (Thought or Thinking) का विज्ञान या चिन्तन के नियमों का विज्ञान बताता है। अन्तिम दो लक्षणो में विशेष अन्तर नही प्रतीत होता, क्योकि चिन्तन के नियमों का अध्ययन करने से चिन्तन का भी अध्ययन हो जाता है। किन्तु यह लक्षण कि न्यायशास्त्र-चिन्तन का विज्ञान है, अतिव्याप्ति के दोष से बरी नही रहता। चिन्तन के अन्तर्गत ऐसे कई मानसिक तथ्य तथा प्रक्रियाए आती है, जैसे भावना (Idea), बोध (Concept), प्रत्यय (Belief), निर्णय (Judgement) इत्यादि। ये मनोविज्ञान के अध्ययन के क्षेत्र है।

बहुत से नैयायिक इस कथन से सहमत है कि न्यायशास्त्र का विषय तर्क (Reasoning) है। किन्तु इस कथन पर अकसर विवाद होता है कि न्यायशास्त्र तर्क की कला है या तर्क का विज्ञान। कुछ नैयायिक न्यायशास्त्र को तर्क की कला मानते है। कला नियमो के ऐसे समूह को कहते है, जिनसे कुछ व्यावहारिक दक्षता प्राप्त होती है, जैसे जर्राही, जो अस्त्र-चिकित्सा (जर्राही) जानता है, वह एक अस्त्र-चिकित्सक (Surgeon) बनता है और शरीर के रुग्ण अश की अस्त्र-चिकित्सा कर सकता है। किन्तु लॉजिक (Logic) ऐसी कला नही है। क्योकि न्यायशास्त्र के अध्ययन से कोई पटुतर्ककर्त्ता नही बन सकता। तार्किक पटुता के लिए अन्तर्ज्ञान (Intuition) या अन्तर्दृष्टि (Insite) आवश्यक है। जो जन्मजात है, वे सीखने से नही आते। अकसर ऐसे लोग भी पाये जाते है, जो न्यायशास्त्र नही जानते, फिर भी न्यायशास्त्र के विज्ञो से बढकर तर्क कर लेते है।

यह धारणा कि "न्यायशास्त्र तर्क की कला है", अर्तानिहित रखती है, इस धारणा को कि "न्यायशास्त्र तर्क का विज्ञान है"। प्रत्येक कला के मूल मे कोई-न-कोई

विज्ञान अवश्य रहता है। जैसे अस्त्र-चिकित्सा एक कला है। यह शरीर-विच्छेद-विज्ञान, (Science of Anotomy) तथा अन्य विज्ञानो पर अवलम्बित है। अस्तु, जब तक तर्क का विज्ञान नही होगा, तब तक तर्क की कला भी नही हो सकती। तर्क एक मानसिक प्रक्रिया है। यह कैसी है? जब तक हम इसका व्यवस्थित ज्ञान प्राप्त नही कर लेते, तब तक हम रीतियो का ऐसा समूह नही तैयार कर सकते, जिसको कला कहते है। इसलिए बहुत से नैयायिक कहते है कि न्यायशास्त्र विज्ञान और कला दोनो ही है। यदि हम इस धारणा से प्रारम्भ करें कि न्यायशास्त्र तर्क का विज्ञान है, तब कोई आवश्यकता नही है कि हम यह स्वीकार करे कि न्यायशास्त्र तर्क की कला है।

यद्यपि न्यायशास्त्र तर्क की उपयोगी कला नही है, फिर भी इसकी उपयोगिता है। न्यायशास्त्र के अध्ययन मे ठीक-ठीक भाषा का प्रयोग आता है। इससे तर्क की जॉच करने मे भी सहायता मिलती है, अर्थात् हम यह जान सकते है कि अमुक तर्क सगत है या असगत।

जो विज्ञान यथातथ्य विषयो का अध्ययन करता है, उसे विधेयात्मक विज्ञान (Positive) कहते है, जैसे--भौतिक विज्ञान। यह भौतिक पदार्थो से सम्बन्ध रखता है तथा उनके होने न होने का कारण बतलाता है। परन्तु जो विज्ञान माप अथवा आदर्श की जॉच करता है, वह निर्धारक (Normative) विज्ञान कहलाता है, जैसे नीतिशास्त्र (Ethics), यह नैतिकता के आदर्श की जाँच करता है। न्यायशास्त्र भी इसी प्रकार का निर्धारक अथवा आदर्श स्थापक विज्ञान है और संगतता के आदर्श की व्याख्या करता है।

न्यायशास्त्र के दो पार्श्व है--आकारवाद (Formal) और वस्तुवाद (Material)। इन दोनो मे अकसर अन्तर बतलाया जाता है। आकारवाद तर्क के आकार अथवा स्वरूप का अध्ययन करता है। जो तर्क की वस्तु का अमूर्तिकरण है। आकारवाद केवल तर्क के स्वरूप से सम्बन्ध रखता है। इसके विपरीत वस्तुवाद तर्क की वास्तविकता का अध्ययन करता है। यह वस्तु और आकार मे अन्तर नही देखता। इसका मुख्य उद्देश्य होता है, तर्क का विषय या वस्तु।

न्यायशास्त्र का सम्बन्ध व्यापक मनस्तत्त्व से है। वह केवल तर्क (Reasoning) तक ही सीमित नही है। भाषा और विचार मे घनिष्ठ सम्बन्ध है। तर्क भी विचार का एक रूप है। इसलिए न्यायशास्त्र भाषा को भी अपने वर्ण्य विषय के अन्तर्गत रखता है। जिसमे पदो के सिद्धान्त, निर्णय-वाक्यो के सिद्धान्त तथा तर्क के सिद्धान्त रहते है। इनके साथ कुछ और भी चीजे रहती है, जैसे-नामकरण, लक्षण, विभाजन और वर्गीकरण।

न्यायशास्त्र को अकसर विज्ञानो का विज्ञान माना जाता है। न्यायशास्त्र तर्क और उसके सिद्धान्तो का अध्ययन करता है, इसलिए वह अन्य विज्ञानो से बढकर अवश्य है। इसी दृष्टि से इसे विज्ञानो का विज्ञान कहा जा सकता है। क्योकि ये सिद्धान्त सभी विज्ञानो मे पाये जाते हैं।

अध्याय १ : अनुशीलन

१—तर्कशास्त्र के लक्षण बतलाओ और उसकी सीमा को निर्धारित करो।

भिन्न-भिन्न तर्कशास्त्रियो ने विभिन्न रूप से तर्कशास्त्र के लक्षण दिये हैं। उनमे से कुछ लक्षण निम्नाकित है :—

"तर्कशास्त्र मनोव्यापार का विज्ञान है", "तर्कशास्त्र मनोव्यापार के नियमो का विज्ञान है", "तर्कशास्त्र तर्क का विज्ञान है" और भी इसी प्रकार।

"तर्कशास्त्र मनोव्यापार के नियमो का विज्ञान है" यह लक्षण व्याख्या करने पर "तर्कशास्त्र मनोव्यापार का विज्ञान है" के समान प्रतीत होता है। मनोव्यापार के नियमो पर वाद-विवाद करते हुए हमे मनोव्यापार की प्रकृति और आकार पर वाद-विवाद करना होता है। यह लक्षण कि "तर्कशास्त्र मनोव्यापार का विज्ञान है" अत्यधिक विस्तृत है। (आलोचना के लिए मूलग्रन्थ को देखो) फिर भी सामान्यत. सहमतता है कि तर्कशास्त्र तर्क का विज्ञान है। क्योकि तर्कशास्त्र तर्क का यथाक्रम अध्ययन है जो कि मनोव्यापार या विचार की एक आकृति है।

२—इस सिद्धान्त की व्याख्या करो कि तर्कशास्त्र तर्क की कला है।

कला सिद्धान्तो का एक समूह है, जिसकी सहायता से अन्तिम परिणाम प्राप्त होता है। कला क्रियात्मक है और हमें कोई निश्चित

चीज को करने की शिक्षा देता है । इस प्रकार चीर-फाड एक कला है। तर्क-शास्त्र तर्क की कला माना जाता है, परन्तु तर्कशास्त्र तर्क की कला होते हुए भी एक सिद्धान्त का समूह है, जो कि हमे सही तर्क करने मे मदद करता है। (विस्तार के लिये मूलग्रन्थ को देखो)।

३—तुम किस प्रकार से बता सकते हो कि तर्कशास्त्र तर्क का विज्ञान है ?

साधारण अर्थ मे विज्ञान प्रकृति के किसी निश्चित अश का क्रमबद्ध अध्ययन करता है और इस कार्य मे विज्ञान किसी रसायनशाला या उसके बाहर किये गये निरीक्षण और प्रयोग पर आधारित है। जो कुछ भी हो, "विज्ञान" का एक विस्तृत अर्थ मे प्रयोग किया गया है–किसी कार्य या कार्य-समूह के क्रमबद्ध अध्ययन के अर्थ मे। हम किसी चीज या उसके समूह का यथाविधि अध्ययन बिना किसी प्रयोग के कर सकते है। उदाहरणार्थ—हम समाज के विज्ञान को रखते है, जो कि किसी ऐसे प्रयोग पर आधारित नही है, जो कि किसी प्रयोगशाला मे किया जावे। तर्कशास्त्र केवल इसी अर्थ मे विज्ञान है। "तर्कशास्त्र तर्क का विज्ञान है" तब इस लक्षण का तात्पर्य यह है कि तर्कशास्त्र तर्क का यथाविधि अध्ययन है।

४—क्या तर्कशास्त्र तर्क का विज्ञान है या तर्क की कला ?

तर्कशास्त्र तर्क का विज्ञान है अथवा तर्क की कला है, इनके ऊपर व्याख्या की गई है।

तर्क करने की शक्ति एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य मे भिन्न होती है, फिर भी तर्क मे अन्तर्ज्ञान और अन्तर्दर्शन बहुत हिस्सा लेते है। लेकिन अन्तर्ज्ञान और अन्तर्दर्शन किसी मनुष्य मे जन्मजात होता है। यह बढाया नही जा सकता। हम तर्क-शक्ति को, तर्कशास्त्र के बहुत से नियमो का अध्ययन करके नही बढा सकते। इस प्रकार तर्कशास्त्र का अध्ययन किसी मनुष्य को अच्छा तर्कशास्त्री नही बना देता। ' तर्कशास्त्र हमे कोई चीज करने की शिक्षा नही देता। तब तर्कशास्त्र तर्क की कला नही है, तर्कशास्त्र सत्यत· तर्क का विज्ञान है। इसकी अभिरुचि केवल सिद्धान्त से है। यह तर्क की प्रकृति को और इसकी सप्रमाणता की दशा को व्याख्या द्वारा जानना चाहता है।

५—तर्कशास्त्र का उपयोग और उसकी सीमा—

(i) उपयोग—भाषा के प्रयोग में तर्कशास्त्र यथार्थता को बढ़ाता है, तर्क की परीक्षा मे सहायता करता है और यह निश्चित करता है कि वे प्रामाणिक है या नही।

(ii) सीमा—(अ) भाषा और मनोव्यापार में एक घनिष्ट सम्बन्ध होने के कारण तर्कशास्त्र भाषा की व्याख्या करता है। एक पूर्ण विचार एक वाक्य (Proposition) से व्यक्त होता है। फिर तर्क कुछ वाक्यो (Propositions) से बनता है। एक वाक्य कुछ पदो या शब्दो से मिलकर बनता है। इसलिए तर्कशास्त्र तर्क का अध्ययन होते हुए पदो और वाक्यो के अध्ययन को भी अपने अन्तर्गत रखता है।

(ब) तर्कशास्त्र के लिये तर्क करना वास्तव में मुख्य विषय है, लेकिन कुछ मनोव्यापार के क्रम है, जो कि तर्क को सहायता देनेवाले हैं, वे ये है :—परिभाषा, व्याख्या, पृथक्करण और श्रेणी-विभाग। तर्कशास्त्र इन सभी क्रमो के अध्ययन को अपने अन्तर्गत रखता है।

६—विधेयात्मक (Positive) और आदर्शनिर्धारिक (Normative) विज्ञान के भेद को दिखलाओ। क्या तर्कशास्त्र आदर्शनिर्धारिक विज्ञान है?

विधेयात्मक विज्ञान, किसी तथ्यसमूह का यथातथ्य अनुसन्धान करता है। उनके कारण और नियम का अध्ययन करता है। उदाहरणार्थ पदार्थ-विज्ञान विधेयात्मक विज्ञान है। यह शारीरिक चीजो और उनके नियमो का वर्णन करता है। एक अनुभवात्मक विज्ञान अनुभवात्मक कार्यों का वर्णन करता है और किसी भी आदर्श से सम्बन्ध नही रखता।

दूसरी तरफ आदर्शनिर्धारिक (Normative) विज्ञान सिद्धान्त या नियम या आदर्श से परिणाम निकालता है। उदाहरणार्थ नीतिशास्त्र आदर्शनिर्धारिक

विज्ञान है। यह ऐसे आदर्श नियम जैसे हम अपने नैतिक जीवन मे मानते है, निश्चय करना चाहता है। तर्कशास्त्र भी अपना आदर्श रखता है और यह आदर्श हमारे तर्क की प्रामाणिकता है। इसलिए तर्कशास्त्र एक आदर्शनिर्धारक विज्ञान है। एक आदर्शनिर्धारक विज्ञान व्यवहार मे नही लाया जाता है। इसका लक्ष्य हमारे व्यावहारिक जीवन को सुधारना नही है।

७—रीत्यात्मक (Formal) और तथ्यात्मक (Material) तर्कशास्त्र के भेद को दिखलाओ।

तर्क दो पार्श्व रखता है, आकृति और द्रव्य—आकृति (Form) मनोव्यापार की आकृति है और द्रव्य (Matter) है यथार्थता, जिसके बारे मे हम तर्क करते है। और दो प्रकार की सप्रमाणता है अर्थात् नैयमिक और भौतिक सप्रमाणता। नैयमिक सत्य एक निश्चित सगतता है, जो तर्क के अन्दर प्रस्तावना और निगमन के बीच का एक प्रकार का सम्बन्ध है—विना यथार्थता के निर्देश के। भौतिक सत्य निर्णयवाक्य तथा यथार्थता के बीच का सम्बन्ध है। नैयमिक विज्ञान आकृति और नैयमिक सत्य के रूप मे केवल तर्क की यथार्थता से परिणाम निकालता है। इसके विपरीत तथ्यात्मक शास्त्र तर्क के साथ यथार्थता के निर्देश और भौतिक सत्य से परिणाम निकालता है।

८—तुम किस प्रकार से कह सकते हो कि तर्कशास्त्र सभी विज्ञानों का विज्ञान है?

इस निर्णय "तर्कशास्त्र सभी विज्ञानो का विज्ञान है" का अर्थ यह नही है कि विभिन्न विज्ञान—जीवविज्ञान, प्राणिविज्ञान, भूगर्भशास्त्र इत्यादि तर्कशास्त्र की भिन्न-भिन्न शाखाये है।" "Logic" शब्द "Logos" शब्द से आता है, जिसका अर्थ है "शब्द" या "विचार" यानी ज्ञान। जब हम कहते है कि तर्कशास्त्र सभी विज्ञानो का विज्ञान है तो इसका अर्थ है कि तर्कशास्त्र सर्वश्रेष्ठ विज्ञान है, जो तर्क और इसके सिद्धान्तो का वर्णन करता है, जिसे सभी विज्ञान मूलभूत अपने अन्तर्गत रखते है।

अध्याय २

न्यायशास्त्र का मनोविज्ञान, अध्यात्मशास्त्र, अलंकार और व्याकरण से सम्बन्ध

१ न्यायशास्त्र (Logic) और मनोविज्ञान (Psychology)

मनोविज्ञान मनस्तत्त्व का विज्ञान है। इस शास्त्र मे मनोव्यापार की विविध दशाओ का अध्ययन किया जाता है। यह मानसिक तत्त्वो की उत्पत्ति और विकास-क्रम का अनुसन्धान करता है। उपलब्धि (Cognition) अथवा अनुभवसिद्ध ज्ञान, सवेदन (Feeling) अथवा भावना-व्यापार और संकल्प-शक्ति आदि मानसिक तत्त्व इसके विषय-क्षेत्र है। न्यायशास्त्र इन तत्त्वो से सम्बन्ध नही रखता। वह केवल तर्क करने की प्रक्रिया का विज्ञान है, जो इनमें से एक अर्थात् अनुभवसिद्ध ज्ञान (Cognition) का एक प्रकार या रुपान्तर है। इसलिए न्याय का मनोविज्ञान से सम्बन्ध है। परन्तु न्याय मनोविज्ञान का अंग नही है, क्योकि अनुभवसिद्ध ज्ञान की जिन बातो का न्याय अनुसन्धान करता है, उनसे मनोविज्ञान का कोई सम्बन्ध नही है। इसलिए दोनो के मध्य जो अन्तर है, वह स्पष्ट है। मनोविज्ञान सभी मानसिक तत्त्वो की उत्पत्ति और विकास-क्रम का अनुसन्धान करता है। न्यायशास्त्र उनमे से केवल एक तत्त्व अर्थात् अनुभवसिद्ध ज्ञान के रूपान्तर तर्क से सम्बन्ध रखता है। जिससे मनोविज्ञान का कोई सम्बन्ध नही और न अनुभवसिद्ध ज्ञान की उत्पत्ति और विकास-क्रम से न्याय-शास्त्र का कोई सम्बन्ध है। वह अनुभवसिद्ध ज्ञान के विकसित रूप से ही सम्बन्ध रखता है। मनोविज्ञान विधेयात्मक (Positive) विज्ञान है। न्यायशास्त्र

मनोविज्ञान मानसिक तत्त्वों का विज्ञान है। न्याय तर्क करने की प्रक्रिया का विज्ञान है। इस नाते मनोविज्ञान से सम्बन्धित है।

निर्धारणात्मक (Normative) विज्ञान है। मनोविज्ञान जिस दशा में मानसिक तत्त्वों को पाता है, उसी दशा में उनकी व्याख्या करता है, वह केवल "क्या है?" की खोज करता है। "कैसा होना चाहिए?" से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। मनोविज्ञान का विषय है "जो है" और न्याय का विषय है "जो होना चाहिए"। मनोविज्ञान चेतन तत्त्वों का प्रत्यय अथवा अन्तःसृष्टि विषयक अध्ययन करता है। अनुभवसिद्ध ज्ञान के वाह्य रूप से वह कोई प्रयोजन नहीं रखता। वह इसकी फिक्र नहीं करता कि यह वाह्य रूप सत्य या सगत है अथवा नहीं है। इसके प्रतिकूल न्याय केवल यही देखता है कि अनुभवसिद्ध ज्ञान का एक प्रकार यानी वाह्य रूप अर्थात् अनुमिति सत्य अथवा संगत है या नहीं। तर्क की सगतता की कसौटी और शर्तों की छानबीन करने के लिये न्याय तर्क की प्रकृति और बनावट का अध्ययन करता है और ऐसा करने में वह चिन्त्य वस्तु पर सदैव दृष्टि रखता है। मनोविज्ञान मानसिक अवस्था के अन्तर्जगत से ही सम्बन्ध रखता है। वह अन्तःसृष्टि के जिन तथ्यों का अध्ययन करता है, निरपेक्ष रूप से करता है, उनके अनुरूप वाह्य-जगत के तथ्यों से वह सम्बन्ध नहीं रखता। मानसिक तथ्यों को वह जिस रूप में पाता है, उसी रूप में लेकर व्याख्या करता है। उन्हें किसी आदर्श पर ले जाने की चेष्टा नहीं करता। न्याय के अध्ययन का प्रयोजन सदैव आदर्शोन्मुख है। यही दोनों में अन्तर है।

मनोविज्ञान अन्तर्जगत की सृष्टि और विकास-क्रम का अध्ययन करता है; न्यायशास्त्र केवल विकसित रूप या अनुभूति को ही अपना साध्य बनाता है।

मनोविज्ञान विधेयात्मक विज्ञान है और न्याय-शास्त्र आदर्श स्थापक।

न्यायशास्त्र चेतन तत्त्वों का वहीं तक अध्ययन करता है, जहां तक वे तर्क में चिन्त्य वस्तु से सापेक्षिता रखते है। मनोविज्ञान निरपेक्ष रूप से उनकी व्याख्या करता है।

२ न्यायशास्त्र और अध्यात्मशास्त्र

अध्यात्मशास्त्र चिरन्तन सत्य का अनुसन्धान करता है। जिस जगत में हम रहते है, वह सत्य है या स्वप्न ? कौन चिरन्तन सत्य है, अन्तर्जगत या वाह्य जगत ? क्या जीव या आत्मा जैसी किसी वस्तु का अस्तित्त्व है ? क्या यह अनादि और अनन्त है ? परमार्थ क्या है ? ऐसे प्रश्नो का अनुसन्धान अध्यात्म विद्या करती है। वह जगत की स्थिति, प्रकृति और कारण-करण, हमारे अनुभव और ज्ञान पर विचार करती हुई इन प्रश्नो का निदान ढूंढती है। इसलिए व्यवस्थित और स्पष्ट रूप से विचार करने की इसे नितान्त आवश्यकता है। किन्तु अध्यात्म विद्या विशुद्ध वौद्धिक व्यापार है। इसमें विचार किसी प्रयोग का सहारा नही लेता। वह विशुद्ध चिन्तन द्वारा ही अग्रसर होता है। अध्यात्मशास्त्री जिस परिणाम पर पहुँचता है, उसका वोध वौद्धिक तत्त्वो द्वारा ही कराता है। सत्य की खोज में वह स्थूल जगत से सार संकलन करता है। अध्यात्म विद्या वडी कठिन विद्या है। इसको सीखने के लिये संयम की अत्यधिक आवश्यकता है। महान ग्रीक दार्शनिक प्लेटो की राय थी कि जो अध्यात्मशास्त्र का विद्यार्थी वनना चाहते है, उन्हे पहले गणितशास्त्र सीखना चाहिए। गणित शास्त्र अंक, विन्दु, रेखा और आकृति आदि को काम मे लाता है। किन्तु गणित-शास्त्रियो की परिभापा से इनका जो रूप स्थिर होता है, वह वाह्य जगत मे कही पाया नही जाता। अक के विषय मे हम केवल सोच सकते है, देख नही सकते। रेखागणित मे विन्दु का अस्तित्व तो स्वीकार किया गया है, पर वताया जाता है कि वह स्थान नही घेरता। इसी प्रकार रेखा के सम्वन्ध मे कहा जाता है कि वह लम्बाई तो रखती है, पर चौडाई नही रखती। इस प्रकार हम देखते है कि जिन वस्तुओ का गणितशास्त्र उपयोग करता है, वे स्थूल जगत के पदार्थ नही है। और चूंकि ये पदार्थ अगोचर है इसलिए गणितशास्त्र हमें उस सत्य का अनुसन्धान करने के लिए आधार देता है, जो चिरन्तन है, जो अतीन्द्रिय है। और

न्यायशास्त्र अध्यात्म-शास्त्र का सहायक है।

यदि हम गणित से न्यायशास्त्र की तुलना करे तो इसको और भी अधिक आन्तर प्रवृत्त पायेंगे। न्यायशास्त्र तर्क का अध्ययन है, जो कि मानसिक तथ्य अथवा प्रक्रिया है। इस क्रिया को हम तभी ग्रहण कर सकते है, जब हम अन्तरावलोकन करते है। इसलिए न्याय अन्य विद्याओ से अधिक, कम-से-कम, गणित से अधिक मन को मनन करने मे सहायता देता है। और चूँकि मन, चेतनता, जीव और जगत के कारण-करण तथा प्रकृति का मानसिक विवेचन करना ही अध्यात्म विद्या का काम है, इसलिए न्याय उसकी पहली सीढी है। इसके विपरीत अध्यात्मवादी दार्शनिक जिन तत्त्वो से अपने दर्शन का निर्माण करता है, वे बौद्धिक तत्त्व ही होते है और वे बुद्धि की कसौटी पर खरे तभी उतर सकते है, जब सत्य अथवा सगत हो। इसलिए अध्यात्मवादी दार्शनिक भी अपने बोध तत्त्वो को किसी आधारभूत मौलिक तथ्य से निष्कर्ष के रूप मे ही ग्रहण करता है। और इस क्रिया मे उसे तर्क के मौलिक सिद्धान्तो को मानना ही पडता है। सगतता के नियमो का पालन करना पडता है। इससे प्रमाणित हो जाता है कि अध्यात्मविद्या अपने लक्ष्य पर पहुँचने के लिये न्याय का मुखापेक्षी है।

३ न्यायशास्त्र और उक्ति-वैचित्र्य (Rhetoric)

उक्ति-वैचित्र्य का प्रयोजन है, वक्तव्य को गृहीत बनाना। प्रचार-कार्य्य मे, पत्रो में और वक्ताओ द्वारा मचो पर वक्तृता देने मे इसका बहुत ज्यादा व्यवहार किया जाता है। इन सभी कार्य्यों मे जनमत को अपनी ओर आकर्षित करने की चेष्टा की जाती है। इसीलिए इसे वस्तु को हृदयग्राही बनाने की कला कहते है। इसमे कुछ ऐसे नियमो का पालन करना अत्यावश्यक है जैसे चुने हुए शब्द अथवा शब्द-समूह और वक्तृता देने का ढग, जिससे अन्य व्यक्ति अपने मतानुकूल बनाये जा सके। पेशेवर लेखक और वक्तागण इसका उपयोग करते है।

उक्ति-वैचित्र्य प्रतीति कराने की कला होने के नाते न्याय पर आश्रित है।

वे पाठको या दर्शको की भावना-वृत्ति को अपने अनुकूल उत्तेजित करके अपने पक्ष मे लाने की चेष्टा करते है। अपने कथन को उसे ऐसा बनाना पड़ता है और

इस क्रम से रखना पडता है, जिससे वह ग्राह्य हो सके। इस प्रक्रिया मे उसे मनोविज्ञान और तर्क दोनो की आवश्यकता पडती है। इसलिए वह मनोविज्ञान और न्यायशास्त्र दोनो का जानकार होता है। न्यायशास्त्र के सहारे वक्ता अपने वक्तव्य को तर्कपूर्ण वनाता है। तर्कपूर्ण होने से वक्तव्य पर प्रतीति होती है। इसलिए जो विज्ञान उक्ति-वैचित्र्य के लिए आधारभूत है, उनमें एक न्यायशास्त्र भी है।

४ न्यायशास्त्र और व्याकरण

व्याकरण का प्रयोजन भाषा से है। व्याकरण मे हम भाषा के स्वरूप का अध्ययन करते है। भाषा के अक्षर, शब्द, शब्द-समूह और वाक्य आदि कई अग होते है। एक सार्थक शब्द कई अक्षरो से वनता है, परन्तु कई अक्षर मिलकर यदि कोई अर्थ न वतलायें तो वह अक्षर-समूह शब्द नही कहा जा सकता। इससे यह सिद्ध होता है कि शब्द भाषा के अखड अग है। सार्थक इसलिए है कि विचार अथवा मनोव्यापार के एक तत्त्व यानी धारणा अथवा भावना को सूचित करते है न कि इसलिए कि वे अक्षरो के सश्लिष्ट रूप है। ये शब्द, शब्द-समूह या वाक्य वनाते है, जिनमे शब्दो का क्रम-विधान अनुरूप मानसिक व्यापारो द्वारा निर्धारित होता है। जैसे जव हम किसी व्यक्ति से रुष्ट होते है और उससे घृणा करने लगते है, तव कहते है "जाओ, चले जाओ यहाँ से।" इसमे शब्दो का क्रम-विधान तै हुआ है, अन्तर्व्यापार द्वारा। फिर वाक्य भाषा के माध्यम से किसी निर्देश का व्यक्तिकरण होता है, जो विचार-व्यापार का एक तत्त्व है। पहले हम मन मे स्थिर करते है कि "आकाश नीला है।" फिर भाषा मे व्यक्त करते है। जव तक वह मन मे रहता है, तव तक निर्देश या निर्णय के रूप मे मनोव्यापार का एक तत्त्व कहा जाता है और जव भाषा द्वारा व्यक्त किया जाता है, तव वाक्य वन जाता है। निर्देश-व्यापार मे दो धारणाओ या भावनाओ का होना अनिवार्य है। उन्ही भावनाओ या धारणाओ के अनुरूप वाक्य मे दो सार्थक शब्द होते है। ऊपर के वाक्य मे आकाश और नीला दो सार्थक शब्द है। इनमे पहला विशेष्य है और दूसरा विशेषण। इनमे जो सम्बन्ध है, वह ऊपर कथित निर्देश की धारणाओ से निश्चित होता है। इसके अतिरिक्त "है"

शब्द भी निर्देश-व्यापार के सम्बन्ध मे सूचना देता है और आकाश और नीला शब्दो के पीछे जो धारणायें है, उनसे आशिक रूप में इसका अर्थ भी निश्चित होता है। इसलिए वाक्य की बनावटनिर्धारित होती है तदनुरूप मनोव्यापार पर, और अन्त मे यह पाया जाता है कि Syntax मनोव्यापार के विश्लेषण ही द्वारा सम्भव होते है। अत' हम अन्त मे इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि व्याकरण न्याय पर आश्रित है, क्योकि व्याकरण भाषा का अध्ययन करता है और भाषा निश्चित होती है मनोव्यापार के स्वरूप के अनुसार। वस्तुत. न्याय वह विज्ञान है, जो मनोविज्ञान के उस रूप का अध्ययन करता है, जिसे तर्क कहा जाता है और जिसके अन्तर्गत पद, वाक्य और उनके अर्थ है। इस नाते न्याय व्याकरण का सहायक कहा जा सकता है, क्योकि व्याकरण का प्रयोजन भाषा से ही है और भाषा का अश है वाक्य।

भाषा का स्वरूप विचार अथवा मनोव्यापार के रूप द्वारा निर्दिष्ट होता है। व्याकरण का प्रयोजन भाषा से है और न्याय का विचार से। इसलिये व्याकरण न्याय का आश्रित है।

—:o:—

अध्याय २ का सारांश

न्यायशास्त्र का सम्बन्ध मनोविज्ञान से है। मनोविज्ञान (Psychology) मनस्तत्व का विज्ञान है और न्यायशास्त्र (Logic) तर्क का विज्ञान है, जो कि एक मानसिक तथ्य है, इसलिए न्यायशास्त्र मनोविज्ञान से सम्बन्धित है और तार्किक प्रक्रियाओ की व्याख्या के लिए उस पर निर्भर है, किन्तु दोनो में स्पष्ट अन्तर है। मनोविज्ञान एक विधेयात्मक विज्ञान है, जबकि न्यायशास्त्र एक निर्धारक विज्ञान है। इसके अतिरिक्त मनोविज्ञान मानसिक तत्वो के विकास से सम्बन्ध रखता है। वोध, इच्छा-शक्ति, भावानुभूति आदि इसके विषय होते है। जबकि न्यायशास्त्र केवल तर्क को अपना विषय मानता है। जो कि उपलब्धि (Cognition) का एक रूप है। न्यायशास्त्र तर्क के विकास से सम्बन्ध नही रखता।

अध्यात्मशास्त्र (Mataphysics) अन्तिम ,सत्य (Ultimate Reality) की खोज करता है और यह विशुद्धतर्क पर आधारित होता है। अब चूंकि न्यायशास्त्र तर्क का विज्ञानहै, इसलिएअध्यात्मशास्त्र न्यायशास्त्र पर निर्भर रहता है अर्थात् अध्यात्मशास्त्र के लिए न्यायशास्त्र सहायक का काम करता है।

उक्ति-वैचित्र्य (Rhetoric) प्रभाव डालने की कला है। उपयुक्त शब्दो तथा शब्द-समूहो द्वारा दूसरो को प्रभावित करना इस कला का उद्देश्य होता है। वाद-विवाद भी इसी कला के अन्तर्गत आता है, इसलिए यह कला भी न्यायशास्त्र पर निर्भर है।

व्याकरण का भी न्यायशास्त्र से घनिष्ट सम्बन्ध है। व्याकरण का वर्ण्य विषय भाषा है, जो कि शब्दो और वाक्यो से बनी हुई होती है। भाषा के बिना विचार सम्भव नही है, वह भाषा के ही माध्यम से व्यक्त भी होता है। इसलिए भाषा का स्वरूप विचार के स्वरूप द्वारा निर्धारित होता है। बिना विचार के स्वरूप को जाने हुए हम उसके अनुरूप भाषा के स्वरूप को नही जान सकते, इसलिए व्याकरण जो भाषा को अपना वर्ण्य विषय बनाता है,न्यायशास्त्र पर निर्भर रहता है, क्योकि न्यायशास्त्र तर्क का विज्ञान है, जो विचार का एक रूप है।

—:o:—

अध्याय २ : अनुशीलन

Q १—न्यायशास्त्र और मनोविज्ञान में क्या सम्बन्ध है ? स्पष्ट करो।

(1) न्यायशास्त्र मनोविज्ञान से सम्बन्धित है, मनोविज्ञान मनस्तत्त्व का विज्ञान है। मनस्तत्त्व में उपलब्धि (Cognition) भावानुभूति (Feeling) और इच्छा-शक्ति (Will) आदि तत्त्व होते हैं। न्यायशास्त्र तर्क का विज्ञान है, जो उपलब्धि का एक रूप है। इसलिए न्यायशास्त्र मनोविज्ञान से सम्बन्धित है, क्योकि दोनो का वर्ण्य विषय एक ही है, अर्थात् एक ही मानसिक तत्त्व है।

(ii) न्यायशास्त्र मनोविज्ञान पर निर्भर है।

मनोविज्ञान सब प्रकार के मानसिक तथ्यो की छानबीन करता है, न्यायशास्त्र केवल एक की अर्थात् तर्क की। इसलिए न्यायशास्त्र मनोविज्ञान पर निर्भर रहता है।

Q २—न्यायशास्त्र क्या मनोविज्ञान की एक शाखा है ?

नही, न्यायशास्त्र मनोविज्ञान की शाखा नही है। मनोविज्ञान सब तरह के मानसिक तथ्यो की छानबीन करता है, जबकि न्यायशास्त्र केवल एक की अर्थात् तर्क की। इसलिए न्यायशास्त्र केवल एक अश को अपना वर्ण्य विषय बनाता है और ऐसा करने से मनोविज्ञान की एक शाखा प्रतीत होता है। किन्तु वास्तविकता यह नही है। न्यायशास्त्र के दृष्टिकोण मनोविज्ञान के दृष्टिकोण से भिन्न है। मनोविज्ञान एक विधेयात्मक विज्ञान है, जबकि न्यायशास्त्र एक आदर्श स्थापक विज्ञान है। मनोविज्ञान तर्क का अध्ययन अन्य मानसिक तथ्यो के साथ करता है। वह तर्क की प्रामाणिकता से सम्बन्ध नही रखता किन्तु न्यायशास्त्र के लिये प्रामाणिकता मुख्य वस्तु है। वह प्रामाणिकता की दशाओ की छानबीन करता है।

Q. ३—क्या न्यायशास्त्र मनोविज्ञान के साथ तादात्म्य रखता है ?

दूसरे प्रश्न के उत्तर का अन्तिम अश देखो।

Q ४—अध्यात्मशास्त्र और न्यायशास्त्र में क्या सम्बन्ध है ? स्पष्ट करो।

अध्यात्मशास्त्र सत्य का मननात्मक (Speculative) अध्ययन करता है। मनन व्यवस्थित चिन्तन या तर्क ही होता है। इसलिए न्यायशास्त्र अध्यात्मशास्त्र का सहायक होता है।

Q. ५—क्या न्यायशास्त्र उक्ति-वैचित्र्यशास्त्र (Rhetoric) से एकरूपता रखता है ?

नही न्यायशास्त्र उक्ति-वैचित्र्य शास्त्र (Rhetoric) से एकरूपता नही रखता। न्यायशास्त्र तर्क का विज्ञान है। उक्ति-वैचित्र्यशास्त्र विवाद (Argumentation) की कला है, जिसमे तर्क का विज्ञान अन्तर्निहित रहता है। उक्तिवैचित्र्यशास्त्री तर्क का युक्तिपूर्ण व्यवहार करके श्रोताओ को प्रभावित

करना चाहता है और अपना मन्तव्य मनवाना चाहता है। इसलिए उक्ति-वैचित्र्य शास्त्र तर्कशास्त्र पर निर्भर रहता है।

Q. ६—न्यायशास्त्र और व्याकरणशास्त्र के सम्बन्ध को स्पष्ट करो।

विचार और भाषा मे घनिष्ट सम्बन्ध है। भाषा विचार का माध्यम है। और चूंकि भाषा मे विचार अन्तर्निहित रहता है, इसलिए भाषा का स्वरूप विचार के स्वरूप के अनुसार होता है। व्याकरण भाषा का विज्ञान है और न्यायशास्त्र तर्क का। जो विचार का एक रूप है। इसलिए व्याकरण न्यायशास्त्र पर निर्भर रहता है। व्याकरण को भाषा सम्बन्धी तर्क के व्यक्तिकरण का अध्ययन करने के लिए न्यायशास्त्र की सहायता लेनी पडती है।

Q. ७—व्याकरण क्या है? क्या न्यायशास्त्र का व्याकरण से कोई संबध है?

प्रश्न ६ के उत्तर को देखिये।

Q. ८—न्यायशास्त्र किस प्रकार अध्यात्मशास्त्र का सहायक हो सकता है?

देखो अध्याय २ रा. सेक्सन दूसरा।

—०—

अध्याय ३

चिन्तन के नियम

चिन्तन के आधारभूत तीन नियम है। वे है एकरूपता का नियम (Law of Identity), विरोधका नियम (Law of Contradiction) और मध्यम निषेध का नियम (Law of Excluded Middle)। नियम मे दो बाते रहती है क्रमव्यवस्था और आवश्यकता। इन नियमो को विधान भी कहा जाता है। वह इसलिए कि इन नियमो से सम्मत होकर ही चिन्तन गतिशील होता है। यदि ये नियम काम न करें तो चिन्तन आगे नही बढ सकता। इन तीनो नियमो का कही अपवाद नही होता। जब हम भूल करते है, तब भी इन नियमो की उपेक्षा नही करते। उस स्थिति मे भी जो कुछ हम सोचते है, इन्ही नियमो के अनुसार सोचते है। चेतन अवस्था मे जो कुछ भी हम सोचते है, उसमें इन नियमो की उपेक्षा नही कर सकते।

१ एकरूपता का नियम (Law of Identity)

इस नियम को कई तरह से दर्शाया गया है। जैसे—"जो है, है।" "अ है अ" "प्रत्येक वस्तु अपने अनुरूप रहती है।" "जो सत्य है, वह सदैव सत्य है।" "जो असत्य है, वह सदैव असत्य है" इत्यादि। इनमे ये रूप, "जो कभी सत्य है, वह सदैव सत्य है।" और "जो कभी असत्य है, वह सदैव असत्य" नियम के संकीर्ण रूप है। सत्य और असत्य पद का निर्णयवाक्य (Proposition) मे उपयोग किया जाता है। केवल निर्णयवाक्य के लिए कह सकते है कि यह सत्य है या असत्य। किन्तु विचार-व्यापार निर्णयवाक्य तक ही सीमित नही है। हम अनेको प्रकार से अनेको विषय के सम्बन्ध मे विचार करते है। इसलिए हमे एकरूपता का वह रूप सामने रखना है, जिसका आरोप हमारे अनुभव के सम्पूर्ण क्षेत्र पर हो सके। एकरूपता के "अ, अ है" "जो है, है" रूप श्रेष्ठतम रूप है। इनसे यह स्पष्ट होता है कि प्रत्येक वस्तु की एक प्रकृति होती है और

वह अपने अनुरूप रहती है। यानी वह सदैव अपने अनुरूप रहती है और आधार भूत उसमें जो गुण है, वे सदैव विद्यमान रहते हैं।

परिवर्तन का असर एकरूपता पर नहीं पड़ता।

इस प्रकार आग अथवा अन्य पदार्थ अपने अनुरूप रहते है। एक वस्तु या पदार्थ दूसरे से केवल इसी कारण पृथक किया जाता है कि प्रत्येक की अनुरूपता अपने अपने गुणों के अनुसार अपनी प्रकृति पर स्थिर है। वाह्य रूप की अवस्था वदल सकती है, पर वस्तु नही वदलती। इससे एकरूपता पर कोई असर नही पड़ता। पानी तरल पदार्थ से वर्फ, ठोस पदार्थ, में परिवर्तित होता है। पानी और वर्फ दोनो अपने अपने नाम के अनुरूप भिन्न अवस्थाओ को सूचित करते हुए भी एक ही वस्तु है। उनके प्राकृतिक गुण अविच्छिन्न हैं। अस्तु एकरूपता का अर्थ है कि जब तक कोई वस्तु या पदार्थ है, उसकी प्रकृति एक सी रहती है।

कुछ लोगो का कहना है कि "एकरूपता का लगाव सदैव अनेकरूपता से रहता है। वे कहते है कि "अ, अ है" का सूत्र इतना सूक्ष्म है कि यह एकरूपता के सिद्धान्त का प्रतिपादन करने में असमर्थ है। यह हमारे अनुभव से कोई सम्बन्ध नही रखता, एकरूपता के केवल सूक्ष्म रूप का आभासमात्र देता है।" यह मत मान्य नही है। भ्रम के ही कारण लोग ऐसा कहते है। यह अवश्य सत्य है कि

एकरूपता का ज्ञान प्राप्त करने के लिये अन्तर का सहारा लिया जाता है, परन्तु एकरूपता और अन्तर में कोई मौलिक सम्बन्ध नहीं है।

हम अन्तर के ही कारण एकरूपता को स्थिर कर पाते है। जैसे यदि हम किसी मनुष्य को कल स्टेशन पर देखते है और आज हम फिर उसे अपने घर के पास देखते है तो फौरन पहचान लेते है। यहाँ पर हम दो विभिन्न स्थानो और अवसरो को देखकर ही उस मनुष्य की पहचान करते है। उसकी एकरूपता स्थिर करते है। एकरूपता का नियम यह नही वतलाता कि हम किसी वस्तु की एकरूपता क्योकर स्थिर करते है। यह तो विचार-व्यापार या वुद्धि-व्यापार की एक मान्यता है। विचार-क्रिया तव तक सम्भव नही है, जवतक प्रत्येक वस्तु के सम्बन्ध में

यह न मान लिया जाय कि जो है, है। यदि हम सारे ज्ञान को वस्तु, पद और निर्णय-वाक्य के रूप मे सजाले तो हम देखेगे कि वस्तु की प्रकृति अपरिवर्तित रहती है, पद का अर्थ अभिन्न है और निर्णय-वाक्य यदि सत्य है, तो सदैव सत्य है और असत्य है तो सदैव असत्य है।

नियम का तात्पर्य यह है कि कुछ ऐसी परस्पर-विरोधी बाते है जो एक साथ विचार में उपस्थित नही हो सकती। जैसे ब, है विरोधी नही-ब का, अस्तित्व विरोधी है अनस्तित्व का और स्वीकारात्मक विरोधी है अस्वीकारात्मक का।

२ विरोध का नियम (Law of Controdiction)

इस नियम को कुछ लोगो ने निषेध का नियम कहकर भी सम्बोधित किया है। यह नियम भी एकरूपता के नियम की भाँति कई प्रकार से व्यक्त किया जाता है। अरिस्तू (Aristotle) ने निर्णय वाक्य (proposition) को दृष्टिगत रखकर इसका निरूपण किया है। वह कहता है. अ, है ब और अ, नही है ब, दोनो वाक्य सत्य नही है।

अन्य मत—"कोई निर्णवाक्य सत्य और असत्य दोनो नही हो सकता।" "है और नही है, किसी वस्तु के सम्बन्ध मे दोनो नही कहे जा सकते।" "अ, है ब और नही है ब दोनो कथन सत्य नही है।"

जिस प्रकार एकरूपता का नियम केवल निर्णय-वाक्य तक ही सीमित नही है, उसी प्रकार विरोध का नियम भी वाक्य तक ही अवरुद्ध नही है। विरोध के नियम मे यह तथ्य अन्तर्निहित है कि हम किसी निर्णय-वाक्य को एक ही साथ सत्य के रूप मे स्वीकार और असत्य के रूप मे अस्वीकार नही कर सकते। परन्तु इसे उस नियम की परिभाषा नही कह सकते, क्योकि उसका विस्तार निर्णयवाक्य (Proposition) तक ही सीमित नही है। नीचे दी हुई परिभापाए इस परिभाषा से अधिक युक्तियुक्त है। "अ, ब और नही-ब दोनो नही हो सकता।" "कोई वस्तु है और नही है, दोनो स्थिति मे नही हो सकती।" विरोध के नियम

विरोध का नियम वाक्य तक ही सीमित नही है। इसलिये वाक्य के दो विधेय, सत्य और असत्य, इसका पूरा-पूरा अर्थ नही बता सकते।

का यह निरूपण अधिक युक्ति-सगत है। परस्पर विरोधी बाते एक ही साथ विचार मे उपस्थित नही हो सकती। ब, नही–ब का विरोधी है। अस्तित्त्व विरोधी है, नास्तित्त्व का। स्वीकारात्मक विरोधी है, नकारात्मक या अस्वीकारात्मक का। ब, नही–ब का विरोधी है। अर्थात् नही–ब का अर्थ ब के अतिरिक्त और कुछ है। इसलिए ब अपने रूप से अभिन्न है। इसकी प्रकृति नही–ब के प्रकृति से कोई साझा नही रखती। यदि यह साझा रखती तो ब, ब न रहकर कुछ और ही हो जाता। इसलिए नही-ब, ब का विरोधी है। वस्तुएँ भिन्न हो सकती है, पर भिन्न होने से ही विरोध का होना अनिवार्य्य नही है। भिन्न वस्तुएँ भिन्न-भिन्न स्थान घेरती है और एक स्थान पर एकही वस्तु रह सकती है। ये विरोधी तब होती है, जब हम इनमे से दो या अधिक की स्थिति एक ही स्थान पर सोचते है। तब वे एक दूसरे का विरोध करती है। परिणाम यह होता है कि हम दोनो की एक साथ और एक स्थान पर स्थिति नही सोच सकते। जैसे:—

भिन्नतायें जब समकक्षिता का दावा करती है, तब विरोधी हो जाती है।

रंग बहुत से होते हैं और इन भिन्न रगो मे कोई विरोध नही जान पड़ता। परन्तु कोई वस्तु एक समय मे एक ही रग धारण कर सकती है। जब हम यह सोचते है कि एक ही समय में कोई वस्तु काले और सफेद दोनो रंगो से ढकी हुई है, तब हम उनको विरोध में लाते है। यदि वह वस्तु काली है, तो सफेद रग वहाँ नही हो सकता और यदि वह वस्तु सफेद है तो काला रग वहाँ नही हो सकता। काला और सफेद दो भिन्न-भिन्न रग है। दोनोमे भिन्नता है, पर यदि ऐसा सोचा जाय कि दोनो एक साथ एक ही वस्तु को ढँकते है, तो विरोध उपस्थित हो जाता है और हम वैसा सोचने मे असमर्थ हो जाते है। अस्तु विरोध के नियम का यह अर्थ होता है कि विरोधी बाते एक साथ नही सोची जा सकती।

विरोध के नियम का अर्थ है कि हम परस्पर विरोधी बातो को संश्लिष्ट रूप से नहीं सोच सकते।

३ मध्यम-निषेध (The Law of Excluded Middl)

मध्यम-निषेध नियम का निरूपण भी भिन्न-भिन्न प्रकार से किया जाता है। उनमे से कुछ है· "कोई निर्णय-वाक्य सत्य है या असत्य", "अ, व है या नही-व है", "कोई वस्तु या तो है या नही है।" मध्यम-निषेध नियम का अर्थ यह है कि जो विकल्प है, वे वास्तविक है। उनमें से एक या दूसरा ही स्वीकार किया जा सकता। कोई तीसरी वस्तु बीच में नही आती, जो स्वीकार की जाय। निर्वाचन कार्य्य 'अथवा' 'या' इत्यादि द्वारा किया जाता है। यदि कहा जाय: "अ, व है या स है" तो अ के व और स दो वैकल्पिक रूप हो सकते है। इनमे से एक ही अ का प्रति-रूप माना जा सकता है, दोनो नही। इसी प्रकार अस्तित्व और नास्तित्व दो वैकल्पिक हैं तथा सत्य और असत्य दो वैकल्पिक है। वस्तु या तो है या नही है। है और 'नही है' के मध्य कोई तीसरा रास्ता नही हो सकता। निर्णय-वाक्य सत्य हो सकता है या असत्य, किन्तु दोनो नही हो सकता। इन उदाहरणो से विदित हो जाता है कि मध्यम-निषेध नियम का क्या उपयोग है। इन सबो में देखा जाता है कि दोनो विरोधी पद असत्य नही हो सकते। मध्यम-निषेध नियम यह नही बताता कि कौन-कौन वैकल्पिक युग्म है अथवा कहाँ-कहाँ वे पाये जाते है। यह नियम केवल यह बतलाता है कि उनके सम्बन्ध मे मुख्य विधान क्या है। अर्थात् वैकल्पिक परस्पर बहिर्वर्ती होते है और उन दोनो के अतिरिक्त कोई तीसरा माध्यम सम्भव नही है। ये वास्तव में विरोधी है। इनको विरोधी इसलिए कहा जाता है कि एक ही समय में एक ही वस्तु के बारे मे दोनो एक ही सम्बन्ध नही रखते। फिर भी उनमें से एक का सम्बन्ध अनिवार्य्यरूप से स्वीकार किया जाता है। विरोध का नियम यह बतलाता है कि दोनो विरोधी सम्मिलित नही होते, पर मध्यम-निषेध का नियम यह बतलाता है कि विरोधियो मे से दोनो असत्य नही हो सकते। उनमे से एक अवश्य सत्य होता है।

४ पर्याप्त कारण का नियम (The Law of Sufficient Reason)

विचार में मूलभूत इन तीनो नियमो के साथ कुछ नैयायिक एक चौथे नियम

को भी जोडते है। उसे वे पर्याप्त कारण का नियम कहते हैं। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक वस्तु जो है वह "वैसी क्यो है ?" "दूसरी तरह की क्यो नही है ?" इसका पूरी तरह से समाधान करता है। स्पष्ट है कि इस नियम के दो पक्ष है। अथवा यह नियम दो नियमो का सश्लिष्ट रूप है। इनमे पहला है सार्वभौमिक कारण (The Law of Universal Reason) का नियम और दूसरा है आधारी और आधार (Ground and Consequent) का नियम। इनमें सार्वभौमिक कारण का अर्थ यह होता है कि प्रत्येक कार्य्य का कारण होता है और आधारी और आधार का अर्थ होता है कि प्रत्येक निर्णय-वाक्य का कोई मूल हेतु अथवा आधार होता है, यह सच है कि इस दुनियाँ में कोई वस्तु अकारण नही है। जो है उसके लिये पर्य्याप्त करण है। किन्तु नैयायिको में कारण के सिद्धान्त के सम्बन्ध में मतभेद है। इसकी विवेचना उपयुक्त स्थल पर की जायगी। यहाँ पर केवल इतना बता देना काफी होगा कि सार्वभौमिक कारण का नियम विचार का नियम नही है। विचार का नियम तो उसे कहते है, जिसे उपयोग में लाये बिना विचार-व्यापार सम्भव ही नही हो सकता। हम देख चुके है कि

पर्याप्तकारण के नियम के अन्तर्गत सार्वभौमिक कारण और मूलहेतु या आधार के नियम है।

एकरूपता (तादात्म्य), विरोध (व्याघातक) और मध्यदशानिषेधक नियमो का उपयोग किये बिना हम विचार-व्यापार नही कर सकते। परन्तु सार्वभौमिक कारण के सम्बन्ध में ऐसा नही कहा जा सकता। जब हम किसी वस्तु के सम्बन्ध मे सोचते है, तब यह अनिवार्य्य नही होता कि हम उसका कारण भी सोचे। पहले हम वस्तु के विषय मे सोचते है, फिर उसके कारण की ओर हमारा ध्यान जाता है। इसलिए यह कहना उचित न होगा कि किसी वस्तु के विषय में सोचने के लिये हमें उसके कारण पर भी सोचना पडता है। अपने अनुभव से हम इस कथन की सत्यता नही प्रमाणित कर सकते। अस्तु सार्वभौमिक कारण के सिद्धान्त को

कारण का नियम विचार-व्यापार में समाविष्ट नहीं रहता, इसलिये इसे विचार का न तो नियम ही मान सकते है न उसके नियमो का अंग ही।

हम विचार का मौलिक सिद्धान्त नही मान सकते और न उसे विचार के नियमो का अग ही कह सकते है।

यह कथन भी सत्य नही है कि प्रत्येक निर्णय-वाक्य का आधारभूत कोई वाक्य होता है, अथवा प्रत्येक निर्णय-वाक्य किसी पूर्ववर्ती वाक्य का अनुवर्ती होता है। यदि आधार और आधारित अथवा पूर्ववर्ती और अनुवर्ती का सिद्धान्त सर्वमान्य होता तो प्रत्येक निर्णय-वाक्य अपूर्ण होता। वह किसी अनुमान का निष्कर्ष मात्र होता। आगे चलकर हम देखेगे कि प्रत्येक अनुमान कई निर्णय-वाक्यो से बनते है। अनुमान मे निष्कर्ष अवश्य ऐसा वाक्य है, जो निर्णय-वाक्यो पर आधारित रहता है। दूसरे शब्दो मे इसे यो कह सकते है कि निर्णयवाक्य निष्कर्ष के लिये पर्याप्त कारण है। फिर भी ऐसा कहा जा सकता है कि एक निर्णय-वाक्य भी दूसरे निर्णय वाक्य से उद्भूत होता होगा। परन्तु यह तै है कि यदि हम एक निर्णय-वाक्य से दूसरे निर्णय-वाक्य को पीछे की ओर जायँ तो अन्त में एक ऐसे निर्णय वाक्य पर पहुँचेगे जो किसी का निष्कर्ष नही होगा।

ऐसे भी वाक्य हैं जो अन्य वाक्यों के निष्कर्ष नहीं हैं। आधार - आधारित का सिद्धान्त सर्व-व्याप्त नही हैं। इसलिये विचार का नियम नहीं है—विचार का नियम वही हैं, जो विचार-व्यापार में अन्तनिहित रहता है।

विचार-व्यापार के भिन्न-भिन्न रूप है—प्रत्यक्ष ज्ञान (Perception) एक प्रकार का विचार है। ऐसे विचार-व्यापार पूर्ववर्ती-अनुवर्ती नियमो से बिल्कुल स्वतत्र है। जब हम देखते हैं कि एक वृक्ष हरा है, तब हम सोचते है। हमारे विचार का व्यक्त रूप है, "यह वृक्ष हरा है।" इसे कौन अस्वीकार कर सकता है कि "यह वृक्ष हरा है" एक वाक्य है। परन्तु यह वाक्य किसी वाक्य का निष्कर्ष नही है। इस वाक्य का आधार है, वह वृक्ष जो हरा देखा गया है। इसलिए यह वाक्य अपना आधार स्वय है। यह किसी अन्य वाक्य का सहारा नही लेता। इससे विदित होता है कि आधार और आधारित नियम का विस्तार हमारे सम्पूर्ण अनुभव के क्षेत्र पर नही है और इसलिए इसे विचार का नियम नही मान सकते और न विचार के नियमो मे से इसे किसी नियम का अग ही मान सकते

है। जैसा कि पहले कहा गया है, पर्याप्ति कारण का नियम सर्वव्याप्तहेतुत्व और आधार-आधारित दोनो सिद्धान्तो का संश्लिष्ट रूप है। अब चूंकि विचार-व्यापार इन दोनो नियमो से बाधित नही है, इसलिए वह पर्याप्त कारण के नियम से भी बाधित नही है। अस्तु, पर्याप्ति-कारण का नियम विचार का नियम नही है।

---:o:---

अध्याय ३ का सारांश

चिन्तन के तीन आधारभूत नियम है। वे है—तादात्म्य का नियम, विरोध का नियम, मध्यमनिषेध का नियम। तादात्म्य (The Law of Identity) के नियम का यह अर्थ है कि प्रत्येक वस्तु अपनी प्रकृति रखती है और वह अपने आपसे सदैव अभिन्न होती है। इस नियम का विधान है —

अ है अ या प्रत्येक वस्तु अपने से अभिन्न है।
या जो एक बार सत्य है, वह सदैव सत्य है। या
जो एक बार असत्य है, वह सदैव असत्य है।

विरोध (The Law of Contradiction) के नियम का तात्पर्य यह है कि जो बाते विरुद्ध या व्याघातक है, वे एक साथ नही सोची जा सकती। इस नियम का विधान है कि अ, ब और नही-ब दोनो एक साथ नही हो सकता या ऐसा निर्णय-वाक्य (Proposition) एक साथ नही हो सकता—अ है ब और अ है नही-ब।

मध्यम निषेध (The Law of Excluded Middle) के नियम का विधान है कि कोई निर्णय-वाक्य या तो सत्य है, अथवा असत्य। अ है ब या अ नही है ब। एक वस्तु का या तो अस्तित्व है या उसका अस्तित्व नही है। मध्यम-निषेध के नियम का तात्पर्य है कि विकल्प वास्तविक है। इन विकल्पो के मध्य कोई अन्य वस्तु वरेण्य नही हो सकती। इनमें से एक विकल्प अवश्य ग्राह्य है।

कुछ नैयायिक एक चौथा नियम भी मानते है, जिसे पर्याप्त कारण का नियम (The Law of Sufficient Reason) कहते है। इस नियम के

अनुसार प्रत्येक वस्तु या कार्य के लिये पर्याप्त कारण होना चाहिए। इसके अन्तर्गत कारण के नियम (The Law of Causality) और आधार आधेय (Ground and Consequences) के नियम भी आ जाते हैं। परन्तु कारण का नियम (The Law of Causality) चिन्तन का नियम नहीं है, क्योंकि इसके बिना चिन्तन व्यापार रुक जाय ऐसी बात नहीं है। आधार और परिणाम का नियम एक निर्णय-वाक्य से दूसरे निर्णय-वाक्य पर पहुँचाने में लगा रहता है। इसे निगमन कहते हैं। ऐसे निगमन चिन्तन-व्यापार के अन्तर्गत अवश्य आते हैं। परन्तु चिन्तन-व्यापार के ऐसे भी रूप हैं, जो निगमन नहीं कहे जा सकते। इसलिए पर्याप्त कारण का नियम (Principal of Sufficient Reason) चिन्तन का नियम नहीं हो सकता, क्योंकि इसके बिना भी चिन्तन-व्यापार सम्भव है।

—:०:—

अध्याय ३ : अनुशीलन

१. चिन्तन के कितने नियम हैं? उनकी व्याख्या करो।

संकेत.—चिन्तन के तीन आधार-भूत नियम हैं। वे हैं—तादात्म्य का नियम विरोध का नियम और मध्यमनिषेध का नियम। (व्याख्या के लिए पाठ्यपुस्तक देखो और नियमों के विधान बनाओ)

कुछ लोग इन नियमों में एक चौथा नियम भी जोड़ देते हैं। जिसे पर्याप्त कारण का नियम कहते हैं। यह नियम चिन्तन का नियम नहीं माना जा सकता, क्योंकि उसके अभाव में भी चिन्तन-व्यापार सम्भव है।

२. तादात्म्य का नियम किसे कहते हैं? इसकी व्याख्या करो।

३. विरोध के नियम के भिन्न-भिन्न विधानों का वर्णन करो और नियम के तात्पर्य को समझाओ। (देखो Section II और हासिया की टिप्पणी)

४. मध्यम निषेध के नियम की व्याख्या करो (देखो तीसरा परिच्छेद और पृष्ठ की पार्श्व-टिप्पणी)

५. पर्याप्त कारण का नियम क्या है ? (देखो परिच्छेद ४ विशेषता पृष्ठ की पार्श्व टिप्पणी)

६ क्या पर्याप्त कारण का नियम चिन्तन का नियम है ?

सकेत :—इस नियम का मतलब यह है कि प्रत्येक घटना या वस्तु के लिये कोई कारण होता है। इसलिए यह नियम=कारण-नियम+आधार और परिणाम। कारण-नियम का अर्थ यह कि प्रत्येक घटना का कोई कारण होता है और उन तथ्यो से सम्बन्ध रखता है, जो कारण और परिणाम है। परन्तु आधार-कारण का नियम निष्कर्ष रूप एक निर्णय-वाक्य से दूसरे निर्णय-वाक्य पर पहुँचने से सम्बन्ध रखता है। इसलिए पर्याप्त कारण का नियम विचार का नियम नही है, क्योकि यह ऐसा नियम नही है, जिसके बिना चिन्तन-व्यापार सम्भव नही।

७. विरोध के नियम की मध्यम-निषेध के नियम से तुलना करो।

सकेत —विरोध के नियम का अर्थ यह है कि प्रतिकूल वस्तुयें होती है और उनपर एक साथ समुच्चय रूप मे चिन्तन नही किया जा सकता, इसके प्रतिकूल मध्यम-निषेध का यह अर्थ है कि विकल्प पूर्ण होते है और विकल्पो के मध्य में और कुछ नही होता और हमको दो मे से एक को ही ग्रहण करना पडता है।

अध्याय ४

पद और निर्णय-वाक्य

(Terms of Proposition)

१ वाक्य, शब्द और पद

हम पहले देख चुके है कि न्यायशास्त्र भाषा की व्याख्या भी करता है। भाषा शव्दो और वाक्यो से बनी हुई होती है। वाक्य से कोई आज्ञा, इच्छा, भावना, अथवा निर्देश व्यक्त होता है। जैसे —"तुम अपनी जगह हरगिज मत छोडो" से आज्ञा, "क्या मै अन्दर आ सकता हूँ" से इच्छा, "मै बरबाद हो गया" से भावना और "सूर्य्य बहुत गरम है" से निर्देश व्यक्त होता है। वे वाक्य जिनसे निर्देश, सम्मति, विश्वास या अविश्वास प्रकट हो, निर्णय-वाक्य कहलाते है। तर्क मे ऐसे कई वाक्य रहते है और न्याय तर्क का विज्ञान है, इसलिए उन वाक्यो से सम्बन्ध रखता है, जो निर्णय-वाक्य कहलाते है।

न्याय का प्रयोजन उन वाक्यों से है जो निर्देश (विश्वास या अविश्वास) व्यक्त करते हैं।

मिल के अनुसार निर्णय-वाक्य (Proposition) वह वाक्य है, जिसमे किसी विधेय द्वारा किसी उद्देश्य का अस्तित्व स्वीकार या अस्वीकार किया जाता है।" शव्दो द्वारा जो निर्देश व्यक्त किया जाता है, वही निर्णय-वाक्य है। निर्देश मे किसी वस्तु के प्रति कुछ कहा जाता है। प्रत्येक निर्देश में दो भाग होते है —एक वह जिसका अस्तित्त्व स्वीकार या अस्वीकार किया जाता है और दूसरा वह जिसके द्वारा अस्तित्त्व स्वीकार या अस्वीकार किया जाता है। निर्देश जब भाषा

द्वारा व्यक्त होता है, तब निर्णय-वाक्य कहलाता है। इसलिये निर्णय-वाक्य के भी दो भाग हुए और इन दोनो भागो के लिये दो नाम हुए। ये उद्देश्य और विधेय कहे जाते है। जिसके सम्बन्ध में कुछ कहा जाता है, वह उद्देश्य है और जो कुछ कहा जाता है, वह विधेय है। जैसे यदि कहा जाय कि वर्फ सफेद है, तो "वर्फ" उद्देश्य हुआ और "सफेद" विधेय। इसलिए निर्णय-वाक्य मे उद्देश्य और विधेय दो शब्द होते हैं, परन्तु प्रत्येक शब्द उद्देश्य या विधेय नही बन सकता। केवल कुछ ही शब्द उद्देश्य या विधेय बन सकते है। जो शब्द उद्देश्य या विधेय बन सकते है, वही पद कहे जाते है। इसलिए सब पद शब्द कहे जा सकते है, परन्तु सब शब्द पद नही कहे जा सकते।

हरेक निर्देश में इसलिये हरेक निर्णय-वाक्य में एक उद्देश्य और एक विधेय रहता है।

२. शब्द दो प्रकार के होते है

शब्द दो श्रेणियो मे विभक्त किये गये है :—निरन्वय और सान्वय। निरन्वय शब्द निर्णय-वाक्य मे उद्देश्य या विधेय होने की क्षमता रखता है। सान्वय शब्द निर्णय-वाक्य मे उद्देश्य या विधेय होने की क्षमता नही रखता। सम्बन्धवाचक सर्वनाम और अव्यय शब्द सान्वय है और शेष शब्द निरन्वय है। परन्तु जब निरन्वय शब्द कई शब्दो से मिलकर शब्द-समूह होता है, तब सान्वय शब्द भी उस शब्द-समूह का अग हो सकता है। जैसे यदि कहा जाय, "भारत का प्रधान मन्त्री" तो यह शब्द-समूह निरन्वय होगा, क्योकि यह वाक्य मे उद्देश्य या विधेय बनने को क्षमता रखता है। हम यह वाक्य बना सकते है कि पडित जवाहर लाल नेहरू भारत के प्रधान मन्त्री है या भारत का प्रधान मंत्री ससार का सबसे बडा राजनीतिज्ञ है। इनमें एक वाक्य मे 'भारत का प्रधान मन्त्री' विधेय है, तो दूसरे मे उद्देश्य है।

शब्द : निरन्वय और समन्वय।

निरन्वय (Categorimatic) शब्द-समूह में सान्वय (Syncategorimatic) शब्द सयोजक का काम करते हैं।

सान्वय शब्द भी जब वस्तु के रूप (शब्द के रूप मे नही) मे लिये जाते हैं,

तब उद्देश्य या विधेय बन सकते है। जब किसी शब्द के बारे मे हम कहते हैं, तब वह शब्द शब्द के रूप मे नही लिया जाता, बल्कि वस्तु के रूप मे लिया जाता है। इस दशा मे वह शब्द किसी ध्वनि या लिखित संकेत का नाम हो जाता है और उद्देश्य या विधेय बनने की क्षमता रखने लगता है। यदि यह कहा जाय कि सचमुच एक क्रियाविशेषण है, तो "सचमुच" उद्देश्य हुआ, क्योकि इसके बारे मे कुछ कहा जाता है। सान्वय शब्दो के इस प्रयोग को (Supposition Materials) कहते है।

जब वस्तु के रूप में लिये में लिये जाते हैं, तब सान्वय शब्द भी उद्देश्य या विधेय बन सकते हैं।

३ नाम की परिभाषा

ऊपर की मीमासा से विदित होता है कि पद नाम है। नाम के सम्बन्ध मे दो मत है। कुछ लोग कहते है कि नाम भावनाओ का नाम होता है। किसी वस्तु के सम्बन्ध में मानसिक प्रतिक्रिया जो रूप धारण करती है, वही भावना कही जा सकती है। यह सच है कि जब हम किसी वस्तु का नाम लेते हैं, तो उसके अनुरूप मन मे कोई रूप अवश्य प्रस्तुत होता है। जैसे जब हम यह कहते है कि यह 'वृक्ष' है, तब हमारे मन में वृक्ष के अनुरूप एक भावना अवश्य रहती है। नाम किसी भावना का नाम नही होता, बल्कि उस वस्तु का नाम होता है, जो वाह्य-जगत मे विद्यमान है, जैसे सूर्य्य, वृक्ष आदि। जब हम यह कहते है कि सूर्य्य पृथ्वी के चारो ओर चक्कर लगाता है, तब हमारा यह मतलब नही होता कि भावना सूर्य्य, भावना पृथ्वी का चक्कर लगाता है। इससे स्पष्ट है कि नाम केवल वस्तु का ही होता है। जब हम कुछ कहते या सुनते है, तब हम सदैव उस वस्तु के बारे में सोचते है, जिसका नाम द्योतक है। यह अवश्य मानना पडता है कि सोचने के काम मे भावना भी अंतर्निहित रहती है, पर नाम भावना नही है। नाम भावना की ओर संकेतमात्र करता है, पर पदार्थ का नाम होता है।

नाम वस्तु का नाम होता है भावना का नाम नही होता।

४ निर्णय-वाक्य के अग (Parts of Propositions)

हम देख चुके है कि प्रत्येक निर्णय वाक्य में एक उद्देश्य और एक विधेय होता है। इनके अतिरिक्त एक तीसरी चीज भी होती है। यह है सयोजक। सयोजक उद्देश्य विधेय को जोडता है। यदि कहा जाय, "स, प है" तो यह कथन एक निर्णय-वाक्य होगा और इसके सब अग-उद्देश्य, विधेय और संयोजक, एक दूसरे के सम्बन्ध को यथेष्ट रीति से व्यक्त करते है। इस निर्णय वाक्य मे स उद्देश्य है प विधेय और "है" संयोजक। संयोजक दो काम करता है। एक तो यह उद्देश्य और विधेय के सम्बन्ध को व्यक्त करता है और दूसरे उस मानसिक क्रिया का द्योतन करता है जो भाषा द्वारा निर्णय वाक्य मे व्यक्त रूप धारण करती है। जैसे, "यह पक्षी पीला है" एक निर्णय वाक्य है। इसमें "यह पक्षी" उद्देश्य है, "पीला" विधेय और सयोजक, "है", उद्देश्य और विधेय का सम्बन्ध बतलाता है। यह सम्बन्ध धर्म्मी और धर्म्म का है। सयोजक से ज्ञात होता है कि पीला धर्म्म उस पक्षी का है, जिसका जिक्र चल रहा है और यह ज्ञान हमें प्रत्यक्ष होता है।

संयोजक धर्मी और धर्म के सम्बन्ध को बतलाता है और निर्देश-व्यापार को भी व्यक्त करता है।

प्रत्यक्ष ज्ञान के अतिरिक्त निर्देश-व्यापार द्वारा प्राप्त ज्ञान, यानी यह पक्षी पीला है को भी सयोजक व्यक्त करता है। सयोजक होना क्रिया का रूप होता है और सदैव सामान्य वर्तमान काल मे रहता है। सयोजक केवल निर्देश को व्यक्त करता है, यह आज्ञा या इच्छा आदि को नही व्यक्त करता। इसलिये क्रिया की अन्य अवस्थायें इसमें नही पाई जाती। निर्देश सदैव अव्यवहित होता है। यह तत्क्षण उसी स्थान पर किया जाता है। इसलिए इस व्यापार को व्यक्त करनेवाला सयोजक भी सामान्य वर्तमान काल में रहता है। परन्तु हम अपने प्रतिदिन के व्यवहार में सदैव निर्देश किया करते है। ये सब निर्देश निर्णय-वाक्य या तार्किक-वाक्यो मे व्यक्त नही रहते। किन्तु जब हमे उनकी व्याख्या करनी

संयोजक सदैव होना क्रिया का रूप रहता है और सामान्य वर्तमान काल में रहता है।

तीनो तत्त्वो के लिये व्यवहृत नही किया जा सकता। शब्द दो प्रकार के होते हैं निरन्वय (Categorematic) और सान्वय (Syncategorematic)।

निरन्वय (Categorematic) वह शब्द है, जो निर्णय-वाक्य में उद्देश्य (Subject), विधेय (Predicate) अथवा सयोजक (Copula) के लिये व्यवहार में लाया जा सकता है, जैसे—गाय, घोडा, हरा वृक्ष इत्यादि। 'मे', 'से', 'पर' इत्यादि अव्यय; सचाईसे, जोरसे आदि क्रियाविशेषण; 'किसको', कौन आदि सर्वनाम सान्वय शब्द है।

नाम के दो मत (Theories) हैं। एक के अनुसार नाम किसी धारणा (Idea) का नाम होता है; किन्तु इसके विरुद्ध यह कहा जा सकता है, कि जब हम 'वृक्ष' कहते है, तब हमारा मतलब वृक्ष की उस धारणा से नही है, जो हमारे मस्तिष्क मे है। यदि कहा जाय कि सूर्य पृथ्वी के चारो ओर चक्कर काटता है, तो इसका मतलब यह नही होगा कि 'धारणा सूर्य'. 'धारणा पृथ्वी' के चारो ओर चक्कर काटता है। इसलिए हम इस मत को अस्वीकार करते है कि नाम धारणा का नाम होता है। दूसरा मत कि नाम किसी वस्तु का नाम होता है ठीक है। जब किसी नाम का व्यवहार करते है, तब हम सीधे किसी वस्तु को सोचते है। जब हम कहते है कि सूर्य पृथ्वी के चारो ओर चक्कर काटता है, तब हमारा यह मतलब होता है कि सूर्य जो एक वस्तु है, पृथ्वी के जो दूसरी वस्तु है चारो ओर चक्कर काटता है। निर्णय-वाक्य में उद्देश्य (Subject) उसे कहते है, जिसके बारे मे कुछ कहा जाता है। जो कुछ उद्देश्य के बारे में कहा जाता है, उसे विधेय कहते है। इस निर्णय-वाक्य में "आसमान नीला है", 'आसमान' उद्देश्य है और 'नीला' विधेय और 'है' संयोजक है। संयोजक, उद्देश्य और विधेय को जोडता है। संयोजक होना क्रिया का एक रूप होता है और वह रूप होता है "है"। सयोजक वर्तमानकाल में सामान्य अवस्था मे होता है। उद्देश्य विधेय और सयोजक मिलकर तर्क-शास्त्र मे प्रयुक्त निर्णय-वाक्य का रूप निर्धारित करते है। किन्तु सामान्य व्यवहार मे हमलोग जिन अनेको निर्णय-वाक्यो का व्यवहार करते है, वे सभी तार्किक रूप मे नही होते। तर्क-शास्त्र का अध्ययन जिन वाक्यो द्वारा किया जा सकता है, वे यदि भूत या भविष्य

काल मे हो, तो उन्हे तार्किक रूप में वर्तमान काल मे कर लिया जाता है। वर्तमान काल के भी निर्णय-वाक्यो को भी तार्किक रूप में रख लिया जाता है। तार्किक रूप निम्न ढंग से व्यक्त किया जाता है—"स है य।"

अध्याय ४ : अनुशीलन

१ भिन्न-भिन्न प्रकार के वाक्यो का वर्णन करो और उन वाक्यो को बताओ जिनसे न्याय-शास्त्र का सम्बन्ध है। (देखो पैरा १)

२. शब्द कितने प्रकार के होते है ? किसी सयुक्त शब्द का वर्णन करो। (सेक्शन २ पैरा १)

३. सान्वय और निरन्वय शब्दो मे अन्तर बताओ (सेक्सन २ पैरा १)

४. (Suppositio Materialis) किसे कहते है ? (सेक्सन २ पैरा २)

५. नाम के सिद्धान्तो का वर्णन करो (सेक्सन ३ पैरा १)

६. निर्णय-वाक्यो के भिन्न-भिन्न अगो का वर्णन करो (सेक्सन ४ पैरा १)

७. सयोजक का क्या कार्य है ? (सेक्सन ४ पैरा १)

८ सयोजक सदैव वर्तमान काल में क्यो होता है ? (सेक्सन ४)

९ निम्न निर्णय-वाक्यो को तार्किक रूप दो —

(i) हिटलर ससार भर पर अपना आधिपत्य जमाना चाहता था।

(ii) फायरमैन ने आग की लपट से पाँच घंटे लडाई की।

(iii) सूर्य आसमान मे चमकता है।

(iv) रामचन्द्र ने रावण को मारा।

(v) हमलोग औचित्य (Sense of Proportion) कायम रक्खेगे।

(vi) जब वर्षा होती है तो सडके भीग जाती है।

अध्याय ५

पदों का श्रेणी-विभाग

(Division of Terms)

पहले कहा गया है कि पद ऐसे नाम है, जो निर्णय-वाक्य (Proposition) में उद्देश्य या विधेय बन सकते है। इनका विभाजन कई आधारो से कई प्रकार से किया जाता है। जैसे—

(१) साधारण (Simple) और यौगिक (Composite)

(२) व्यक्ति-वाचक (Singular), जातिवाचक (General) और समूहवाचक (Collective)

(३) मूर्त (Concrete) और अमूर्त (Abstract)

(४) विधिवाचक (Positive), निषेधवाचक (Negative) और पर्युदासक (Privative)

(५) निश्चयवाचक (Definite) और अनिश्चयवाचक (Indefinite)

(६) निरपेक्ष (Absolute) और सापेक्ष (Relative)

(७) एकार्थक (Univocal) और अनेकार्थक (Equivocal)

(८) धर्म या गुणव्याप्तिबोधक (Connotative) और धर्म-अव्याप्ति बोधक (Non-Connotative)

(१) साधारण (Simple) और यौगिक (Composite)—बनावट की दृष्टि से पदो को साधारण और यौगिक में विभाजित किया जाता है। जब पद एक ही शब्द का होता है, तब साधारण कहलाता है और जब एक से अधिक शब्दो का होता है, तब यौगिक कहलाता है। जैसे—

गाय, वृक्ष और कलकत्ता साधारण पद है और भारतकाप्रधान मन्त्री, राष्ट्र-पिता यौगिक पद है।

(२) व्यक्तिवाचक (Singular), जातिवाचक (General) और समूहवाचक (Collective)—

(अ) व्यक्तिवाचक पद से एक व्यक्ति का बोध होता हैं, जैसे "सुकरात कावाप" एक व्यक्तिवाचक पद है, क्योकि इससे केवल एक व्यक्ति का बोध होता है। इसी तरह भारत, कलकत्ता आदि भी व्यक्तिवाचक पद है।

(ब) जातिवाचक पद उसे कहते है, जो एक ही वर्ग के अनिश्चित समूह मे से प्रत्येक का निर्विकल्प बोध कराता है। जैसे—गाय, वृक्ष, मनुष्य, घोडा इत्यादि। इनमे से प्रत्येक पद अपने वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति का बोध कराता है, जैसे घोडा शब्द से घोडा जाति के सभी जानवरो का वोध होता है, किसी खास घोडे का नही। इसलिए जातिवाचक पद जाति का बोधक होता है। जाति जिन व्यक्तियो से बनती है, उनकी सख्या गिनी-चुनी नही रहती, पर उन व्यक्तियो मे जातिगत सभी गुण पाये जाते है, जैसे कहा जाय "मनुष्य जाति" तो इससे भूत, वर्तमान और भविष्य के सभी मनुष्यो का बोध होता है। मनुष्यो की सख्या गिनी नही जा सकती, वह असख्य है, मनुष्य जाति सदैव के सब मनुष्यो से बनी हैं।

(स) समान धर्म वाले प्राणी या वस्तु के समूह को समूहवाचक पद कहते हैं, समूह मे बहुत-सी चीजे रहती हैं, ये सब मिलकर एक समुदाय बनाती है, इस एक समुदाय का भी नाम होता है, यही नाम समूहवाचक (Collective) पद कहा जाता है। इस समुदाय का प्रत्येक व्यक्ति अथवा पदार्थ एक दूसरे का सहधर्मी होता हैं, इसलिये सक्षेप मे यह कह सकते है कि समूहवाचक पद एक ऐसे समुदाय का नाम है, जो अपने मे पूर्ण है। परन्तु भिन्न-भिन्न व्यक्तियो मे, जिनमे अनुगत एक ही गुण हैं, बना हुआ है। यदि हम यह चाहे कि कुछ मनुष्यो, गायो बकरियो और बर्तनो आदि को एकत्रित करके उन सबो को एक सामूहिक नाम दे तो नही दे सकते। इस सकर समुदाय का एक समूहवाचक नाम नही रखा जा सकता। सेना शब्द एक समूह का नाम है। यह समूहवाचक शब्द इसलिए माना जाता है कि यह मनुष्यो के एक ऐसे समूह से

बना है, जो सैनिक है, जिनमें एक से गुण हैं। प्रत्येक सैनिक एक व्यक्ति है और उसका एक अलग नाम है। परन्तु जब वे सब मिलते है, तब समुदाय बनाते हैं। यह समुदाय अपने में पूर्ण होता है और उसका नाम सेना होता है। इस तरह हम देखते हैं कि एक ओर समूहवाचक पदो और व्यक्तिवाचक पदो में तो दूसरी ओर समूहवाचक पदो और जातिवाचक पदो मे भिन्नता पाई जाती है। व्यक्तिवाचक पद केवल एक व्यक्ति के लिए व्यवहार मे लाया जाता है। यह एक व्यक्ति का नाम होता है। परन्तु समूहवाचक पद एक समूह का नाम होता है। उससे उस समूह के प्रत्येक व्यक्ति को सम्बोधित नही किया जाता है।

इसी प्रकार जातिवाचक और समूहवाचक पदो का अन्तर स्पष्ट किया जा सकता है। जातिवाचक पद एक जाति का नाम होता है, परन्तु समूहवाचक पद केवल एक समुदाय का नाम होता है।

जतिवाचक और समूह-वाचक पदों में अन्तर

जाति में व्यक्तियो की सख्या असख्य रहती है, परन्तु समुदाय में व्यक्तियो की सख्या सीमित रहती हैं। मनुष्य जातिवाचक पद है। इसकी सख्या असीम है। सेना समूहवाचक पद है। इसकी सख्या लाख, दो लाख चाहे जो हो, पर है सीमित। फिर जातिवाचक पद से उस जाति के प्रत्येक व्यक्ति का बोध होता है, किन्तु समूहवाचक पद से उस समूह के प्रत्येक व्यक्ति का बोध नही होता। वह तो केवल समूह का ही बोध कराता है। जैसे यदि 'मनुष्य' कहा जाय तो इससे मनुष्य जाति के प्रत्येक व्यक्ति का बोध होता है अर्थात् मनुष्य जाति का प्रत्येक व्यक्ति इस नाम द्वारा सम्बोधित किया जा सकता है, परन्तु सेना नाम से प्रत्येक सैनिक को नही पुकार सकते। हम कह सकते है कि राम मनुष्य है, परन्तु हम यह नही कह सकते कि यह सैनिक सेना है।

कभी-कभी समूहवाचक पद जातिवाचक पदो की तरह व्यवहार मे लाये जाते हैं। किन्तु, जब समूहवाचक पदो का ऐसा व्यवहार किया जाता है, तब वे समूहवाचक नही रह जाते। जैसे यदि हम कहें कि जहाजी बेड़ा सेना का आवश्यक अग है तो यह पद, 'जहाजी-बेडा' जातिवाचक पद होगा, क्योकि इससे एक जाति का बोध होता है और यह पद उस जाति के प्रत्येक व्यक्ति

(अर्थात् भिन्न-भिन्न देशो के वेड़ो) के लिये अलग-अलग व्यवहार मे लाया जाता है। यहाँ पर 'बेडा' इसी प्रकार जातिवोधक है, जिस प्रकार 'मनुष्य'। जिस प्रकार हम यह कह सकते है कि कालिदास मनुष्य है, उसी प्रकार यह भी कह सकते है कि भारतीय जगी जहाजो का समुदाय जहाजी-बेडा है। मनुष्यो की संख्या की तरह भूत, भविष्य और वर्तमान के वेडो की संख्या भी अनगिनत हो सकती है और प्रत्येक मनुष्य की तरह प्रत्येक बेड़े मे जातिगत गुण भी पाये जाते है। पिछला वेडा शब्द भी एक जाति का नाम ही हो सकता है। परन्तु इसका मतलब यह नही होता कि प्रत्येक समूहवाचक शब्द जातिवाचक भी हो सकता है, जैसे यह समूह "त्रिभुज के सब कोण" जातिवाचक पद नही हो सकता।

समूहवाचक पद और व्यक्तिवाचक पद मे भी भिन्नता है। ऐसा नही कहा जा सकता कि प्रत्येक समूहवाचक पद व्यक्तिवाचक पद भी होता है।

समूहवचाक और व्यक्ति-वाचक पद में अन्तर

व्यक्तिवाचक पद केवल एक व्यक्ति का बोध कराता है, इस दृष्टि से यदि हम ऐसे समूहवाचक पदो की जाँच करे, जैसे पुस्तकालय या अजायबघर तो पायेगे कि इनसे किसी एक सग्रह का बोध नही होता, क्योकि पुस्तकालय, विभिन्न प्रकार की पुस्तको का संग्रह है और अजायबघर विभिन्न प्रकार के स्मारको का। अस्तु, दो मे से एक भी व्यक्तिवाचक नही कहा जा सकता।' पुस्तकालय और अजायबघर समूहवाचक पद इसलिए कहे जाते है कि पुस्तकालय विभिन्न प्रकार की पुस्तको का संग्रह होते हुए भी पुस्तको का ही सग्रह है, अन्य वस्तुओ का नही। और अजायबघर भी भिन्न-भिन्न प्रकार के स्मारकों का सग्रह होते हुए भी स्मारको का ही सग्रह है, अन्य वस्तुओ का नही। इसलिए इस दृष्टि से इन्हे एक वस्तुविशेष का समुदाय कह सकते है।

समूहवाचक पद कुछ विशेष दशा मे व्यक्तिवाचक पद कहा जा सकता है, जैसे कलकत्ते का अजायबघर या राष्ट्रीयपुस्तकालय। इन दोनो पदो से एक निश्चित सग्रह का बोध होता है, इसीलिए ऐसी दशा मे दोनो व्यक्तिवाचक भी हो सकते है।

इस सम्बन्ध मे एक भूल से बचने के लिए सावधान रहना चाहिए। ऊपर के उदाहरण में जो समूहवाचक पद बताए गए है, उनको सभी दशा में व्यक्तिवाचक पद नही मान लेना चाहिए। वे पद कई शब्दों से बने है। "अजायबघर" "कलकत्ते के अजायबघर" का एक अग है और "पुस्तकालय" "राष्ट्रीय पुस्तकालय" का। इसलिए ये समूहवाचक पद स्वत व्यक्तिवाचक पद नही हैं। बल्कि ये व्यक्तिवाचक पदो के अग है।

जाति की प्रकृति (Nature of Class) के सम्बन्ध में तीन सिद्धान्त है—नामवाद (Nominalism), बोधवाद (Conceptualism) और वस्तुवाद (Realism)।

अब उस वर्ग की प्रकृति को जान लेना चाहिए जिसके लिये जाति शब्द का व्यवहार किया जाता है। हम पहले देख चुके हैं कि जाति अनगिनत व्यक्तियो से बनती है। उन सभी व्यक्तियों में जातिगत सारे गुण पाये जाते है। परन्तु जाति की प्रकृति के सम्बन्ध मे नैयायिको मे मतभेद है। ये विभिन्न मत नाम-वाद, बोधवाद और वस्तुवाद के नाम से प्रसिद्ध है।

नामवाद (Nominalism)

नामवादियो का कहना है कि व्यक्ति ही वास्तविक वस्तु है। प्रत्येक व्यक्ति अपना विशिष्ट गुण रखता है और अन्य व्यक्ति के किसी गुण में शरीक नही होता, केवल एक विषय मे साझा रखता है। वह है नाम। इसलिये वे सब व्यक्ति, जो एक जाति के अन्तर्गत समझे जाते है, सभी गुण सर्वनिष्ठ नही रखते। केवल एक ही गुण सबो मे समान रूप से पाया जाता है, वह गुण है जाति का नाम। जिससे प्रत्येक व्यक्ति का बोध होता है। जैसे—गाय एक जाति है। यह जाति अनेको व्यक्तियो से बनी है, जो गुण मे एक दूसरे से बिल्कुल अलग है। "गाय" नाम ही केवल ऐसा गुण है, जो सब पर समान रूप मे घटित होता है। परन्तु यह नाम भी बाहर से ही लाद दिया गया है। किसी ऐसे गुण के कारण नही रखा गया है, जो इस जाति की प्रकृति मे विद्यमान है।

आलोचना

परन्तु विचार करने से यह सिद्धान्त निराधार सिद्ध होता है। जब

हम कुछ व्यक्तियों को कोई नाम देते है, तो उसके मूल मे कुछ अभिप्राय भी रखते है। ऐसा तो नही करते कि एक मिश्रित समूह का, जिसमे द्विपद, चतुष्पद, शाकाहारी और मांसाहारी सम्मिलित हो, नाम गाय रख दे। यदि हम प्रकृति-गत गुणो पर विना विचार किये किसी ऐसे मिश्रित समूह को एक नाम से पुकारने लगेगे तो नाम के अर्थ मे कोई स्थिरता नही रह जायगी। व्यक्ति के साथ-साथ नाम का भी अर्थ बदलता जायगा। जब तक किसी समूह मे सर्वनिष्ठ गुण नही है, तब तक उस समूह को एक जाति का नाम नही दिया जा सकता, परन्तु वास्तविक जगत में जातियाँ है और उनके नाम भी सार्थक और निर्विकल्प है। जाति-नाम से उस जाति के प्रत्येक व्यक्ति का बोध होता है। इससे स्पष्ट है कि नामवाद से जाति शब्द की मीमासा नही हो सकती।

बोधवाद (Conceptualism)

कुछ नैयायिको ने नामवाद की कठिनाई को दूर करने की चेष्टा की है। नाम मे वोधतत्व का अन्तर्निहित रहना आवश्यक है। इसलिए कि वे सब व्यक्ति जो एक जाति बनाते है, केवल एक वोधतत्व निष्ठ रखते है। जब हम कोई जानवर पहली बार देखते है, तब हम उसके सम्बन्ध में एक वोध (Concept) बनाते है और फिर उसे एक नाम से सम्बोधित करते है। जिस जानवर को हमने देखा उसका नाम घोडा रख दिया। अव उसकी प्रति-कृति का जो जानवर दिखाई देगा, उसे घोडा नाम से सम्वोधित करेगे। अस्तु, निरीक्षण के आधार पर नाम से वोध (Concept) जाना जाता है।

आलोचना

किन्तु इससे यह निष्कर्ष नही निकाला जाता कि वे सभी व्यक्ति जो "घोडा जाति बनाते है" वोध के अतिरिक्त और कुछ निष्ट नही रखते। यह सच है कि घोडा नामसे घोडा जाति के प्रत्येक व्यक्ति का वोध होता है, क्योकि वे सब व्यक्ति उस वोव के अन्तर्गत आ जाते है, जो घोडा नाम में अन्तर्निहित है। परन्तु वोध जिस तरह से प्राप्त होता है उसे वोधवाद नही वता सकता। यदि ऐसे व्यक्तियो का समुदाय हो जिनमें आपस मे कोई साम्य न हो तो उनके सम्वन्ध

में कोई वोध (Concept) वनाना सम्भव नहीं है। क्योंकि वोधतत्व व्यक्तियो के सर्वनिष्ठ गुणो द्वारा उनका केवल प्रतिनिधि वनता है। वह यह नही वतला सकता कि वह स्वय कैसे वना ? जिस प्रकार नामवाद यह नही वतला सकता कि प्रत्येक जाति के प्रत्येक व्यक्ति का जाति के नाम से एक ही अर्थ में कैसे वोध होता है, उसी प्रकार वोधवाद भी यह नही वता सकता कि प्रत्येक जाति के सभी व्यक्तियों के सम्बन्ध में एक ही वोध कैसे उत्पन्न होता है।

वस्तुवाद (Realism)

उक्त दोनो वादो के अनुपयुक्त होने के कारण हमें वस्तुवाद का सहारा लेना पड़ता है। इसके अनुसार जाति उस तत्त्व का प्रतिनिधि है, जिसमे उस जाति के प्रत्येक व्यक्ति का अंग है। इसलिये वस्तुवाद वह वाद है, जो जहाँ पर नामवाद और वोधवाद असफल होते है, यह वतलाता है कि वहाँ पर वस्तुवाद सफल होता है। जाति-नाम या जाति-भावना की मीमासा नामवाद या विचार-वाद से नही हो पाती, परन्तु वस्तुवाद उनकी पूरी व्याख्या कर देता है। वस्तुवाद के अनुसार जाति नाम से उस प्रकृतिस्थ तत्त्व अथवा व्यापकता का वोध होता है, जिसका वितरण उस जाति के प्रत्येक व्यक्ति में हुआ है और उस तत्त्व या व्यापकता को हम व्यक्तियो में निष्ठ गुणो द्वारा ग्रहण करते है। यदि किसी जाति के व्यक्तियो मे साम्य पाया जाता है तो वह केवल इसीलिये पाया जाता है कि एक ही तत्त्व के अश सव मे सम्मिलित है। इसी तथ्य के आधार पर जाति-नाम या जाति-भावना वनाई जाती है। उदाहरण के लिए मनुष्य जाति को लिया जा सकता है। यह जाति असख्य व्यक्तियो से वनी है। इन सभी व्यक्तियों में वह तात्त्विक-वस्तु या व्यापकता विद्यमान है, जिसके कारण उन्हें मनुष्य की सज्ञा मिलती है और जिसके कारण उनमें साम्य पाया जाता है। मनुष्य जाति

जाति-तत्त्व अथवा व्यापकता वास्तविक है और सभी जाति के व्यक्ति पृथक न रहकर सर्वनिष्ठ गुण से सम्मिलित रहते हैं।

का नाम और भावना का अर्थ इसी साम्य अथवा सर्वव्यापी गुण के सहारे ग्रहण किया जाता ह।

३. मूर्त्त (Concrete) और अमूर्त्त (Abstract) पद

मूर्त्त पद से किसी वस्तु या व्यक्ति का वोध होता है और अमूर्त्त पद से किसी गुण का। राम, श्याम, मेज, वृक्ष और गाय मूर्त्त पद है। सफेदी, न्याय, मनुष्यता आदि अमूर्त्त पद है।

राम एक मनुष्य का नाम है। मेज एक चीज का नाम है। वृक्ष भी एक चीज का नाम है और गाय एक जाति का नाम है। ये सव मूर्त्त पद है।

सफेदी एक गुण का नाम है। न्याय भी एक गुण का नाम है। मनुष्यता कई गुणो के योग का नाम है। ये सव अमूर्त्त पद है।

परन्तु अमूर्त्त पदो को विशेषण नही समझ लेना चाहिये। सफेदी और सफेद मे अन्तर है। सफेदी से एक गुण का वोध होता है। सफेद का सम्वन्ध पदार्थ से होता है। वह किसी ऐसे पदार्थ की विशेषता वतलाता है, जिसका रग सफेद है और जो प्रत्यक्ष है। इसलिये विशेषण मूर्त्त पद माने जाते है। कुछ लोगो का कहना है कि गुण अपने आप अपना अस्तित्व नही रख सकता, इसलिये उसका कोई नाम कैसे हो सकता है? जव गुण को हम वस्तु से अलग नही कर सकते तो उसका अलग नाम कैसे रख सकते है? किन्तु ऐसी धारणाये भ्रामक है।

पदार्थ और गुण को अलग नहीं किया जा सकता, किन्तु पद और गुण में अन्तर बताया जा सकता है। इसलिये पदो का मूर्त्त और अमूर्त्त में विभाजन न्यायसगत है।

न्याय मे हमारा सम्वन्ध उन सभी मूर्त्त पदार्थो और अमूर्त्त गुणो के नामो से है, जिनके विषय मे हम विचार कर सकते है, चाहे वे अमूर्त गुण या मूर्त्त पदार्थ अपना स्वतत्र अस्तित्व रखते हो अथवा नही। यदि हम दोनो के वारे मे अलग-अलग नाम भी सोच सकते है तो दोनो को अलग-अलग नाम भी दे सकते है। इसलिये यद्यपि यह सच है कि गुण स्वतत्र रूप से अपना अस्तित्व नही रखते, वे किसी पदार्थ मे ही स्थित रहते है, फिर भी उनके सम्वन्ध में स्वतत्र रूप से सोचा जा सकता है। इसलिये पदो को मूर्त्त और अमूर्त्त मे विभक्त करना न्यायसगत है।

अमूर्त (Abstract) पद व्यक्तिवाचक है या जातिवाचक ? "अमूर्त पद व्यक्तिवाचक है या जातिवाचक" इस प्रश्न के सम्बन्ध में नैयायिकों में मतभेद है। एक मत के अनुसार अमूर्तपद व्यक्तिवाचक है, क्योंकि एक अमूर्त पद से एक ही गुण का बोध होता है। दूसरे मत के अनुसार अमूर्त पद जातिवाचक है। यह मत अधिक युक्तिसंगत जान पडता है। गुण के रूप सदैव एक से नही मिलते। उनमें भिन्नता भी पाई जाती है। इसलिये इन विभिन्न रूपो में एक जाति बन जाती है। अमूर्त पद उस जाति का नाम होता है। इसलिये अमूर्तपद जातिवाचक पद है। जैसे—दूध की सफेदी, अडे की सफेदी और बर्फ की सफेदी, भिन्न-भिन्न सफेदियां है। ये सब मिलकर सफेदी जाति बनाती है। इसीलिये सफेदी पद जातिवाचक पद है।

४४. विधिवाचक (Positive), निषेधवाचक (Negative)

(अ) विधिवाचक पद वे पद है, जो किसी पदार्थ में किसी गुण का होना बतलाते है, जैसे—गाय, पेड, सफेद, गोल आदि। इनमें से प्रत्येक द्वारा एक या अनेक गुणो का बोध होता है।

(ब) निषेधवाचक पद मे उन गुणो का निषेध रहता है, जिनका विधिवाचक पदो में अस्तित्व पाया जाता है। जैसे अश्वेत। इससे श्वेतता का, जिसका विधिवाचक पद "श्वेत" द्वारा बोध होता है, अभाव पाया जाता है। इसी प्रकार अशुद्ध, अधेरा और अनार्य्य आदि सब निषेधवाचक पद है।

कुछ ऐसे भी पद पाये जाते है, जो स्वरूप मे विधिवाचक है, पर अर्थ में निषेध-वाचक तथा स्वरूप में निषेधवाचक, पर अर्थ में विधिवाचक। जैसे अपंडित पद है। स्वरूप में तो यह निषेधवाचक है, पर अर्थ में विधिवाचक, क्योकि अपडित का अर्थ मूर्ख होता है और मूर्खता एक दुर्गुण है।

(स) जब ऐसे गुणो का अभाव बतलाया जाय, जो साधारणत. वस्तु में विद्यमान रहते है, किन्तु किसी कारण से उनका अभाव हो गया हो—जैसे अधा—तो ऐसे गुणो के अभाव बतलानेवाले पदो को पर्य्युदासक (Privative) पद कहते है। मनुष्य को दो आँखे होती है, वह देखता है। उसकी देखने की शक्ति जब नष्ट हो जाती है, तब वह अधा हो जाता है। कभी-कभी दवा-दारू से अधापन दूर कर दिया

जाता है और वह फिर देखने लगता है। इस प्रकार ऐसे पदो से पहले गुण का भाव, फिर उसका अभाव व्यक्त होता है। यह अभाव भी प्रत्येक दशा मे चिरस्थायी नही रहता।

५. निश्चयवाचक (Definite) और अनिश्चयवाचक (Indefinite) पद

(अ) निश्चयवाचक पद वह है, जिससे किसी निश्चित पदार्थ या गुण का बोध होता है। गाय, लोहा, लाल और मनुष्य आदि पद निश्चयवाचक पद है, क्योकि इनमें से प्रत्येक से किसी निश्चित पदार्थ या गुण का बोध होता है। निश्चय का अर्थ एक या एक से अधिक सख्या ही नही समझना चाहिये।

निश्चय के अन्तर्गत वे सभी वस्तुये आ जाती है, जिनके सम्बन्ध मे एक स्पष्ट भावना बन सकती है। हम किसी गुण या किन्ही गुणो के कारण किसी वस्तु या किन्ही वस्तुओ के बारे में भावना बनाते हैं।

व्यक्तिवाचक पद से एक निश्चित व्यक्ति का बोध होता है और समूहवाचक पद से एक निश्चित समूह का। इसलिये इन दोनो को निश्चयवाचक की सज्ञा देने मे कोई कठिनाई नही हो सकती। केवल जातिवाचक पदो के सम्बन्ध में कुछ कठिनाई हो सकती है। लोग सोच सकते है कि मनुष्य पद से मनुष्यों की अनिश्चित सख्या का बोध होता है, इसलिये 'मनुष्य' अनिश्चयवाचक पद है। पर बात ऐसी नही है। मनुष्य पद से मनुष्य जाति का बोध होता है, जो अन्य जातियो से पृथक् है, क्योकि इसके सभी व्यक्तियो मे कुछ ऐसे गुण है, जो सर्वनिष्ठ है, जो अन्य जातियो के व्यक्तियो मे नही मिल सकते। इसलिये मनुष्य पद निश्चयवाचक पद है। गाय अथवा अन्य व्यापक नाम इसी प्रकार निश्चयवाचक पद है।

(ब) अनिश्चयवाचक पद वे पद है, जिससे किसी निश्चित पदार्थ या गुण का बोध नही होता, जैसे कोई लडका, कुछ लोग। कुछ लोग ऐसे पदो को भी जैसे अभारतीय, अमित, अपूर्ण, अनिश्चयवाचक पद मानते है; अन्य लोग नही मानते। जो लोग इन्हें अनिश्चयवाचक पद नही मानते है, वे कहते है कि पद के द्वारा हम किसी निश्चित पदार्थ को व्यक्त करते है, इसलिये इन पदो द्वारा भी किन्ही ऐसे निश्चित पदार्थों का बोध होता है, जो भारतीय नही है, श्वेत नही

है, पूर्ण नहीं है। परन्तु इनका कथन युक्तिसंगत नही है। जो पदार्थ भारतीय नहीं है, वे किसी भी देश के हो सकते है। इसलिये उनके सम्बन्ध में निश्चय-पूर्वक कुछ नही कहा जा सकता। इसी प्रकार अमित और अपूर्ण के भी सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ नही कहा जा सकता। इसलिये इन्हें अनिश्चयवाचक पद कहना अधिक युक्तिसगत होगा॥

पदो मे प्रतिकूलता (Opposition in Terms)

अनिश्चयवाचक पद जब अपने समकक्ष निश्चय-वाचक पद के विरोधी होते हैं तो वे अभावात्मक मात्र होते है, निषेधक नहीं।

दो पद आपस मे निषेधक माने जाते है, यदि वे उन गुणो में जिनको वे व्यक्त करते है परस्पर विरोधी हो। यदि अर्थ मे विरोधी नहीं हैं तो वे निपेधक नही माने जा सकते। जैसे सफेद और सफेद-नही पद निपेधक से ज्ञात होते है, पर हर हालत में वह वस्तु जो सफेद नही है सफेद का निपेधक नही हो सकती। कभी-कभी तो वह सहायक होती है। जैसे वर्फ और पानी। वर्फ सफेद है। पानी सफेद नही है। परन्तु अति न्यून ताप पर पानी ही वर्फ हो जाता है। यहाँ पर वह वस्तु जो सफेद नही है, सफेद वस्तु की सहायक है। इसलिये प्रत्येक दशा में 'सफेद-नही' पद सफेद का निपेधक नही हो सकता।

विधिवाचक पद अपने समतुल्य निषेधवाचक पद का तथा उलटेक्रम से निषेधवाचक पद विधि-वाचक पद का निषेधक होता है।

'सफेद-नही' पद सफेद पद का निषेधक केवल उसी दशा मे हो सकता है, जिस दशा में वह सफेद का निषेध करता है। दो पद आपस में निषेधक तभी समझे जाते है, जब एक की उपस्थिति से दूसरे की अनुपस्थिति सूचित हो। साकेतिक भाषा में निषेधक पदो को व्यक्त करने के लिये "अ और अ-नही" चिन्हो का व्यवहार किया जाता है। परन्तु वास्तव मे अ और अ-नही निषेधक नही कहे जा सकते। "अ-नही" का अर्थ है, अ के अतिरिक्त शेष सब वस्तुये। यदि हम अ का अर्थ अक्षरो तक ही सीमित रखते है, तो 'अ-नही' से अ के अतिरिक्त

सभी अक्षरो का बोध होगा, किन्तु अक्षरो मे 'अ' भी एक अक्षर है, इसलिये अ और अन्य अक्षरो मे विरोध नही हो सकता। परन्तु जब हम अ-नही का अर्थ अ की अनुपस्थिति करते है, तब वह 'अ' का निषेधक होता है। इसी प्रकार सफेद-नही पद से सफेद की अनुपस्थिति समझी जाय, तब सफेद और सफेद-नही आपस मे निषेधक होगे और जब सफेद-नही से काला, भूरा या अन्य किसी रंग का बोध हो, तब वे आपस में निषेधक न होकर केवल विपरीत होगे।

दो निषेधक पदों के बीच कोई मध्यवर्ती पद नही आता, किन्तु दो विपरीत पदो के बीच मध्यवर्ती पद आता है।

निषेधक (Contradictory) पदो मे पूर्ण विरोध रहता है। दो मे से केवल एक ही सत्य माना जा सकता है। एक की प्रतीति से दूसरे की अप्रतीति तथा एक की अप्रतीति से दूसरे की प्रतीति माननी पड़ती है। कोई मध्यवर्ती मार्ग नही रहता। किन्तु विपरीत (Contrary) पदो में हम दोनो को अस्वीकार करके एक तीसरे पद को स्वीकार कर सकते है। विपरीत पदो मे एक की स्वीकृति से दूसरे की अस्वीकृति तो सूचित होती है, किन्तु एक की अस्वीकृति से दूसरे की स्वीकृति नही सूचित होती। दोनो अस्वीकार किये जा सकते है और एक तीसरा पद स्वीकार किया जा सकता है। साराश यह कि निषेधक पदो मे कोई मध्यवर्ती पद नही आ सकता। कोई वस्तु या तो "है" या "नही है"। परन्तु विपरीत पदो मे मध्यवर्ती पद आ सकता है। जैसे कोई वस्तु न तो लाल है, न काली, वह पीली है। यहाँ काले और लाल दो पदो मे विरोध पूरा नही है। उनमे पीला पद मध्यवर्ती बन जाता है। यहाँ पर एक के स्वीकार करने से दूसरे को भी स्वीकार नही कर सकते, अर्थात् वस्तु को काली कहकर लाल नही कह सकते, परन्तु एक के अस्वीकार करने पर दूसरे को स्वीकार करना अपरिहार्य्य नही होता। अर्थात् ऐसा नही कह सकते कि यदि वस्तु काली नही है, तो वह लाल ही है। वह काली और लाल न होकर पीली या अन्य रंग की हो सकती है। विपरीत पदो के मध्य अन्य पद आ सकते है, परन्तु निषेधक पदों के मध्य अन्य पद नही आ सकते।

६. निरपेक्ष (Absolute) और सापेक्ष (Relative) पद

निरपेक्ष पद स्वत पूर्ण अर्थ देता है और अन्य किसी के बिना सहारे समझा जा सकता है।

कोई पद निरपेक्ष तब कहलाता है, जब वह अपना अर्थ बिना किसी दूसरे पद का सहारा लिये व्यक्त करता है। जैसे—मनुष्य, गुलाब, श्वेत, सूर्य आदि। इन पदो का अर्थ समझने के लिये किन्ही अन्य पदो का सहारा नही ढूंढते।

इसके विपरीत सापेक्ष पद उन पदो को कहते है, जो स्वत. अपना पूर्ण अर्थ नही दे सकते। उन्हें दूसरे पदो का सहारा लेना पडता है। सापेक्ष पद को हम तभी समझ सकते है, जब हम इसकी किसी अन्य पद से तुलना करते है, जैसे मित्र, पिता, पुत्र, कारण, कार्य आदि। अकेले कोई व्यक्ति मित्र नही हो सकता। मित्रता दो व्यक्तियो के बीच होती है। इसलिये जब हम किसी के सम्बन्ध मे मित्र पद का प्रयोग करते है, तब हम उस व्यक्ति और दूसरे व्यक्ति मे जो मित्रता का सम्बन्ध ह, उसका निर्देश करते हैं। इसी प्रकार बिना पुत्र के कोई पिता नही कहला सकता और न बिना कारण के कोई कार्य हो सकता है। इसलिये पति-पत्नी, पिता-पुत्र, कार्य-कारण आदि सब सापेक्ष पद हैं। ऐसे जोडो को अन्योन्याश्रयी कहते हैं।

७ एकार्थक (Univocal) और अनेकार्थक (Equivocal) पद

ऐसे पदो को जो एक ही अर्थ में व्यवहार में लाये जाते है, एकार्थक पद कहते है, जैसे मनुष्य, गाय आदि। इन पदो का अर्थ निर्दिष्ट है। इसके विपरीत अनेकार्थक पद ऐसे पद है, जिनके एक से अधिक अर्थ किये जा सकते है और अवसर के अनुसार व्यवहार मे लाये जा सकते है, जैसे नाग, बारी, बाजी आदि। नाग एक साँप को भी कहते है और हाथी को भी। बारी एक जाति को कहते है और अल्पवयस्क रमणी तथा ग्रामीण भाषा मे अमराई को भी। बाजी माने बजना, घोडा और स्त्री, तीनो होते है। इस तरह ऐसे अनेको शब्द मिलेंगे, जो एक से अधिक अर्थ रखते है। काव्य मे इनका अधिक प्रयोग होता है। श्लेष अलकार इन्ही पर निर्भर रहता है।

एकार्थक और अनेकार्थक वास्तव में दो प्रकार के पद हैं।

मिल (Mill) का कथन है कि एकार्थक और अनेकार्थक पद दो भिन्न-भिन्न प्रकार के पद नही हैं, बल्कि एक ही पद के दो भिन्न प्रयोग हैं। परन्तु उनका मत सर्वमान्य नही हैं। यह बात सही है कि हम कुछ पदो को भिन्न-भिन्न रूप से व्यवहार में ला सकते हैं, परन्तु हम सब पदो का एक से अधिक अर्थ में व्यवहार नही कर सकते। इससे पदो को दो भागों मे अर्थात् एकार्थक और अनकार्थक भागों में बाँटना ही पड़ता है। एकार्थक पद वे पद हैं, जो सदैव एक ही अर्थ में व्यवहृत होते हैं और अनेकार्थक पद वे पद है, जो एक से अधिक अर्थ मे व्यवहृत होते हैं।

८. धर्म-व्याप्ति वाचक (Connotative) पद और धर्म-अव्याप्ति वाचक (Non-Connotative) पद

(१) धर्म-व्याप्ति (Connotation) और अभिधान (या नाम) व्याप्ति (Denotation) पदो के अतिम वर्गीकरण का अर्थ हम भली भाति तभी समझ सकते हैं, जब हम धर्म-व्याप्ति (Connotation) और अभिधान-व्याप्ति (Denotation) को अच्छी तरह समझ लें। धर्म-व्याप्ति से पद गत गुणो का ज्ञान होता है। अभिधान-व्याप्ति से वस्तु या व्यक्ति की सख्या या परिमाण का बोध होता है। "मनुष्य" पद धर्म-व्याप्ति वाचक (Connotative) पद है। इसमे दैहिकता, जीवन और विवेक आदि गुणो का अस्तित्व पाया जाता है। इन्ही गुणो के बोध को 'मनुष्य' पद की धर्म-व्याप्ति कहते है। फिर इस पद से अनेक व्यक्तियो का बोध होता है। इन सब मे उक्त गुण सर्वनिष्ठ है। इसलिये ये सब पद मिलकर मनुष्य पद की अभिधान-व्याप्ति (Denotation) बनाते हैं।

(२) धर्म-व्याप्तिवाचक (Connotative) पद और धर्म-अव्याप्ति वाचक (Non-Connotative) पद—धर्म-व्याप्ति वाचक पद उसे कहते हैं, जिससे गुण और व्यक्ति दोनो का बोध होता है।

धर्म-अव्याप्ति वाचक पद उसे कहते है, जिससे केवल गुण या व्यक्ति का

बोध होता है। मिल (Mill) के अनुसार धर्म-व्याप्ति वाचक पद चार प्रकार के होते हैं और धर्म-अव्याप्ति वाचक दो प्रकार के।

गुण या धर्म-व्याप्ति वाचक :—

(१) **विशेषण**—श्वेत, गुणी, लम्बा आदि।

(२) **मूर्त्तपद**—मनुष्य, घोडा, गाय आदि।

(३) **अमूर्त्तपद**—जब जातिवाचक पद की तरह व्यवहार में आते हैं। जैसे—पाप, पुण्य आदि।

(४) **कुछ व्यक्ति वाचक पद**—सुकरात का पिता।

धर्म-अव्याप्ति वाचक :—

(१) **व्यक्ति-वाचक पद**—राम, श्याम, स्मिथ आदि।

(२) **एकवचन में अमूर्त्त पद**—सफेदी, योग्यता आदि।

३ धर्म या गुण-व्याप्ति बोधक (Connotative) पदो का स्पष्टीकरण—

विशेषण पद गुण-व्याप्तिबोधक पद माने जाते हैं क्योकि ये गुण और वस्तु दोनो का बोध कराते हैं। श्वेत पद से रग और वस्तु दोनो का बोध होता है। इसलिये वह धर्म-व्याप्ति बोधक पद है। इसी प्रकार बडा, लम्बा, पुण्यात्मा आदि से भी गुण और वस्तु दोनो का बोध होता है। इसलिये ये तीनो भी गुण या धर्म-व्याप्ति बोधक पद है। मूर्त जातिवाचक पद के लिये व्याख्या की आवश्यकता नही है। हम पहले ही देख चुके है, कि 'मनुष्य' आदि पद से गुण और व्यक्ति दोनो का बोध होता है। इसलिये मूर्त जातिवाचक पद के गुण-व्याप्ति बोधक होने में कोई सन्देह ही नही है। कभी-कभी अमूर्त पद का भी जातिवाचक पद की तरह व्यवहार होता है। पाप ऐसा ही पद है। हम कह सकते हैं निरुद्योग रहना पाप है, मादक द्रव्यो का सेवन करना पाप है, इत्यादि। इसलिये पाप पद दुर्गुणो की जाति का नाम है। अस्तु, वह जातिवाचक पद है। जातिवाचक पद से गुण और व्यक्ति दोनो का बोध होता है, इसलिये पाप पद धर्म-व्याप्ति वाचक (Connotative) पद है।

इनके अतिरिक्त कुछ व्यक्ति-वाचक पद भी धर्म-व्याप्ति वाचक पद माने जाते है, जैसे, "सुकरात का पिता"। इस पद से एक व्यक्ति का बोध होता ही है, साथ ही कुछ गुणों का भी बोध होता है। कम से कम पिता होने का गुण तो अवश्य ही व्यक्त होता है। इसी प्रकार 'भारत का पहला राष्ट्र-पति', 'बंगाल का वर्तमान राज्यपाल' और 'सुरेश का इकलौता लड़का' आदि पद धर्म-व्याप्तिवाचक (Connotative) माने जाते है।

धर्म-अव्याप्ति (Non-connotative) पदों का स्पष्टीकरण—

व्यक्तिवाचक पद और एकवचन अमूर्त पद धर्म-अव्याप्ति वाचक पद माने जाते हैं। जैसा कि पहले कहा गया है धर्म-अव्याप्ति वाचक पद वह पद है जिससे केवल किसी व्यक्ति का बोध होता है या केवल किसी गुण का। मिल (Mill) का कहना है कि व्यक्तिवाचक नाम केवल संकेत है। उसमें कोई अर्थ नहीं रहता। अपने मन मे इस संकेत से हम किसी वस्तु से सम्बन्ध जोड़ लेते हैं। जिससे जब कभी वह संकेत हमारे ध्यान मे या हमारी आँखो के सामने आता है तो हमें उस वस्तु का स्मरण हो जाता है। जैसे, सुकरात, एक व्यक्तिवाचक नाम है। इसके सम्बन्ध में ऐसा कहा जाता है कि इस पद से एक व्यक्ति का संकेत होता है किन्तु यह पद उस व्यक्ति का कोई गुण नही बतलाता। इसलिये यह पद धर्म-अव्याप्ति वाचक (Non-connotative) पद है।

एक वचन अमूर्त पद केवल गुण बतलाता है। वह किसी व्यक्ति की ओर संकेत नही करता। जैसे सफेदी है। इससे केवल एक गुण का बोध होता है, गुण के साथ किसी व्यक्ति का भी बोध नही होता। धर्म-व्याप्ति वाचक पद से गुण और व्यक्ति दोनो ही का बोध होता है, इसलिये सफेदी पद धर्म-अव्याप्ति (Non-connotative) वाचक पद है। यदि यह कहा जाय कि सफेदी से सफेद रंग का बोध होता है तो सफेदी सफेद रंग का केवल अभिधान (Denotation) ही बताती है, धर्म-व्याप्ति (Connotation) नही। अस्तु, सफेदी पद से या तो धर्म-व्याप्ति व्यक्त होती है या केवल अभिधान। दोनो एक साथ व्यक्त नही होते। इसलिये यह धर्म-अव्याप्ति वाचक (Non-connotative) पद है।

एक वचन व्यक्ति वाचक पद में धर्म-व्याप्ति (Connotation) है या नही। इस विषय में पाश्चात्य नैयायिको मे मतभेद है। कुछ लोग कहते हैं कि हम धर्म-व्याप्ति (Connotation) और अभिधान या नाम-व्याप्ति (Denotation) को अलग नही कर सकते। इसलिये ऐसा नही कह सकते कि कुछ पदों द्वारा केवल धर्म-व्याप्ति का बोध होता है तो अन्य पदो द्वारा केवल अभिधान या नाम-व्याप्ति का। अत. धर्म-अव्याप्ति किसी पद में नही पाई जा सकती। यह मत कुछ हद तक युक्ति-सगत प्रतीत होता है।

मिल (Mill) के धर्म-अव्याप्ति सम्बन्धी मत की कई विद्वानो ने आलोचना की है। उनमें से कुछ का नीचे उल्लेख किया जाता है :—

(१) यदि व्यक्तिवाचक नाम निरर्थक है तो वह निर्णय-वाक्य (Proposition) भी जो व्यक्तिवाचक नाम से बनता है, निरर्थक है। "सुकरात एक वडा दार्शनिक था।" इसमें सुकरात एक व्यक्तिवाचक पद है। यदि सुकरात पद निरर्थक है तो वह वरावर है शून्य के। इसलिये यह कथन, "सुकरात एक वडा दार्शनिक है""O एक वड़ा दार्शनिक था"। किन्तु इसे स्वीकार करना विडम्वना मात्र है।

(२) यदि व्यक्तिवाचक पद किसी वस्तु से सम्वन्वित है, तो उसका नाम केवल नाम-व्याप्ति-वोधन ही नही करता, वल्कि धर्म-व्याप्ति वोधन भी करता है। इसलिये व्यक्ति-वाचक नाम निरर्थक नही हो सकता। मान लिया कि राममहेश किसी व्यक्ति का नाम है। जव तक हम इसके गुणो पर दृष्टि नही डालेगे, कम-से-कम, जव तक इसके स्वरूप को हम अपने ध्यान में नही लायेंगे, तब तक इसके विषय मे कोई धारणा कैसे वनायेगे।

(३) कभी-कभी हम व्यक्तिवाचक पदो का जातिवाचक पदो की तरह व्यवहार करते है जैसे, "महात्मागाँधी आज के वुद्ध है"। "राममूर्त्ति कलयुगी भीम है"। यदि व्यक्तिवाचक पद निरर्थक होते तो इनको जातिवाचक पद की तरह व्यवहार में कैसे लाया जाता। महात्मा वुद्ध एक व्यक्ति थे। वे वहुत शान्तिप्रिय थे। जव हम किसी व्यक्ति को वुद्ध की पदवी देते है, तव उसका तात्पर्य यह होता है कि वह व्यक्ति वहुत शान्तिप्रिय है। इसी तरह जिस

व्यक्ति को हम भीम की पदवी देते है, वह महाबली समझा जाता है। यदि व्यक्तिवाचक पदो से धर्म-व्याप्ति का बोध न होता तो हम ऐसा करने में असमर्थ हो जाते। कालिदास एक कवि थे, जो काव्य-कला में विशेष क्षमता रखते थे, धनवन्तरि एक वैद्य थे, जो वैद्यक शास्त्र मे विशेष पटु थे और हिटलर एक शासक था जो विकट तानाशाह था। आज जब हम किसी कवि की कला-मर्मज्ञता का बखान करना चाहते है, तो कहते है कि ये हमारे कालिदास है, किसी वैद्य की प्राणदा शक्ति को सराहना चाहते है, तो कहते है ये धनवन्तरि है, किसी शासक की निर्ममता दर्शाना चाहते है, तो कहते है, यह हिटलर है। यदि इन व्यक्ति-वाचक पदो मे धर्म-व्याप्ति के बोध की क्षमता न होती तो हम ऐसा कैसे कर सकते।

(४) यदि विचार किया जाय तो ऐसे नाम जैसे कलकत्ता, हरी, राम, स्मिथ, हेमाँगी, पुष्पा, कृष्णा आदि निरर्थक नही कहे जा सकते।

कलकत्ता से एक नगर का बोध होता है। हरी, राम, स्मिथ में प्रत्येक से एक पुरुष का बोध होता है। उसी प्रकार हेमाँगी, पुष्पा, कृष्णा में प्रत्येक से एक स्त्री का बोध होता है। इसलिये इनमे से प्रत्येक पद से जिस प्रकार एक व्यक्ति का बोध होता है, उसी प्रकार गुण या गुणो का भी बोध होता है। इसलिये ये पद धर्म-व्याप्तिवाचक (Connotative) पद है।

क्या पहले पहल व्यक्तिवाचक पद धर्म-अव्याप्ति वाचक (Non-connotative) होते है ?

कुछ लोगो का कहना है कि व्यक्तिवाचक पद पहले धर्म-अव्याप्ति वाचक ही रहते है, पीछे धर्म-व्याप्ति वाचक बनते है, किन्तु यह मत मान्य नही है। सभी

यह मत मान्य नहीं हो सकता कि व्यक्तिवाचक पद पहले धर्म-अव्याप्ति वाचक रहते हैं।

नाम चाहे वे व्यक्तिवाचक हो या और कोई पहल पहल हमारे लिये निरर्थक ही रहते है। जिस भाषा को हम नही जानते उसके शब्द हमको किसी अर्थ का बोध नही कराते। ज्यो-ज्यो हम उस भाषा को सीखते जाते है, त्यो-त्यो उसके शब्द और पद हमारी समझ में आने लगते है। जबतक हम अंग्रेजी भाषा नही जानते, तब तक "ट्री" शब्द का अर्थ हम नही समझ सकते, वह

जान या स्मिथ की तरह हमारे लिये अर्थशून्य ही रहता है। परन्तु जब हम उस भाषा को सीख लेते हैं, उसके व्याकरण और स्वरूप से अभिज्ञ हो जाते है तब "ट्री" और अन्य शब्द जो पहले अर्थशून्य जान पड़ते थे, अर्थ-युक्त जान पडने लगते हैं। इसलिये यह मत कि "व्यक्तिवाचक पद पहले धर्म-अव्याप्ति वाचक रहते हैं, बाद को धर्म-व्याप्ति वाचक बनते हैं" मान्य नही हो सकता।

यह मत कि व्यक्ति वाचक पद व्यापक अर्थ नहीं रखते भ्रामक है।

कुछ लोग यह तो नही स्वीकार करते, कि व्यक्तिवाचक पद अर्थ-शून्य होते है, परन्तु यह मानते हैं कि व्यक्ति वाचक पद व्यापक अर्थ नही रखते। अब प्रश्न यह है कि व्यापक अर्थ है क्या ? व्यापक अर्थ जैसी यदि कोई चीज है तो वह है, जातिवाचक पद का अर्थ। जातिवाचक पद के अर्थ से तात्पर्य है उन अपरिहार्य गुणो से जो जाति के हरेक व्यक्ति मे पाये जाते है। व्यक्तिवाचक पद इन्ही व्यक्तियो के नाम है। हम पहले देख चुके हैं कि वे धर्म-व्याप्ति का बोध और नाम व्याप्ति का बोध दोनो ही कराते हैं। इसलिये यह कहना कि व्यक्तिवाचक पद धर्म-व्याप्ति नही रखते कोरी बकवास है।

व्यक्तिवाचक पद व्यापक अर्थ न रखते हुए भी धर्म-व्याप्ति रखते हैं।

कहने की आवश्यकता नही कि व्यक्तिवाचक पद से एक व्यक्ति का बोध होता है। इसलिये वह जाति बोधक नही हो सकता। परन्तु इस कारण वह धर्म-अव्याप्ति बोधक नही माना जा सकता। यदि हम केवल जातिवाचक पद को ही धर्म-व्याप्ति बोधक मानेगे तो बाकी सब पद धर्म अव्याप्ति बोधक गिने जायेगे। किन्तु यह कथन बहुत ही अनुपयुक्त होगा। मिल साहब नें स्वय स्वीकार किया है, कि जो पद नाम-व्याप्ति का बोध और धर्म-व्याप्ति का बोध, दोनो ही कराता है, वह धर्म-व्याप्ति बोधक है। हम सिद्ध कर चुके है, कि व्यक्ति-वाचक पद दोनो काम करता है। इसलिये व्यक्तिवाचक पद व्यापक अर्थ न रखते हुए भी धर्म-व्याप्ति रखता है।

व्यक्तिवाचक पद नाम-व्याप्ति बोध के साथ-साथ धर्म-व्याप्ति का बोध भी कराता है।

नाम-व्याप्ति के बोध और धर्म-व्याप्ति के बोध मे अविछिन्न सम्बन्ध होता है, क्योकि व्यक्ति और गुण का अविछिन्न सम्बन्ध है। इसलिये जब हम कहते है कि व्यक्तिवाचक पद नाम-व्याप्ति का बोध कराता है, तो इसका यह भी अर्थ समझना चाहिये कि व्यक्तिवाचक पद धर्म-व्याप्ति का भी बोध कराता है। यदि व्यक्तिवाचक पद से धर्म-व्याप्ति-बोध का अर्थ निकाल दिया जाय तो वह केवल सकेत करनेवाला रह जायगा। परन्तु व्यक्तिवाचक पद केवल सकेत करनेवाला नही होता। इसलिये वह धर्म-व्याप्ति बोध और नाम-व्याप्ति बोध, दोनो एक साथ ही कराता है।

९ एकवचन अमूर्त पद धर्म-व्याप्ति बोध के साथ-साथ नाम व्याप्ति का बोध भी कराता है :—

कुछ लोगो का मत है कि एकवचन अमूर्त पद केवल धर्म-व्याप्ति बोधन करते है नाम व्याप्ति बोधन नही। इसलिये वे धर्म-अव्याप्ति बोधक पद है। उनके मत के अनुसार सफेदी केवल एक गुण का बोध कराती है, किसी व्यक्ति का बोध नही कराती। किन्तु हम जानते है, कि कोइ गुण अपना स्वतत्र अस्तित्व नही रख सकता, वह एक वस्तु को अपने अस्तित्व के लिये आधारभूत रखता है। इसलिये जब सफेदी से सफेद रंग का बोध होता है, तब उस वस्तु का भी बोध होता है, जिसमें सफेद रग है। वास्तव में सफेदी भी एक प्रकार की नही होती, बल्कि कई प्रकार की होती है। ये विभिन्न प्रकार इसकी नाम-व्याप्ति बोधकता बतलाते है। इसलिये सफेदी पद से गुण और व्यक्ति दोनो ही का बोध होता है। अस्तु ऐसे एकवचन अमूर्त पद जैसे सफेदी धर्म-व्याप्ति रखने वाले पद है।

१०. धर्म-व्याप्ति बोधन और नाम-व्याप्ति बोधन में सम्बन्ध—
(Relation between Connotation and Denotation)

इस सम्वन्ध मे दो मत है। एक मत यह है कि इन दोनो मे कोई घनिष्ट सम्बन्ध नही है। इस मत के अनुसार कोई पद धर्म-व्याप्ति बोधन करता है, तो नाम-व्याप्ति बोधन नही करता और यदि नाम-व्याप्ति बोधन करता है तो धर्म-

व्याप्ति बोधन नही करता। यह मत उस दृष्टिकोण का परिणाम है जो व्यक्ति-वाचक को केवल नाम-व्याप्ति बोधक और भाव-वाचक को केवल धर्म-व्याप्ति बोधक मानता है।

दूसरे मत के अनुसार धर्म-व्याप्ति बोधन और नाम-व्याप्ति बोधन में घनिष्ट सम्बन्ध है।

पहले बताया गया है कि पहला मत मान्य नही है। हम ऐसा नही कह सकते कि किसी पद का धर्म-व्याप्ति बोधन या नाम-व्याप्ति बोधन स्वतंत्र कार्य हो सकता है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक पदार्थ जो अपना अस्तित्व रखता है वह अपना गुण भी रखता है और प्रत्येक गुण जो अपना अस्तित्व रखता है वह कोई पदार्थ भी आधारभूत रखता है। हम एक वस्तु को उसके गुण द्वारा ही पहचान सकते हैं। इसलिये कोई पद पहले धर्म-व्याप्ति बोधन करेगा तब नाम-व्याप्ति बोधन कर सकेगा। जैसे गुलाब पद है। यह धर्म-व्याप्ति बोधक पद है, इसलिये गुण-बोधन और नाम-बोधन दोनो ही करता है। अब देखना है, कि यह पद क्या गुण बोधन और नाम बोधन का कार्य स्वतत्र रूप से कर सकता है। यदि हम 'गुलाब' से उसकी पखुडियो, उसके रग और रूप को अलग कर दें तो वह गुलाब न रहकर कुछ और ही पदार्थ हो जायगा। तब उसमें गुलाब होने के कोई चिन्ह न रह जायेंगे। गुलाब कहलाने के लिये उसे इन गुणो से युक्त होना चाहिये। हम उसके गुणो से ही उसको पहचान सकते हैं। इसलिये यदि गुलाब से नाम-बोधन होता है तो वह केवल गुण-बोधन के माध्यम से। दूसरी बात यह है कि, गुलाबपन शून्य में नही रह सकता, वह किसी पदार्थ में ही रह सकता है। इसलिये गुलाब पद गुण-बोधन के साथ-साथ नाम-बोधन भी करता है। किसी पद के अर्थ का तात्पर्य यह है कि उस पद से अमुक वस्तु या एक ही प्रकार की अमुक वस्तुओं का बोध होता है। किसी पद से किन्ही वस्तुओ का बोध तभी हो सकता है, जब वह पद एक ओर तो उनके अस्तित्व और दूसरी ओर उनके गुण या गुणो की ओर सकेत करे। इससे स्पष्ट हो जाता है, कि

गुण-बोधन और नाम-बोधन एक ही अर्थ के दो पहलू हैं, और आपस में अविच्छिन्न हैं।

गुण-व्याप्ति बोधक और नाम-व्याप्ति बोधक में प्रकार का भेद नही है ये दोनो एक ही अर्थ के दो पार्श्व है, जो एक दूसरे से अविच्छिन्न है।

११. धर्म-व्याप्तिबोधक (Connotation) और नाम-व्याप्ति बोधक (Denotation) में परिमाण सम्बन्धी अनुपात :—

हम देख चुके है कि धर्म-व्याप्ति बोधक और नाम-व्याप्ति बोधक मे घनिष्ट सम्बन्ध है। इनके सम्बन्ध मे यह नियम प्रसिद्ध है कि ज्यो-ज्यो किसी पद का नाम-व्याप्ति बोधन बढता जाता है, त्यो-त्यो गुण-व्याप्ति बोधन घटता जाता है और ज्यो-ज्यो गुण व्याप्ति बोधन बढता जाता है, त्यो-त्यो नाम-व्याप्ति बोधन घटता जाता है। जैसे प्राणी पद है। इससे सभी जीवधारियो का बोध होता है। इसमें यदि 'चेतन' शब्द जोड दिया जाय, तो 'चेतन प्राणी' पद बनेगा। इससे पद में एक और गुण जुड जाता है। अब केवल वह प्राणधारी ही नही रहता बल्कि चेतन प्राणधारी बन जाता है। इसलिये प्राणी पद का गुण व्याप्ति बोधन पहले की अपेक्षा बढ़ जाता है। परन्तु परिणामस्वरूप नाम-व्याप्ति बोधन घट जाता है, क्योकि चेतन प्राणी से पेड़-पौधे आदि प्राणियो का बोध नही हो सकता। प्राणियो की अपेक्षा चेतन-प्राणियो की सख्या बहुत कम है। अस्तु, गुण-व्याप्ति बोधन के बढने से नाम-व्याप्ति बोधन घटता है।

अब देखना है कि नाम-व्याप्ति बोधन के बढने से गुण-व्याप्ति बोधन किस प्रकार घटता है। यदि हम चेतन के साथ जड पद को जोड देते है तो जड और चेतन प्राणी से सभी जीवधारियों का बोध होता है। पेड, पौधे, जलचर, थलचर और नभचर सब इसके अन्तर्गत आजाते है। सख्या पहले की अपेक्षा बहुत अधिक हो जाती है किन्तु पदमे जो गुण व्याप्त है वह पहले की अपेक्षा कम हो जाता है। पहले प्राणधारण के साथ चेतन गुण भी था, अब केवल प्राण धारण ही बच रहा। अस्तु नाम-व्याप्ति बोधन के बढने से गुण-व्याप्ति बोधन घटता है।

बहुत से पाश्चात्य नैयायिक कहते है कि गुण-व्याप्ति बोधन और नाम-व्याप्ति बोधन व्यतिरेक अनुपात से घटते-बढते है। अर्थात् गुण-व्याप्ति बोधन ठीक उसी अनुपात से घटता है जिस अनुपात से नाम-व्याप्ति बोधन बढता है तथा

नाम व्याप्ति बोधन ठीक उसी अनुपात से घटता है, जिस अनुपात से गुण व्याप्ति-बोधन बढता है ।

१२. गुण व्याप्ति बोधन (Connotation) और नाम व्याप्ति बोधन (Denotation) के परस्पर घटन बढने का नियम प्रत्येक दशा में घटित नही होता ।

घटने-बढने का नियम प्रत्येक दशा मे घटित नही होता । जब कुछ मनुष्य जन्म लेते है तो 'मनुष्य' का नाम-व्याप्ति बोधन अवश्य बढता है, परन्तु गुण-व्याप्ति बोधन घटता नही । 'मनुष्य' पद से उन्ही गुणो का बोध होता है, जिनका पहले होता था । इसके विरुद्ध कुछ लोग कह सकते है, कि प्रति दिन जहाँ कुछ मनुष्य पैदा होते है, वहाँ बहुत से मर भी जाते है । इसलिये मनुष्य पद का नाम-व्याप्ति बोधन बढता नही । परन्तु यह उक्ति ठीक नही है । हर साल जनसख्या बढती जाती है । इससे मृत्यु से जन्म की सख्या अवश्य अधिक प्रतीत होती है । फलस्वरूप 'मनुष्य' पद का नाम-व्याप्ति बोधन बढ़ता है, परन्तु इससे उसके गुण व्याप्ति बोधन पर कोई असर नही पड़ता ।

इसके सिवा ऐसे भी उदाहरण पाये जाते है,जहाँ पदो का गुण व्याप्ति बोधन तो बढ जाता है, पर नाम-व्याप्ति बोधन नही घटता । जैसे मनुष्य पद से मूर्त्तता, प्राणित्व और विवेक का बोध होता है । यदि हम उसमें नश्वरता का गुण और जोड दे, तो मनुष्य पद का गुण-व्याप्ति बोधन अवश्य बढ जाता है, पर नाम-व्याप्ति बोधन कम नही होता । नश्वरता का गुण जुड जाने पर भी मनुष्य पद से पहले की तरह सभी मनुष्यो का बोध होता है ।

सभी मनुष्य मरणशील है । इसलिये मनुष्य पद से जब मूर्त्तता, प्राणित्व और विवेक के अतिरिक्त मरणशीलता का भी बोध कराया जाता है, तब भी सख्या कम नही होती, मनुष्य पद से तब भी सभी मनुष्यो का बोध होता है । एक दूसरा उदाहरण लीजिये । हम जानते है, कि सोने मे अमुक गुण है । यदि रसायन विद्या ने उसका कोई नया गुण ढूँढ निकाला तब सोने का गुण-व्याप्ति बोधन अवश्य बढ जायगा, किन्तु उसका नाम व्याप्ति बोधन कम नही होगा । नये गुण के जुड जाने पर भी वह सोना ही रहेगा । जिन कामो के लिये उसका व्यवहार पहले होता था, उन सबके लिये फिर भी होता रहेगा ।

इसके अतिरिक्त गुण-व्याप्ति बोधन और नाम-व्याप्ति बोधन की परस्पर घटती-बढती के सम्बन्ध मे 'विपरीत अनुपात' पद का प्रयोग करना अनुपयुक्त है। ऐसा अक्सर होता है कि जब कभी गुण-व्याप्ति बोधन बढता है तो नाम- व्याप्ति बोधन घटता है। किन्तु घटती-बढती की नाप तोल नही हो सकती। यदि छात्र शब्द में कालेज शब्द जोड दिया जाय तो छात्र के गुण-व्याप्ति बोधन मे एक गुण बढ जायगा, किन्तु 'छात्र' से 'कालेज-छात्र' मे नाम-व्याप्ति बोधन कई गुना घट जायगा। फिर 'चेतन प्राणी' पद से 'चेतन' पद को हटा देते हैं तो गुण व्याप्ति बोधनमे एक गुण कम हो जायगा। परन्तु पेड पौधो के सम्मिलित हो जाने से प्राणी पद से जीवधारियों की सख्या का जो बोध होता है, वह पहले से कई गुना अधिक है। इसलिये गुण-व्याप्ति बोधन और नाम-व्याप्ति बोधन की घटती-बढती का नाप-तोल करना मिथ्या प्रयास के सिवा और कुछ नही हो सकता।

विपरीत अनुपात की अनुपयुक्तता

हम देख चुके है, कि गुण-बोधन के बढने से हर हालत मे व्यक्ति-बोधन कम नही होता, और व्यक्ति-बोधन के बढने से गुण-बोधन ही कम होता है। यह नियम केवल उन्ही पदों के सम्बन्ध मे सत्य है जो एक श्रेणी मे बद्ध किये जा सकते है, जैसे प्राणी, चेतन प्राणी', 'विवेक-शील चेतन प्राणी'। 'प्राणी' पद मे जब हम 'चेतन' गुण जोडते है, तो गुण-व्याप्ति बोधन बढ जाता है पर बोधित होने-वाले व्यक्तियो की संख्या कम हो जाती है, अर्थात् नाम-व्याप्ति बोधन घट जाता है। फिर 'चेतन प्राणी' में जब हम विवेकशील गुण और जोडते है तब गुण-व्याप्ति बोधन और अधिक बढ जाता है और नाम-व्याप्ति बोधन घट जाता है। इसी प्रकार यदि हम 'विवेकशील चेतन प्राणी' से आरम्भ करते है और एक एक गुण छोड कर प्राणी पद पर पहुँचते है, तब प्रत्येक बार जब हम एक गुण छोडते है तो नाम-व्याप्ति बोधन बढता जाता है और गुण बोधन घटता जाता है। 'विवेकशील चेतन प्राणी' से केवल मनुष्यो का बोध होता है। इसमें से यदि 'विवेकशील' को निकाल दिया जाय तो 'चेतन प्राणी' पद से मनुष्यों के अतिरिक्त पशु-पक्षियो का भी बोध होने लगता है। इसलिये इस पद

से जिन व्यक्तियो का बोध होता है, उनकी संख्या बढ जाती है, और गुण की घटती हो जाती है अर्थात् नाम-व्याप्ति बोधन बढ़ जाता है, और गुण व्याप्ति बोधन घट जाता है। इसी प्रकार प्राणी पद मे नाम-व्याप्ति बोधन और अधिक बढ जाता है और गुण व्याप्ति बोधन घट जाता है।

किन्तु घटती-बढती का यह नियम, इसके पक्ष और विपक्ष के वाद प्रतिवाद, सब वितंडावाद के सिवा और कुछ नही है। वास्तव में नाम-व्याप्ति बोधन न घटता है न बढता है। गुण-व्याप्ति बोधन बढ़ सकता है, परन्तु ज्यो-ज्यों गुण-व्याप्ति बोधन बढता है, त्यो-त्यों नाम-व्याप्ति बोधन घटता नही। मनुष्य पद से यदि मूर्तता, प्राणित्व और विवेक-शीलता के गुणो का द्योतन होता है तो इस पद से उन सब व्यक्तियो का भी बोध होता है, जिनमें ये गुण पाये जाते है। इसलिये घटने-बढने का प्रश्न ही यहाँ उपस्थित नही होता। कुछ लोग कहते है कि पीछे कुछ व्यक्ति ऐसे हो जो मनुष्य जाति से बाहर हो और फिर वे मनुष्य जाति में मिला दिये जायँ, तो मनुष्य पद का नाम व्याप्ति बोधन बढ जायगा। किन्तु ऐसा सोचना भ्रम है। पहली बात तो यह है कि जो व्यक्ति पहले मनुष्य नही है वह फिर बाद को मनुष्य हो ही कैसे सकता है। दूसरी बात यह है कि मनुष्य पद केवल कुछ ज्ञात व्यक्तियो की ओर संकेत नही करता। बल्कि भूत, वर्तमान और भविष्य के सभी मनुष्यों का बोध कराता है। इनकी संख्या पहले ही से अपरिमित है। इसलिये लोगो के पैदा होने या मरने से इस पद का नाम-व्याप्ति बोधन घट बढ नही सकता।

यदि कुछ व्यक्तियो को जो मनुष्य नही है, मनुष्यो में मिला दें तो हम एक नया समूह बनायेंगे, जिसको एक नया नाम देना आवश्यक हो जायगा। उस नये नाम द्वारा कुछ ऐसे गुणो का बोध होगा, जो मनुष्य और उस व्यक्ति-समूह में पाये जायेंगे। इस नये पद के गुण-व्याप्ति बोधन में बौद्धिकता की गिनती नही हो सकती। पर बौद्धिकता मनुष्य का विशेष गुण है। इसलिये इस समूह के बनाने और इसका एक नया नाम देने से 'मनुष्य' पद का नाम-व्याप्ति बोधन कैसे बढ़ सकता है। वह तो दूसरा ही पद माना जायगा।

नया समूह बनाने और नया नाम देने से किसी पद का गुण-बोधन और व्यक्ति-बोधन नहीं घट बढ़ सकता।

प्रत्येक पद का गुण-व्याप्ति बोधन प्रचलन से निर्धारित होता है। हम व्यक्ति की जाँच करते है और उसके कुछ अपरिहार्य गुणो को चुनकर एक नाम देते है। इस प्रकार जो गुण चुने जाते है, वे ही उस नाम के गुण-व्याप्ति बोधन बनते है। बाद को उन व्यक्तियो के अन्य अपरिहार्य गुण हमे ज्ञात होते है। इस प्रकार उस पद का गुण-व्याप्ति बोधन बढ सकता है किन्तु गुण-व्याप्ति बोधन के बढने से नाम-व्याप्ति बोधन पर कोई असर नही पडता। वह ज्यो-का-त्यों बना रहता है। सोने के नये गुण के प्रकाश मे आने से सोने के परिमाण में घटती-बढती नही होती, वह जितना पहले था उतना ही रहता है।

साराश यह कि किसी पद का नाम-व्याप्ति बोधन न घटता है न बढता है। हाँ, गुण-व्याप्ति बोधन बढ सकता है। किन्तु गुण-व्याप्ति बोधन की वृद्धि से नाम-व्याप्ति बोधन की घटती नही होती, वह सदैव अपने असली परिमाण में रहता है।

अध्याय ५ का सारांश

पदों का विभाजन (Division of Terms)

पद कई प्रकार के होते है, उनकी सख्या नीचे दी जाती है।

(१) साधारण (Simple) और यौगिक (Composite)

(२) व्यक्तिवाचक (Singular), जातिवाचक (General), समूहवाचक (Collective)

(३) मूर्त (Concrete), अमूर्त (Abstract)

(४) विधिवाचक (Positive)', निषेध वाचक (Negative) और पर्युदासक (Privative)

(५) निश्चय वाचक (Definite) और अनिश्चयवाचक (Indefinite)

(६) निरपेक्ष (Absolute) और सापेक्ष (Relative)

(७) एकार्थक (Univocal) और अनेकार्थक (Eqivocal)

(८) धर्म-व्याप्ति बोधक (Connotative) और धर्म-अव्याप्ति बोधक (Non-Connotative)

इन वर्गो के सम्बन्ध में जो प्रकृति निर्धारक सामान्य नाम रखे गए हैं उनके तीन सिद्धान्त हैं नाम सम्बन्धी, (Nominalism) धारणा सम्बन्धी (Conceptualism) और तथ्य सम्बन्धी (Realism)

नाम सम्बन्धी (Nominalism) सिद्धान्त के अनुसार केवल व्यक्ति ही वास्तविक है, व्यक्तियो में सर्वनिष्ठ कोई गुण नही है। उनमें जो सर्वनिष्ठ है, वह केवल नाम है। जैसे गाय। यह एक वर्ग है, जो अनेकों व्यक्तियों से बना है, किन्तु नाम सिद्धान्त के अनुसार ये सब व्यक्ति केवल एक ही वस्तु निष्ठ रखते है, वह वस्तु का नाम (गाय) है।

धारणा सिद्धान्त (Conceptualism) के अनुसार नाम का अनेकों व्यक्तियो के लिये व्यवहार होता है, क्योकि वह एक धारणा को व्यक्त करता है। पहले हम एक वर्ग की धारणा बनाते है और फिर इस धारणा को एक नाम से जोड देते हैं। इस सिद्धान्त के माननेवाले कहते है, कि वर्ग में जो वस्तु निष्ठ (Common) है वह धारणा है न कि नाम।

तथ्य सिद्धान्त (Realism) के मानने वाले कहते है, कि धारणा कुछ ऐसे गुण पर आधारित रहती है, जो वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति में पाया जाता है। वर्ग से उस व्यापकता की ओर सकेत होता है, जो सब व्यक्ति में व्याप्त है। इसलिये एक सामान्य नाम से अथवा वर्ग के नाम से वर्ग के उस मूलभूत गुण का बोध होता है, जिससे उस वर्ग के सब व्यक्ति सम्बन्धित है।

मूर्त (Concrete) पद किसी वस्तु या जीव का नाम होता है। इसके विपरीत अमूर्त (Abstract) पद किसी धर्म या गुण का नाम होता है।

विधिवाचक (Positive) पद किसी धर्म या गुण की स्थिति सूचित करता है। इसके विपरीत निषेधवाचक (Negative) पद किसी धर्म या गुण का अभाव सूचित करता है। श्वेत पद विधिवाचक है और अश्वेत पद निषेधवाचक है। पर्युदासक (Privative) पद विधि रूप में होते हुए भी निषेध का अर्थ देता है, जैसे "अन्धा"।

निश्चयवाचक (Definite) पद से कोई निश्चित वस्तु व्यक्त होती है, जब कि अनिश्चयवाचक (Indefinite) पद में कोई निश्चित वस्तु व्यक्त नही

होती। मनुष्य, केतकी, श्वेत आदि निश्चयवाचक पद है। कुछ, अपूर्ण, अश्वेत अनिश्चयवाचक हैं।

निरपेक्ष (Absolute) पद का अर्थ पूर्ण रहता है। वह अर्थ-पूर्ति के लिये किसी अन्य पद का सहारा नही ढूंढता परन्तु सापेक्ष (Relative) पद युग्म मे चलते है। मनुष्य, केतकी, श्वेत निरपेक्ष पद है, किन्तु मित्र, पिता, पुत्र, कारण, कार्य इत्यादि सापेक्ष पद है।

एकार्थक (Univocal) पद उसे कहते है, जो सदैव एक ही अर्थ में व्यवहृत होता है। जैसे—मनुष्य, गाय इत्यादि। जो पद एक से अधिक अर्थ मे व्यवहृत होता है, उसे अनेकार्थक (Equivocal) कहते है। जैसे—गज, सर आदि।

धर्म-व्याप्ति बोधक (Connotative) पद उसे कहते है, जो कोई गुणते व्यक्त करता है और किसी व्यक्ति से भी सम्बन्ध रखता है।

धर्म-अव्याप्ति बोधक (Non-connotative) इसके विपरीत, वह पद है, जो केवल गुणबोधन करता है या केवल व्यक्ति बोधन करता है। मनुष्य, गाय इत्यादि पद धर्म-व्याप्ति बोधक है और सफेदी, न्याय, हरप्रसाद, कलकत्ता आदि धर्म-अव्याप्ति बोधक कहे जाते है।

कुछ नैयायिक व्यक्तिवाचक नाम (Proper Nouns) को धर्म-अव्याप्ति बोधक (Non-connotative) पद मानते है, क्योकि वे यदि अर्थयुक्त होगे, तो धर्म-व्याप्ति बोधक (Connotative) हो जायेगे, तब वे व्यक्ति के बोध के साथ-साथ गुणो का बोध भी करेगे।

कुछ अन्य नैयायिको का कहना है, कि धर्म-व्याप्ति (Connotation) और नाम-व्याप्ति (Denotation) मे विपरीतता का सम्बन्ध (Inverse relation) है। वे कहते है, कि जब पद की धर्म-व्याप्ति (Connotation) बढती है, तब नाम-व्याप्ति (Denotation) घटती है और जब नाम-व्याप्ति बढ़ती है तब धर्म-व्याप्ति घटती है। यह नियम खास-खास मौको पर ही लागू होता है। अकसर जब धर्म-व्याप्ति या नाम-व्याप्ति मे से

एक में बढती-घटती होती है, तब दूसरे में घटती-बढती नही होती है। यह नियम सदैव लागू नही होता।

अध्याय ५ : अनुशीलन

(१) विभिन्न प्रकार के पदो का वर्णन करो।

(२) सोदाहरण निम्मांकित पदो की व्याख्या करो —
मिश्रित पद, पर्युदासक पद, अमूर्त पद और अनिश्चयवाचक पद।

(३) वर्ग की प्रकृति के सम्बन्ध मे जो सिद्धान्त है, उनकी व्याख्या करो।

(४) नाम सिद्धान्त (Nominalism) क्या है? क्या यह वर्ग की प्रकृति की ठीक-ठीक व्याख्या करता है?

(५) अमूर्त पद व्यक्तिवाचक (Singular) होता है या सामान्यवाचक (General)?

(६) निषेधवाचक (Negative) और पर्युदासक (Privative) पदो की तुलना करो।

(७) धर्म-व्याप्ति बोधक (Connotative) और नाम-व्याप्ति बोधक (Denotative) पदो में अन्तर बताओ। क्या व्यक्ति वाचक नाम धर्म-अव्याप्ति बोधक (Non-connotative) पद है?

(८) धर्म-व्याप्ति (Connotation) और नाम-व्याप्ति (Denotation) के सम्बन्ध में तुम्हारी क्या राय है? क्या तुम इस मत से सहमत हो कि धर्म-व्याप्ति और नाम-व्याप्ति में विपरीत घटती-बढती होती है?

(९) उचित शीर्षक के अन्तर्गत निम्नाकित पदो का वर्गीकरण करो—
मनुष्य, घोडा, न्याय, ललाई, आलसी, अन्धा, बुद्धिमान, सूर्य, लोहार, कलकत्ता, गोदावरी, आस्ट्रेलिया, वायु, पानी, सैन्य, जहाजी-सेना, पंचायत, पुस्तक, फुटबाल, बजनी, फ्रान्सका राजा।

— o —

अध्याय ६

१. अभिधेय (Predicables)

अभिधेय पद जाति-वाचक पदो के ही पाच विभाग हैं, किन्तु इनका विभाजन जातिवाचक पदो के अर्थ के आधार पर नही होता।

अभिधेय पांच हैं। उनके नाम है—मूल-जाति, उप-जाति, विशेष-गुण, सहज गुण, औपाधिक गुण।

यह वाक्य में उद्देश्य और विधेय के सम्बन्ध के अनुसार किया जाता है। अरस्तू ने चार अभिधेयो का वर्णन किया है। उनके नाम हैं, परिभाषा या लक्षण, जाति (Genus), सहज गुण (Property) और औपाधिक गुण (Accidents)। फिर प्रथम अभिधेय (Predicables) का उपभेद किया है। इस प्रकार अभिधेयो की सख्या कुल पाच हो जाती है।

तीसरी शताब्दी मे रोम मे पारफिरी नाम का एक नैयायिक हुआ। इसने अभिधेयो का पाच भाग में विभाजन किया इसी की सूची को स्वीकार करके बाद के नैयायिकों ने अभिधेयो की सूची की व्यवस्था की। उनके अनुसार अभिधेय (Predicables) पाच है जिनके नाम है मूलजाति (Genus) उपजाति (Species), विशेष गुण या व्यावर्त्तक गुण (Differentia) सहज-गुण (Properium) और औपाधिक गुण (Accidents)

२. मूलजाति और उपजाति

(Genus and species)

मूल जाति अभिधेय वह जाति वाचक पद है, जो नाम-व्याप्ति में किसी अन्य पद से अधिक विस्तृत है और उपजाति वह पद है जो नाम-व्याप्ति में किसी अन्य पद से कम विस्तृत है। ध्यान रखना चाहिये कि मूलजाति अभिधेय से किसी वर्ग के नाम का

बोध नही होता बल्कि वर्ग का बोध होता है। मूलजाति अभिधेय वह व्यापक वर्ग है जिसके अन्तर्गत अन्य कई छोटे व्याप्त वर्ग होते है।

मूलजाति वह वर्ग है, जो अन्य कई वर्गों के मिलने से बनता है और उपजाति वह वर्ग है, जो किसी वर्ग के अन्तर्गत होता है।

उपजाति अभिधेय वह व्याप्त वर्ग है, जो किसी व्यापक वर्ग के अन्तर्गत होता है। जैसे प्राणी पद व्यापक वर्ग अथवा मूलजाति है और मनुष्य, घोडा, कुत्ता, गाय आदि उपजाति है। प्राणी का वर्ग, मनुष्य, घोडा, कुत्ता, गाय, आदि के वर्ग से कही अधिक व्यापक है और इन वर्गों को अपने अन्तर्गत सम्मिलित रखता है। हम कह सकते है कि मनुष्य एक प्राणी है, किन्तु ऐसा नही कह सकते कि प्राणी एक मनुष्य है; या हम यह कह सकते है कि घोडा एक प्राणी है, किन्तु यह नहीं कह सकते कि प्राणी एक घोडा है। "घोडा एक प्राणी है", इस वाक्य मे घोडा एक छोटा वर्ग है और यह प्राणी वर्ग के अन्तर्गत आ जाता है। "मनुष्य एक प्राणी है" मे मनुष्य एक वर्ग है, जो प्राणी वर्ग के अन्तर्गत आता है। प्राणी पद से किसी भी प्राणधारी का बोध होता है। परन्तु हरेक प्राणधारी न तो घोडा ही होता है, न मनुष्य ही। इनके अतिरिक्त वह कोई और जीव भी हो सकता है। इससे प्रकट है कि प्राणी पद घोडा या मनुष्य पद से कही अधिक व्यापक है। घोडा और मनुष्य दोनो वर्ग प्राणी वर्ग के अन्तर्गत आ जाते है। इसलिये प्राणी वर्ग मूल जाति (Genus) है और मनुष्य या घोडा वर्ग उपजाति (Species) है।

ऊपर कहा गया है कि उपजाति मूलजाति के अन्तर्गत होती है। इस कथन को भली-भाति समझ लेना चाहिये। जब कोई मनुष्य मोटर गाडी मे बैठता है, तब कहा जाता है कि वह मोटर गाडी मे है। वह थोडी देर बाद गाडी से उतर जाता है और गाडी खाली हो जाती है, परन्तु चाहे वह गाडी के अन्दर रहे या न रहे गाडी, गाड़ी ही रहती है। वह कोई अन्य वस्तु नही हो जाती। इसी प्रकार तकिया, तकिया-गिलाफ के अन्दर चाहे रहे या न रहे तकिया-गिलाफ फिर भी तकिया-गिलाफ ही कहलाता है, वह कोई अन्य चीज नही हो जाता। यदि एक

अन्तर्गत का अर्थ

वड़े वृत्त (A) से एक छोटे वृत्त (B) को निकाल दिया जाय तो वडा वृत्त (A) ज्यो-का-त्यो वना रहेगा। किन्तु मूलजाति और उपजाति का सम्बन्ध ऐसा नही है। मूलजाति-वर्ग कई छोटे-छोटे उपजाति-वर्गो से वनता है। इनमें से कोई निकाला नहीं जा सकता। उपजाति से ही मूलजाति निश्चित की जाती है। जव यह कहा जाता है कि मूलजाति उपजातियो से वनती है, तव इसका मतलव यह नही होता कि मूलजाति उपजातियो का योग मात्र है। मूलजाति का व्यापक धर्म प्रत्येक उपजाति में व्याप्त रहता है। एकीभूत की यही प्रतीति उपजाति को मूलजाति के अन्तर्गत लाती है। स्तनपेयी जीव, पक्षी और मछली, सबमे प्राणी की प्रकृति की एकीभूत की प्रतीति होती है। इसी कारण ये सब प्राणी कहलाते है अर्थात् ये सब उपजातियाँ प्राणी मूलजाति के अन्तर्गत आती है।
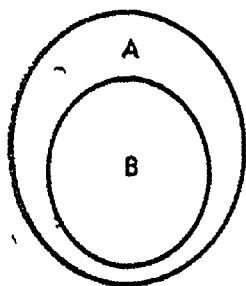
मूलजाति और उपजाति मे वही सम्वन्ध है, जो सम्पूर्ण का खंड से है, जैसे, शरीर का हाथ-पैर आदि से है। सम्पूर्ण अपने खडो से वनता है। खडो को अलग कर दें तो सम्पूर्ण सम्पूर्ण नही रह सकता। सम्पूर्ण को वनाने के लिये ही खड सम्पूर्ण में सम्मिलित किये जाते है। यदि स्तनपेयी, पक्षी और मछली उपजातियाँ न रहे तो प्राणी जाति का रहना असम्भव है, क्योकि इन भिन्न-भिन्न उपजातियो से ही प्राणी जाति वनती है। अस्तु, जव हम यह कहते है कि उपजातियाँ मूलजाति के अन्तर्गत होती है, तव हमारा तात्पर्य यह होता है कि उपजातियो से ही मूलजाति वनती है।

पूर्ण और खड में जो सम्वन्ध है, वही सम्वन्ध मूलजाति और उपजाति में है।

३. मूलजाति और उपजाति (Genus and Species)

अभिधेयो का मूलजाति और उपजाति में विभाजन निरपेक्ष नही कहा जा सकता, ऐसा नहीं कहा जा सकता कि यदि कोई वर्ग मूलजाति है, तो वह सदैव

मूलजाति ही रहेगा और उपजाति कभी नही होगा। आम तौर पर हरेक वर्ग छोटे वर्गों की दृष्टि से मूलजाति और किसी बड़े वर्ग की दृष्टि से उपजाति होता है। स्तनपेयी वर्ग को लीजिये। यह मनुष्य, घोड़ा, कुत्ता आदि के मुकाबले में जाति है। परन्तु प्राणीवर्ग की दृष्टि से उपजाति है। भिन्न-भिन्न वर्गों की ऐसी सूची तैयार की जा सकती है और व्यापकता की दृष्टि से पूर्वा पर के क्रम से सजाकर यह दिखलाया जा सकता है कि एक वर्ग जब अपने अनुवर्त्ती वर्ग की मूल जाति है तो पूर्ववर्त्ती वर्ग की उपजाति। मूलजाति और उपजाति में व्यापक और व्याप्त का सम्बन्ध रहता है। इनको परतम और अपरतम सामान्य भी कहा जाता है।

कोई वर्ग जहाँ अन्य वर्गों की जाति होता है, वहाँ किसी वर्ग की उपजाति भी होता है।

"परत्व अधिक देशवृत्विम्। अपरत्व अल्प देशवृत्त्वि" के अनुसार अधिक व्यक्ति वाले वर्ग को पर-सामान्य और कम व्यक्ति वाले वर्ग को अपर-सामान्य कहते हैं। उक्त सूची में यदि हम उत्तरोत्तर पर सामान्य अर्थात् अधिक व्यापक सामान्य की ओर बढ़ें तो अन्त मे एक ऐसे वर्ग पर पहुँचेगे जो किसी अन्य वर्ग के अन्तर्गत नही आ सकता। वह सबसे अधिक व्यापक वर्ग होता है। इसे परतम सामान्य (Summum-Genus) कहते हैं। फिर उस सूची में यदि हम नीचे की ओर उत्तरोत्तर व्याप्त वर्गो की ओर बढें तो अन्त में एक ऐसे वर्ग पर पहुँचेंगे, जो सबसे कम व्यापकता रखता है। इसके अन्तर्गत कोई अन्य वर्ग नहीं आता। इसे अपरतम सामान्य (Infima species) कहते हैं। इन दोनो के मध्यवर्तीसामान्य व्यापक-व्याप्त सामान्य (Subaltern) कहलाते है। व्यापक-सामान्य के सब व्याप्त-सामान्य आपस में समकक्ष माने जाते और व्यापक-सामान्य अपने व्याप्त-सामान्यो की कक्षा के परे माना जाता है और व्याप्त-सामान्य गौण माने जाते हैं। आपस मे जो व्यापक और व्याप्त सामान्य सबसे निकट होते हैं, वे सन्निकट व्यापक और व्याप्य सामान्य कहलाते हैं। जैसे—मनुष्य, घोड़ा, बन्दर आदि स्तनपेयी व्यापक के सन्निकट व्याप्त

परतम सामान्य सबसे अधिक व्यापक वर्ग है, वह किसी वर्ग के अन्तर्गत नहीं आता।

है। परतम व्यापक से अपरतम व्याप्त तक व्यापक और व्याप्त की सूची को पारफिरी ने एक तालिका द्वारा बहुत अच्छी तरह दिखलाया था। वह तालिका नीचे दी जाती है।

इस सूची मे जिसे प्रेडिकामेंटल लाइन (Predicamental line) कहते है, द्रव्य तो परम जाति अथवा परतम व्यापक है और मनुष्य गौणतम उपजाति अथवा अपरतम व्याप्य है, क्योकि द्रव्य किसी अन्य वर्ग के अन्तर्गत नही जा सकता और न कोई वर्ग मनुष्य के अन्तर्गत आ सकता है। द्रव्य और मनुष्य के मध्य के सारे वर्ग व्यापक-व्याप्त सामान्य है, अर्थात् पिंड, प्राणी, चेतनप्राणी आदि व्यापक-व्याप्त सामान्य हैं।

४. वर्ग और प्राकृतिक वर्ग (Classes and Natural kinds)

वर्ग दो प्रकार के होते है एक मनुष्य के बनाये हुए दूसरे प्रकृति के।

मिल साहब कहते है कि हममे वर्गो के बनाने की क्षमता असीम है, जब हम कोई ऐसा नाम गढ लेते है जिसमें गुणबोधन की क्षमता रहती है, तब हम एक वर्ग बना डालते है। ऐसे वर्ग जैसे सफेदी आदि मनुष्य के बनाये हुये होते हैं। किन्तु ऐसे भी वर्ग है, जिन्हे प्रकृति स्वयं बना देती है। मनुष्य, घोडा, सोना, गंधक आदि ऐसे ही वर्ग है। इन प्राकृतिक वर्गो

की विशेषता यह होती है, कि इनके व्यक्ति एक-दो बातो मे नही बल्कि अनगिनत बातो मे साम्य रखते हैं। एक मनुष्य मे और दूसरे मनुष्य मे जिन गुणो के साम्य पाये जाते हैं, वे गिने नही जा सकते। इसी प्रकार सोने के दो टुकडो मे भी अनगिनत ऐसे गुण पाये जाते है, जो साम्य रखते हैं।

प्राकृतिक वर्गों में अपरिमित साम्य रहता है।

दूसरी विशेषता यह है कि दो प्राकृतिक वर्गो के व्यक्तियों मे भिन्नता भी अपरिमित रहती है। मनुष्य कुत्ते से अनगिनत बातो में भिन्न है। इसके विपरीत अप्राकृतिक वर्गो के व्यक्तियो में कुछ इने-गिने गुणो में ही साम्य पाया जा सकता है। "सफेदी" वर्ग का आधार केवल एक गुण है और वे सब व्यक्ति जो इस वर्ग को बनाते हैं केवल इसी एक गुण में साम्य रखते हैं।

प्राकृतिक वर्गों में भिन्नता भी अपरिमित रहती है।

अप्राकृतिक वर्गों के व्यक्तियों में साम्य सीमित रहता है।

५. मूलजाति, उपजाति और प्राकृतिक वर्ग
(Genus, Species & Natural kinds)

कुछ पाश्चात्य नैयायिको के अनुसार केवल प्राकृतिक वर्ग ही जाति, उपजाति हो सकते हैं। उनका कहना है कि अप्राकृतिक वर्गो के लिये व्यापक और व्याप्त पद का प्रयोग नही होना चाहिये। वे कहते है, कि मनुष्य पद सबसे सकीर्ण वर्ग है, इसलिये केवल व्याप्त हो सकता है। वह किसी अन्य वर्ग का व्यापक सामान्य नही हो सकता। परन्तु आमतौर पर अप्राकृतिक और प्राकृतिक वर्ग मे कोई पृथकता नही मानी जाती। यदि कोई वर्ग विस्तृत व्याप्ति रखता है तो वह किसी अन्य सकीर्ण व्याप्ति वाले वर्ग का व्यापक सामान्य बन सकता हैं। मनुष्य वर्ग ऐसे वर्गो मे विभाजित किया जा सकता है, जैसे—हिन्दू, मुसलमान या काला, गोरा इत्यादि। ये वर्ग अप्राकृतिक है, क्योकि इनमें से प्रत्येक के व्यक्ति एक से अधिक गुण में साम्य नही रखते। हिन्दू वर्ग का व्यक्ति हिन्दू केवल इसीलिये कहा जाता है कि वह हिन्दू धर्म को मानता है, और मुसलमान वर्ग का व्यक्ति मुसलमान केवल इसीलिये कहा जाता है कि वह

इस्लाम धर्म को मानता है। काले, गोरे वर्ण के व्यक्ति भी केवल एक ही गुण अर्थात् रंग विशेष मे साम्य रखते है। इसलिये इनमे से कोई वर्ग प्राकृतिक नही माना जा सकता। फिर भी ये वर्ग, अर्थात् हिन्दू, मुसलमान, काले, गोरे वर्ग प्राय. व्याप्त या सामान्य या उपजाति (Species) माने जाते है, और व्यापक सामान्य या मूलजाति (Genus) मनुष्य के अन्तर्गत रखे जाते है।

कुछ लोग यह आपत्ति कर सकते है कि ऐसे भी जन समुदाय है, जैसे मगोलियन काकेशियन, अफ्रीकन आदि जिनकी विभिन्नता कृतिम नही होती। उनका वर्गीकरण प्राकृतिक वर्गों मे क्यो न किया जाय? उत्तर मे कहा जा सकता है कि उनकी विभिन्नता एक तो परिमित होती है, यानी शारीरिक गठन या रंग की होती है, दूसरे उन विभिन्नताओ का कारण भी बतलाया जा सकता है। यह कारण उनका वातावरण या जलवायु है, इस सम्बन्ध मे जो बात विचारणीय है, वह यह है कि ऊपर दी हुई परिभाषा के अनुसार प्राकृतिक वर्ग व्यापक-व्याप्त (Subaltern) हो सकते हैं, अथवा नही। यदि प्राकृतिक वर्ग व्यापक सामान्य (Genus) हैं तो यह अपने अन्तर्गत अन्य वर्ग को अवश्य रखता है। फिर यदि कोई प्राकृतिक वर्ग व्याप्त सामान्य (Species) है तो वह किसी व्यापक सामान्य के अन्तर्गत अवश्य रहेगा। किन्तु यदि प्राकृतिक वर्ग का पृथक-करण केवल भिन्नताओ से ही किया जाय तो उनका सम्बन्ध कैसे निश्चित किया जायगा। जब तक अपरिहार्य गुणो के द्वारा पदो मे सम्बन्ध निश्चित नही किया जा सकता तब तक वे व्यापक-व्याप्त सामान्य कैसे बन सकते है।

६. विशेषधर्म या व्यावर्त्तकधर्म (Differentia)

विशेषधर्म या व्यावर्त्तकधर्म (Differentia) एक उपजाति को अन्य उप-जातियो से पृथक करता है।

व्यावर्तकधर्म या विशेषधर्म वह धर्म है, जो एक ही जाति के अन्तर्गत आनेवाली उपजातियो मे से एक उपजाति को अन्य उपजातियो से पृथक करता है। 'मनुष्य' मे एक विशेष धर्म है। इसी धर्म के कारण वह घोडा, गाय, कुत्ता आदि पशु वर्ग से पृथक किया जाता है। वह धर्म है विचार-सम्पन्नता अथवा विवेकशीलता (Rationalty) मनुष्य में विचार-शक्ति एक ऐसी शक्ति है, जो अन्य प्राणियों में नही पाई

tion) के अन्तर्गत नही आता, किन्तु गुण व्याप्ति से ही अनुमान के रूप मे प्राप्त होता है। वह या तो कारण का फल या निगमन समर्थक वाक्य (Premise) का निष्कर्ष होता है। मूलभूतगुण (Property) गोकि गुण-व्याप्ति-बोधन का अश नही होता, फिर भी वह उन गुणो से सम्बन्ध अवश्य रखता है, जो गुण व्याप्ति-बोधन के अंश है। जैसे—"मनुष्य बोल सकता है।" "मनुष्य व्याकरण सीख सकता है" में विधेयो द्वारा मनुष्य के दो गुण प्रगट होते है। ये दोनो गुण विचार-शक्ति सम्पन्नता से सम्बन्धित है। वास्तव में बोलने और सीखने की क्षमता विचार-शक्ति सम्पन्नता का फल है। मनुष्य इसी कारण से बोल सकता है या व्याकरण सीख सकता है कि वह विचार शक्ति से सम्पन्न है। यदि कहा जाय कि मनुष्य सो सकता है, तो इस वाक्य से मनुष्य का एक और गुण प्रगट होता है कि वह "सो सकता है"। यह गुण जातीयगुण चेतनप्राणित्व का परिणामस्वरूप प्राप्त होता है। मनुष्य सो रहे है, क्योकि विचार-शक्ति सम्पन्न होते हुए भी वे चेतन प्राणी है।

त्रिभुज मे तीन भुजाये होती है। इसलिये त्रिभुज का गुण-व्याप्ति-बोधन है "वह आकृति जिसमे तीन भुजाये हो।" परन्तु जब हम कहते है कि "त्रिभुज के तीनो कोण मिलकर दो समकोण के बराबर होते है।" तब हम उसका केवल एक मूलभूतगुण बतलाते है। यह मूलभूतगुण हमे निष्कर्ष रूप मे त्रिभुज के गुण-बोधन से यानी "त्रिभुज की तीन सीधी रेखाओ से घिरे होने के कारण" से प्राप्त होता है।

अस्तु, इसमे सन्देह नही रहा कि मूलभूतगुण दो प्रकार के होते है—एक मूलजातीय और दूसरा उपजातीय। जब वह मूलजातीय गुण का अनुगमन करता है, तब मूलजातीय और जब उपजातीय गुण का अनुगमन करता है, तब उपजातीय होता है। मनुष्य मे सोने का गुण मूलजातीय है, क्योकि यह गुण उसके मूलजातीय गुण का परिणाम है और भाषण देने या व्याकरण सीखने का गुण उपजातीय है, क्योकि यह उसके विशेषधर्म (Differentia) का परिणाम है। मूलजातीय गुण मूल जाति की

मूलभूत गुण (Proprium) दो प्रकार के होते है—१—जातीय और २—उपजातीय।

विशेषता होता है और उस जाति के अन्तर्गत जितनी उपजातियाँ होती है सबमे पाया जाता है। उपजातीय गुण केवल उपजाति की विशेषता होता है और केवल उसी उपजाति मे पाया जाता है। सोने का गुण जिस प्रकार मनुष्य में पाया जाता है, उसी प्रकार अन्य जन्तुओ मे भी पाया जाता है, पर भाषण देने या व्याकरण सीखने का गुण केवल मनुष्यो मे ही पाया जाता है।

८. औपाधिक गुण (Accidens)

औपाधिकगुण वह गुण है, जो गुण-व्याप्तिबोधन (Connotation) का न तो अश ही होता है, न उसके किसी अंग का परिणाम ही होता है। किसी व्यक्ति या वर्ग का रग ऐसा ही औपाधिक गुण माना जाता है। यह कहा जाता है कि रग अपरिहार्य गुण नही है। अथवा जब कोई व्यक्ति नयी पोशाक पहनता है, तब उसका वेश पहले से परिवर्त्तित हो जाता है। उसमें एक नया गुण आ जाता है। परन्तु यह गुण स्थायी नहीं होता। ज्योही वह अपनी पोशाक उतारता है, उसका नया वेश भी जाता रहता है। इसलिये पोशाक पहनने से जो नया गुण व्यक्ति में आता है, वह औपाधिक है। यह गुण स्थायी नही है, इसलिये अपरिहार्य नही हो सकता। अपरिहार्य गुण तो वे गुण हैं, जो व्यक्ति या वर्ग मे सदैव विद्यमान रहते है।

औपाधिक गुण वह गुण है, जो किसी व्यक्ति या वर्ग के लिये अपरिहार्य नहीं है।

कुछ विद्वानों के अनुसार औपाधिक गुण दो प्रकार के होते है—वियोज्य (Separable) और अवियोज्य (Inseparable)। किसी वर्ग का अवियोज्य औपाधिक गुण वह गुण कहलाता है, जो वर्ग के सभी व्यक्तियो मे पाया जाता है। इसके विपरीत वियोज्य औपाधिक गुण वह है, जो वर्ग के कुछ ही व्यक्तियो में पाया जाता है। जैसे, कौओ मे काला रग तो अवियोज्य गुण माना जायगा, क्योकि सभी कौए काले होते है, परन्तु हबशियो में काला रग मनुष्य का वियोज्य गुण माना जायगा क्योकि सभी मनुष्य काले नही होते।

यदि कोई मनुष्य भारत में जन्म लेता है, तो वह भारतीय कहा जाता है।

यह एक औपाधिक गुण है। यह गुण उस व्यक्ति मे सदैव विद्यमान रहता है. वह भारतीय से अभारतीय नही होता। इसलिये यह अवियोज्य औपाधिक गुण है। इसके प्रतिकूल घर मे वह व्यक्ति अपनी वेश-भूषा कुछ और रखता है। धोती और कुर्त्ता पहने रहता है। आफिस जाते समय सूट पहन लेता है। उसके भिन्न-भिन्न वेश वियोज्य औपाधिक गुण हैं, क्योकि ये सदैव उसमें विद्यमान नहीं रहते।

९. वियोज्य (Separable) और अवियोज्य (Inseparable) औपाधिक गुणो (Accidens) के वर्गीकरण का आधार-

अब यह देखना है कि विद्वानो ने वियोज्य और अवियोज्य औपाधिक गुण के वर्गीकरण का जो आधार माना है, वह वास्तविक है या भ्रामक है। ऊपर कहा गया है कि जो गुण वर्ग के लिये अपरिहार्य नही है, वह औपाधिक गुण है। फिर औपाधिक गुण के दो भेद किये गये है, वियोज्य और अवियोज्य। वियोज्य औपाधिक के सम्बन्ध में कहा गया है कि वियोज्यऔपाधिक गुण वह गुण है, जो वर्ग के कुछ व्यक्ति में पाया जाता है। यह परिभाषा कोई अर्थ नही रखती। क्योकि यह तो दोनो औपाधिक गुण की परिभाषा है। इसलिये जहाँ तक वर्ग का सम्बन्ध है, वियोज्य औपाधिक की परिभाषा भ्रामक है, परन्तु व्यक्ति के सम्बन्ध में वह अवश्य वास्तविक है। यदि कहें कि योरोपियन में गोरापन वियोज्य औपाधिक है, क्योकि यह मनुष्य वर्ग के कुछ ही व्यक्ति में पाया जाता है तो यह कथन भ्रामक होगा। योरोपियन में गोरापन अपरिहार्य रूप से पाया जाता है। जो गुण वर्ग के कुछ व्यक्ति में सदा विद्यमान रहता है वह औपाधिक गुण है, फिर उसे वियोज्य औपाधिक कहने का क्या अर्थ हो सकता है। व्यक्ति के सम्बन्ध में कुछ गुण अवश्य अस्थायी परिस्थितियो पर निर्भर रहते है। परिस्थिति के अनुसार कभी रहते है, कभी नही। इसलिये उन गुणो को अवश्य वियोज्य औपाधिक गुण कह सकते है।

अब अवियोज्य औपाधिक के सम्बन्ध मे विचार कर लिया जाय। जब कोई गुण किसी वर्ग के लिये अपरिहार्य न हो, परन्तु उसके सभी व्यक्तियो में पाया

जाय या किसी व्यक्ति में सदैव विद्यमान रहे तो वह गुण अवियोज्य औपाधिक माना जाता है। इस सम्बन्ध में दो वातो पर विचार करना है, पहली वात तो यह है कि कोई गुण, वर्ग या व्यक्ति में मूलभूत है या नही, इसका पता कैसे चलता है? इस सम्बन्ध में कुछ लोग कह सकते है कि हम औपाधिक गुण में और वर्ग अथवा व्यक्ति या जिसका वह औपाधिक गुण होता है, मूलभूत कोई सम्बन्ध नही देखते। हम जानते है, कि सब कौए काले होते है। फिर भी लोग कह सकते है कि हम कौए और काले रग में कोई आवश्यक सम्बन्ध नही पाते। किन्तु इस उक्ति में कोई तत्व नही है। अज्ञान को यदि आधार वनाया जाय तो हम किसी परिणाम पर नही पहुँच सकते। यदि हम उनमें कोई सम्बन्ध न देख सकें तो इसका यह मतलव नही हो सकता कि उनमें कोई सम्बन्ध है ही नही। हमारी क्षमता या अक्षमता के कारण गुण के अस्तित्व में कोई अन्तर नही आ सकता।

दूसरी वात यह है कि यह हम कैसे जाने कि कोई गुण वर्ग या व्यक्ति में मूलभूत है या नही? जो गुण मूलभूत होता है, वह वर्ग या व्यक्ति में सदैव विद्यमान रहता है। जव कहा जाता है कि अमुक गुण अमुक वर्ग में सदा पाया जाता है, तब इसका यह अर्थ होता है कि वह गुण उस वर्ग के सभी व्यक्तियो मे पाया जाता है। इसलिये जो गुण वर्ग के सभी व्यक्तियों में पाया जाय, उसे मूलभूतगुण (Property) मानना चाहिये और जव कोई गुण व्यक्ति में सदैव पाया जाय, तव भी हम उस गुण को उस व्यक्ति मे मूलभूत मानेंगे। गोरा होना मनुष्य का औपाधिकगुण (Accidens) है। क्योकि मनुष्य वर्ग के सभी व्यक्ति गोरे नही होते। किन्तु योरोपियन वर्ग के लिए गोरा होना मूलभूत गुण (Property) है। गोरापन उनमें स्थान, जलवायु और वातावरण के कारण पाया जाता है। इसलिये गोरेपन को योरोपियन मे औपाधिक गुण न मानकर मूलभूत गुण माना जाता है। एक दूसरे उदाहरण से इसे और स्पष्ट किया जा सकता है। दूध मे सफेदी औपाधिक गुण नही हो सकती। दूध जबतक दूध रहेगा तब तक सफेद रहेगा। अगर सफेदी न रही तो फिर दूध भी दूध नही रह जायगा। सफेदी के सिवा दूध के सम्बन्ध में

किसी अन्य रग का प्रश्न ही नही उठता। दूध मे सफेदी सदैव और सब दशा मे पाई जाती है। इसलिये इसमे कोई सन्देह नही रह जाता कि यह रग दूध मे मूलभूत गुण है।

परन्तु कभी-कभी औपाधिक गुण और मूलभूत गुण मे अन्तर बताना कठिन हो जाता है। यदि किसी व्यक्ति का रंग अवियोज्य है, तो वह औपाधिक कैसे हो सकता है। किसी विशेष कारणो से मनुष्य काला, गोरा या पीला होता है। वे कारण वश-परम्परा, जलवायु और वातावरण हो सकते है। मनुष्य जब शरीर धारण करता है, तो उसमे किसी न किसी रग का होना अनिवार्य है। इसलिये अवियोज्य औपाधिक की धारणा भ्रामक है। परन्तु औपाधिक की धारणा वास्तविक है, क्योकि मूलभूत गुण (Proprium) और औपाधिक गुण (Accidens) मे अन्तर बतलाया जा सकता।

अध्याय ६ का सारांश

अभिधेय (Predicables)

वे सामान्य नाम (General names) जो वाक्य मे किसी उद्देश्य का विधेय होते है, अभिधेय कहलाते है। ये पॉच प्रकार के होते है। इनके नाम है। मूल जाति (Genus), उपजाति (Species), व्यावर्त्तक (Differentia), मूलभूत गुण (Property) और औपाधिक गुण (Accidens)।

मूलजाति (Genus) एक सामान्य पद है। इसका नाम-व्याप्ति-बोधन विस्तृत होता है। उपजाति (Species) का नाम-व्याप्ति-बोधन सकीर्ण होता है। एक पद कुछ अन्य पदो का मूलजाति (Genus) होता है और वे पद उसके उपजाति (Species) कहलाते है। साधारणत. मूलजाति (Genus) पद का व्यवहार एक वर्ग के लिये किया जाता है, जो अन्य वर्गो को अपने अन्तर्गत रखता है। ये वर्ग उसके उपजाति (Species) कहलाते है। जैसे "चेतन" प्राणी पद है। यह एक मूलजाति (Genus) है। मनुष्य, घोड़ा, कुत्ता इत्यादि इसके उपजाति है, क्योकि ये सभी चेतन प्राणी वर्ग के अन्तर्गत आते है।

वर्ग दो प्रकार के होते हैं। एक वे जिन्हे मनुष्य बनाता है, दूसरे वे जो अपने आप बने हुए होते है और जिन्हें मनुष्य नही बनाता। इनको प्राकृतिक वर्ग (Natural kinds) कहते है, क्योकि ये प्रकृति मे पहले से ही विद्यमान रहते है।

व्यावर्तक (Differentia) वह धर्म है, या वह धर्म समुदाय है, जो एक उपजाति (Species) को अन्य उपजातियो (Species) से पृथक करता है। जैसे, विवेकशीलता (Rationality) का धर्म मनुष्य उपजाति को चेतन प्राणी मूलजाति के अन्तर्गत जितनी जातियाँ है, उन सबो से पृथक करता है।

मूलभूतगुण (Property) ऐसा धर्म होता है, जो गुण-व्याप्ति-बोधन का अश नही होता, पर उसी से उपलब्ध होता है। जैसे, बोलने की क्षमता। यह एक मूलभूत धर्म है। यह मनुष्य पद के गुण-व्याप्ति-बोधन (Connotation) का अंश नही है, पर चेतनप्राणित्व, और विवेकशीलता जो मनुष्य के गुणबोधन है, उन्ही से उपलब्ध होता है।

मूलभूत गुण दो प्रकार के होते है—(१) मूलजातीय (Generic) और (२) उपजातीय (Specific), जो मूलभूतधर्म मूलजातीय गुणोसे उपलब्ध होता है, वह मूलजातीय, (Generic) और जो उपजातीय गुणो से उपलब्ध होता है, वह उपजातीय (Specific) कहलाता है। जैसे, सोने की क्षमता। यह मूलजातीयधर्म प्राणित्व से प्राप्त होती है, इसलिये मूलजातीय है। परन्तु बोलने की क्षमता उपजातीय है, क्योकि यह उपजातीय धर्म विवेकशीलता से उपलब्ध होती है।

औपाधिक धर्म (Accidens) वह धर्म है, जो न तो गुण-व्याप्ति बोधन (Connotation) का अश ही होता है, न उससे उपलब्ध ही होता है। औपाधिक धर्म किसी वर्ग या व्यक्ति मे अपरिहार्य नही होता। औपाधिक धर्म दो प्रकार के होते है। वियोज्य (Separable) और अवियोज्य (Inseparable)। किसी वर्ग का अवियोज्य औपाधिक धर्म वह धर्म है, जो कि उस वर्ग के सभी व्यक्तियो मे विद्यमान रहता है। जैसे, कौओं का

काला होना। इसके प्रतिकूल किसी वर्ग का वियोज्य औपाधिक धर्म वह धर्म है, जो वर्ग के कुछ व्यक्तियो मे तो रहता है, और कुछ में नही रहता। जैसे मनुष्यो का काला होना। हबशी काले होते है, पर सब मनुष्य नही। व्यक्ति का अवियोज्य औपाधिक धर्म वह धर्म है, जो व्यक्ति मे सदैव विद्यमान रहता है। जैसे, बंगाल के निवासी का बंगाली होना। किन्तु किसी व्यक्ति की पोशाक उसका अवियोज्य औपाधिक धर्म नही है, क्योकि वह उसे अकसर बदलता रहता है।

अध्याय ६ : अनुशीलन

(१) अभिधेयो (Predicables) की व्याख्या करो।

(२) अभिधेय कितने है? क्या उनमे और सामान्य नामो (General names) मे कोई सम्बन्ध है?

(३) मूलजाति (Genus) और उपजाति (Species) की व्याख्या करो। कौन से वर्ग प्राकृतिक वर्ग (Natural kinds) कहे जाते है?

(४) निम्नाकित पर टिप्पणी लिखो—
(अ) सबसे बडी मूलजाति (Summum genus), (ब) सबसे छोटी उपजाति (Infima Species), (स) व्यापक-व्याप्त (Subalterns), (द) क्रम में वृहद् (Super ordinates)।

(५) जाति मूलक शाखा (Predicamental Line) क्या है? पारफिरी (Porphyry) के वृक्ष की व्याख्या करो।

(६) व्यावर्तक धर्म (Differentia), मूलभूत धर्म (Proprium) और औपाधिक धर्म (Accidens) में अन्तर बताओ।

(७) भिन्न-भिन्न प्रकार के मूलभूत धर्मों और औपाधिक धर्मों की व्याख्या करो।

—:०:—

अध्याय ७

लक्षण या परिभाषा (Definition)

१. लक्षण या परिभाषा का अर्थ

लक्षण या परिभाषा वह वाक्य है, जो शब्द का अर्थ बतलाता है।

लक्षण या परिभाषा का नाम से घनिष्ठ सम्बन्ध है। हम पहले देख चुके हैं कि नाम सार्थक होता है, क्योकि वह भाषा का एक तत्त्व है। उसकी सार्थकता दो कामो से व्यक्त होती है। एक तो वह उद्देश्य का नाम-व्याप्ति-बोधन (Denotation) बताता है, दूसरे उद्देश्य में निहित मूलभूत गुण का भी बोध कराता है। 'नाम' का उपयोग हम तभी कर सकते है, जब इसका ठीक अर्थ निश्चित कर लें। लक्षण या परिभाषा से यही निश्चित किया जाता है। इसलिये सर्वप्रथम लक्षण या परिभाषा की जाँच कर लेनी चाहिये। मिल साहब कहते है, कि "यदि सरल से सरल शब्दो में बतलाना चाहें, कि लक्षण या परिभाषा क्या है तो यह कह सकते हैं कि लक्षण या परिभाषा वह वाक्य है जिससे शब्द का अर्थ भली-भाति व्यक्त हो जाय। उस अर्थ का आधार सर्वमान्य हो सकता है या उसका आधार लेखक या वक्ता का उद्देश्य हो सकता है। दूसरी स्थिति मे शब्द नया अर्थ भी ग्रहण कर लेता है।"[1] सामान्य स्थिति में शब्द का अर्थ निर्दिष्ट रहता है। परन्तु नई भावनाओ को व्यक्त करने के लिये नये शब्द भी गढे जाते है। इन नये शब्दो के गढ़ने वाले उनमें नये अर्थ भी नियोजित करते है। यहाँ पर यह बतलाने की आवश्यकता नही है कि किस प्रकार शब्द गढे जाते है और किस प्रकार वे नये अर्थ प्राप्त करते है। बस इतना जान लेना काफी है कि शब्द जब व्यवहार में आ जाते है, तब कुछ अर्थ देते है।

---

1. A System of Logic, Page 86.

किसी पद का लक्षण बतलाने का तात्पर्य है उसका अर्थ बतलाना। लक्षण पद का अर्थ बतलाता है। इसलिये यह ऐसा वाक्य है जिससे पद का अर्थ भली-भाति व्यक्त हो जाता है।

२. लक्षण क्या मूलजाति और व्यावर्त्तक धर्म (Differentia) से ही सम्बन्ध रखता ह।

कुछ नैयायिको के अनुसार लक्षण सदैव मूल जाति से सम्बन्ध रखता है, क्योकि वह पद के व्यापक सामान्य (मूलजाति) और व्यावर्त्तक धर्म (Definition per Genus et Differentiam) का निर्देश करता है। इसके अनुसार मनुष्य का लक्षण ठहरता है, "मनुष्य विचारवान जीव है" इससे पद का गुणबोधन हो जाता है, क्योकि इसमे जातीय गुण जीव धारण करना और उपजातीय गुण विचारवान होना, दोनो नियोजित है। विचारशीलता मनुष्य उपजाति का व्यावर्त्तक धर्म है, जो मनुष्य को जीवधारी मूलजाति के अन्तर्गत जितनी अन्य उपजातियाँ है, उनसे अलग रखता है और जीव धारण करना मूल जातीय गुण है, जो जाति के अन्तर्गत जितनी उपजातियाँ उन सब मे विद्यमान हैं। अस्तु, मनुष्य पद का लक्षण यदि जीवधारण करना और विचारवान होना है तो वह अवश्य मूलजाति और व्यावर्त्तक धर्म से ही सम्बन्ध रखता है।

टिप्पणी

यह मत मान्य नही हो सकता कि लक्षण सदैव जाति और व्यावर्त्तक धर्म से ही सम्बन्ध रखता है। यदि इसे मान लिया जाय तो केवल उन्ही पदो का लक्षण बतलाया जा सकता है, जो उपजाति के नाम है। अन्य पदो का लक्षण नही बतलाया जा सकता। परन्तु यह अनवस्था होगी। सभी नैयायिक इस विषय मे एकमत है कि लक्षण या परिभाषा पद के अर्थ के निर्देश को कहते है। उपजाति के नाम के अतिरिक्त अन्य पद भी अर्थशून्य नही कहे जा सकते। जैसे 'सुकरात का पिता' नाम का एक पद है। इससे केवल एक व्यक्ति का बोध होता है, फिर भी यह पद

यदि कोई पद अर्थ रखता है तो उसकी परिभाषा भी होती है। चाहे वह पद उपजाति हो या नहीं।

निरर्थक नही है। इसका लक्षण दिया जा सकता है। हम पहले देख चुके हैं, कि व्यक्तिवाचक पद भी गुणबोधक होते है। इसलिये व्यक्तिवाचक पदो का अर्थ भी बतलाया जा सकता है, किन्तु यदि हम ऊपर कहे हुये नियम को मान लेते है, तो ऐसे पदो की परिभाषा नही कर सकते। अस्तु, ऊपर दी हुई परिभाषा मान्य नही हो सकती।

३ लक्षण के नियम

अरस्तू के अनुसार लक्षण के नियम दो प्रकार के है। एक प्रकार के नियमों मे यह जाँचा जा सकता है, कि लक्षण ठीक है या नही और दूसरे प्रकार के नियमो से यह जाँचा जा सकता है, कि लक्षण पूरा हुआ या अधूरा रह गया। किन्तु नियमो का इस प्रकार का वर्गीकरण युक्ति-युक्त नही कहा जा सकता। जो लक्षण ठीक नही है, वह लक्षण ही नहीं माना जायगा। इसलिये लक्षण के नियमो से हम केवल यही जाँचते है, कि लक्षण पूर्ण हुआ या अधूरा ही रह गया। लक्षण पूरा तभी कहा जा सकता है, जब वह स्पष्ट हो, पर्याप्त हो, पुनरुक्ति दोष से रहित हो, और नकारात्मक न हो।

१ लक्षण स्पष्ट होना चाहिये

यदि हम इस नियम को भग करते है, तो बोध-अगम्यता का दोष आ जाता है। यह बोध अगम्यता लक्षण में चार प्रकार से आती है। (अ) यदि उसमे कठिन शब्दो का प्रयोग हो, (ब) यदि उसमें आवश्यकता से अधिक व्याप्ति हो, (स) यदि उसमे कोई रूपक हो, (द) यदि उसमे द्व्यर्थक शब्द हो तो इन दशाओ मे लक्षण बोध्यगम्य नही होता।

(अ) लक्षण का प्रयोजन अर्थ को स्पष्ट करना है और अर्थ तभी स्पष्ट हो सकता है, जब उसमे अज्ञात शब्द न हो। यदि अज्ञात शब्द आ गये, तो कथन को समझने के लिये पहले उन शब्दो का अर्थ समझना होगा। इसलिये वे कथन जिनको स्पष्ट करने की आवश्यकता हो लक्षण नही कहे जा सकते। इस प्रकार का लक्षण बोध-गम्य नही होता। डॉक्टर जॉनसन का "जाल" का लक्षण इस दोष का बहुत उत्कट उदाहरण है। "A net is a reticulated

(अ) बोध-अगम्यता

fabric, decussated at regular intervals." इस लक्षण के दो पद, Reticulated (जालियो मे विभक्त) और Decussated (परस्पर काटते हुये) बोधगम्य नही है। इस लक्षण से जाल के सम्बन्ध मे हमें कुछ नही ज्ञान होता। इसलिये ऐसा लक्षण लक्षण नही कहा जा सकता।

(ब) जब लक्षण आवश्यकता मे अधिक लम्बा होता है तब इसकी बडी आकृति ही लक्ष्य को अबोध बना देती है। 'दार्शनिक' का यदि यह लक्षण दिया जाय कि दार्शनिक वह है जो अपने ऊपर यह जांचने का भार लेता है कि विश्व मे वास्तविकता है या नही है और वह वास्तविकता और अवास्तविकता को जाँचने की कसौटी को ढूँढने का भी भार लेता है, तो यह एक बहुत ही उलझा हुआ कथन होगा। इससे दार्शनिक पद का अर्थ स्पष्ट नही होता। इसकी जगह यदि यह छोटा लक्षण दिया जाय कि दार्शनिक वह है, जो सत् और असत् की जांच करता है तो दार्शनिक पद का अर्थ स्पष्ट हो जायगा।

(स) लक्षण मे रूपक नही होना चाहिये। यदि रूपक हुआ, तो अर्थ समझने में गड़बडी हो जाती है। रूपक एक अलकार है। यह दूर के सादृश्य पर निर्भर रहता है, इसलिये इसके माध्यम से निश्चितता की प्रतीति नहीं हो सकती। "शेर जंगल का राजा है"। "पृथ्वी हम सब की धात्री है" आदि लक्षणो में यही दोष आ जाता है। राजा मनुष्य होता है। पशु का राजा होना, इस अर्थ में सम्भव नही हो सकता। इसी प्रकार धात्री स्त्री होती है। पृथ्वी का धात्री बनना ठीक अर्थ नही देता। अलकार से कथन में सौन्दर्य की प्रतीति होती है, निश्चितता की नही। परन्तु, लक्षण के लिये निश्चितता की आवश्यकता है न कि सौन्दर्य की। "अन्न मनुष्य का जीवन है", ऊँट मरुस्थल की नौका है", "ज्ञान आत्मा का दीपक है", "धन सब गुणो की खान है" आदि ऐसे ही उदाहरण है। इन वाक्यों में सौन्दर्य तो अवश्य है, पर निश्चितता नही। अस्तु, ये वाक्य लक्षण नही कहे जा सकते।

(द) लक्षण में द्वयर्थक या बहुअर्थक शब्दो का व्यवहार नही करना चाहिए। यदि कहा जाय कि तोता वह द्विज है जो मनुष्य की भाषा बोल सकता है, तो इस

कथन से "तोता" पद का लक्षण निश्चित नही होता। द्विज माने दो बार जन्म लेनेवाला। इसलिए पक्षी, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और दाँत द्विज कहलाते है।

कुछ लोग कहते है कि लक्षण बोधगम्य है या नहीं है, यह हमारे ज्ञान पर निर्भर रहता है। कोई लक्षण किसी को स्पष्ट हो सकता है तो अन्य किसी को नही। वह अधिकतर अज्ञता और विज्ञता पर निर्भर रहता है। जो विज्ञ के लिए स्पष्ट है, वह अज्ञ के लिए स्पष्ट नही हो सकता। कभी-कभी तो यह भी देखा जाता है कि जो अर्थ कभी स्पष्ट नही था, वह उसी व्यक्ति को एक दिन स्पष्ट हो जाता है। इसलिए लक्षण की बोधगम्यता हमारे ज्ञान पर निर्भर है।

यह एक कठिन प्रश्न है। इसका समाधान करते हुए अरस्तू ने कहा है कि जिस प्रकार पूर्ण रूप से उसी व्यक्ति को स्वस्थ कह सकते हैं जिसका शरीर नीरोग हो। उसी प्रकार से पूर्णरूप से वही अर्थ स्पष्ट है जो उस व्यक्ति की समझ मे आ जाय जिसका मस्तिष्क नीरोग है।* यह वह कसौटी है जिसके द्वारा हम जाँच सकते हैं कि कौन लक्षण स्पष्ट है और कौन नही।

२. लक्षण और लक्ष्य की समव्याप्ति होनी चाहिये

जिस लक्षण से लक्ष्य पद का ठीक-ठीक गुणबोधन हो जाय वह लक्षण पूर्ण माना जाता है। या यो कह सकते है कि जब लक्षण और लक्ष्य की व्याप्ति बराबर होती है तब लक्षण पूर्ण माना जाता है। उनकी व्याप्ति मे न कमी, न अधिकता होनी चाहिए। "मनुष्य विवेकवान जीवधारी है।" इस वाक्य से मनुष्य पद का लक्षण पूरा हो जाता है। मनुष्य पद से विवेकवान होना, शरीर धारण करना, और जीव धारण करना आदि गुणो का बोध होता है। इस लक्षण से इन सब गुणो का बोध हो जाता है। जब हम इस नियम को भंग करते है तब लक्षण मे अव्याप्ति (Narrow) या अतिव्याप्ति (Too wide) का दोष आ जाता है। यदि "मनुष्य विवेकवान जीवधारी है" कहने के स्थान मे हम कहे कि "मनुष्य जीवधारी है" तो इस परिभाषा से गुणबोधन पूरी तरह नही होगा। इस परिभाषा से विवेकशीलता का बोध नही होता। इसलिए गुणबोधन अधूरा

* Topica Book VII—42.

ही रह जाता है। मनुष्य और पशु मे कोई भेद नही रह जाता। लक्षण लक्ष्य के अतिरिक्त अन्य पदार्थों के लिए भी लागू हो जाता है, इसलिए इस परिभाषा मे अतिव्याप्ति का दोष आ जाता है। जिस परिभाषा में अतिव्याप्ति का दोष आ जाता है वह परिभाषा परिभाष्य पद का ठीक-ठीक अर्थ नहीं दे सकती। इसलिए उसको उस पद की परिभाषा नही कह सकते।

इसके विपरीत यदि हम "मनुष्य" पद की परिभाषा दे, कि "मनुष्य वह विवेकवान जीवधारी है जो व्याकरण सीखता है" तो उसमे अव्याप्ति का दोष आ जायगा क्योंकि सभी मनुष्य व्याकरण नही सीखते। मनुष्य की एक बहुत बडी सख्या इस परिभाषा से अलग रह जाती है। इसलिए यह परिभाषा अधूरी है। इसी प्रकार यदि हम किसी त्रिभुज की यह परिभाषा दे कि "त्रिभुज वह क्षेत्र है जिसकी तीनो भुजाए बराबर हो" तो इसमे अव्याप्ति का दोष आजायगा, क्योकि समत्रिबाहु के अतिरिक्त अन्य प्रकार के भी त्रिभुज होते है। इसलिए यह परिभाषा अधूरी है। यहाँ तक दो स्वीकारात्मक नियमो का वर्णन किया गया है, आगे दो नकारात्मक नियमो का वर्णन किया जायगा।

अव्याप्ति दोष

लक्षण और वर्णन (Definition & Description)

कभी-कभी हमें वस्तु का वर्णन भी करना पडता है। किन्तु वर्णन और लक्षण में जो भेद है वह बिल्कुल स्पष्ट है। जब हमारे कथन का तात्पर्य पद का समस्त गुणबोधन (Connotation) अर्थात् अर्थ होता है, तब हम उस पद का लक्षण देते है। किन्तु जब हम वस्तु का केवल औपाधिक गुण बतलाते है, तब हम उसका वर्णन करते है। जैसे, जब हम कह सकते है कि "मनुष्य विवेकशील प्राणी है" तब मनुष्य पद का लक्षण देते है। इसके प्रतिकूल जब हम कहते है कि "मनुष्य वह प्राणी है जो चल सकता है, सीधा खडा हो सकता है" तब हम मनुष्य का वर्णन करते है। हम किसी वस्तु का वर्णन तब करते है, जब उसे औरो से अलग करना

चाहते हैं अथवा पहचान बतालाना चाहते हैं, किन्तु हम किसी पद का लक्षण तब देते है जब उसका पूरा अर्थ बतलाना चाहते हैं।

३. लक्षण मे पुनरुक्ति दोष नही आना चाहिये

इस नियम के अनुसार लक्षण मे लक्ष्य पद अथवा उसका कोई पर्यायी विधेय नही होना चाहिये। उस वाक्य मे पुनरुक्ति दोष आता है जिसमे विधेय उद्देश्य ही का रूपान्तर होता है जैसे, घर एक मकान है। इसमे उद्येश्य के विषय मे कोई नई बात नही कही गई है केवल उद्देश्य 'घर' का पर्यायी 'मकान' विधेय बना दिया गया है। 'घर एक मकान है' या "घर एक घर है' कहने में कोई अतर नही है। यहा पर किसी विषय का निर्देश नही किया जाता केवल एक पद का दो बार प्रयोग करके वाक्य बना दिया जाता है। स्पष्ट है कि ऐसे लक्षण का कोई अर्थ नही हो सकता।

पर्यायी वे शब्द है, जो समानार्थक होते है। इसलिये एक पर्यायी के स्थान में दूसरा पर्यायी रक्खा जा सकता है। किन्तु किसी पद का लक्षण उसके पर्यायी के रख देने से नही हो सकता क्योकि पर्यायी से पद की व्याख्या नहीं हो सकती और बिना व्याख्या के अर्थ स्पष्ट नही हो सकता। व्याख्या करना और मान लेना भिन्न-भिन्न कार्य है। जब हम किसी पद का अर्थ पर्यायी के जरिये समझाना चाहते हैं, तब हम अर्थ को केवल मान लेते हैं। व्याख्या करके उसे नही प्राप्त करते। "जीवन प्राण है", "स्वाधीनता स्वतत्रता है" आदि वाक्यो में प्राण और स्वतत्रता से जीवन और स्वाधीनता की व्याख्या नही होती केवल जीवन के बदले प्राण और स्वाधीनता के बदले स्वतत्रता कहने से ज्ञान की वृद्धि नही हो सकती। इन वाक्यो में हम उसी पद के रूपान्तर से पद की व्याख्या करना चाहते हैं। ऐसी व्याख्या मे जहा तक ज्ञान का सम्बन्ध है हम आगे नही बढते, बल्कि घूम-फिरकर पुन उसी स्थान पर आ जाते है। इसलिये इस दोष को पुनरुक्ति दोष कहते है।

४. लक्षण नकारात्मक नही होना चाहिये

नकारात्मक या अभावात्मक पद वह पद है जिससे किसी वस्तु या गुण का

अभाव प्रगट हो। यदि हम किसी पद का लक्षण नकारात्मक या अभावात्मक पद से वताना चाहेगे तो लक्षण भी नकारात्मक या अभावात्मक हो जायगा। परन्तु यह दोष है। यदि हम कहे--"गुण अवगुण नही है", "जीव मशीन नही है" "रेलगाडी वस नही है", तो हम नकारात्मक लक्षण देते है। गुण क्या है इसे न वताकर हम केवल यह वताते है, कि वह क्या नही हे। इससे पद का अर्थ निश्चित नही होता। अस्तु, इसे पद का लक्षण नही कह सकते। इसी प्रकार 'जीव मशीन नही है' कह देने से न तो जीव का लक्षण होता है न "रेलगाडी वस नही है" कह देने से रेल का। किन्तु नकारात्मक पदो को नकारात्मक लक्षण दे सकते है। जैसे--"अनुपस्थिति उपस्थिति नही है" "अँधेरा उँजाला नही है"। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी अवसर विशेष आते है, जब नकारात्मक लक्षण भी प्रयोजनीय होता है फिर भी यह नही कह सकते कि ऐसा लक्षण यथार्थ लक्षण है। कभी-कभी हमे ऐसे पद मिलते है जिनका बोध ज्ञान हम नही कर पाते। ऐसे पदो का अर्थ हम नकारात्मक पदो की सहायता से समझने की चेष्टा करते है जैसे "सत् असत् नही है"। "नित्य अनित्य नही है" ऐसे पद सर्वव्यापी होते है। इसलिये ऐसे पदो को हम नेति की रीति से ही समझ सकते है।

यदि हम इस नियम को भंग करते है तो हम नकारात्मक लक्षण का दोष लाते है।

५. लक्षण के भेद

भिन्न-भिन्न तर्क-वेत्ताओ ने भिन्न-भिन्न प्रकार के भेद वतलाये है। यहाँ उन सव पर सामूहिक रूप से विचार किया जायगा।

I नामात्मक (Nominal) तथ्यात्मक (Real)

कुछ विद्वानो का मत है कि लक्षण पदार्थ का दिया जाता है, कुछ अन्य लोगो का मत है कि लक्षण नाम का दिया जाता है। अव देखना है कि कौन यथार्थ है। शब्द के अर्थ के कारण लक्षण का प्रश्न उठता है। हम पदार्थ के सम्बन्ध मे अपने भाव और विश्वास प्रगट करते है और भाषा के माध्यम से हम आपस म इनसे अवगत होते है। इसलिये भाषा के तत्वो यानी शब्दो और वाक्यो का

अर्थ निर्दिष्ट रहता है। यदि प्रत्येक अवसर पर और प्रत्येक मनुष्य के अनुसार इनके अर्थ बदलते जायँ तो हम आपस मे विचार विनिमय नही कर सकते। इसलिये आवश्यकता यह है कि पद का लक्षण दिया जाय जिससे उसका अर्थ निश्चित और नियत हो जाय। इसलिये जब हम लक्षण देते हैं तो पद का न कि वस्तु का। मिल साहब कहते हैं कि लक्षण केवल नाम का ही दिया जाता है।*

पदार्थ की परिभाषा नहीं की जाती।

मिल (Mill) का मत ठीक है। परन्तु नामात्मक लक्षण से लोग अन्य प्रकार के अर्थ भी ग्रहण करते हैं। इसलिये यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिये कि मिल (Mill) का नामात्मक लक्षण नाम अथवा पद का अर्थ स्पष्ट करता है। वह (१) वस्तु से, (२) शब्द से और (३) शब्द के इतिहास से कोई वास्ता नही रखता है।

(१) कुछ लोग कहते है कि ऐसे भी नाम है जो वस्तु से कोई सम्बन्ध नही रखते, जैसे सेन्टार (Centaur) यह पद एक ऐसे जन्तु का नाम है, जो आधा मनुष्य है आधा घोडा। पर वास्तव में ऐसा कोई जन्तु है नही। इसलिये ऐसा कहा जाता है कि ऐसे पद जैसे सेन्टार आदि का लक्षण नामात्मक लक्षण कहलाना चाहिये। परन्तु जैसा कि ऊपर बताया गया है, लक्षण केवल नाम का दिया जाता है। उस समय यह नही सोचा जाता कि जिस नाम का हम लक्षण दे रहे है, वह वस्तु जगत मे यथार्थ है या केवल कल्पित है। नाम तो केवल इसीलिये सार्थक समझा जाता है, कि उससे गुण का बोध होता है। इस बात की परवाह नही की जाती कि गुणी यथार्थ मे है या कल्पित है। इसीलिये सेन्टार (Centaur) नाम सार्थक है गोकि वस्तु जगत मे ऐसा कोई जीव नही मिलता। अस्तु लक्षण के लिये यदि नाम को हम यथार्थ और कल्पित वस्तुओ के नाम मे बाटते है, तो उससे कोई प्रयोजन सिद्ध नही होता।

---

* "All definitions are of names and of names *only*". A System of Logic, P 93

इसके अतिरिक्त नाम और वस्तु में कोई वास्तविक अन्तर नही होता। जब हम नाम पर विचार करते है, तो उसके साथ उस नाम से जो वस्तु सूचित है, उस पर भी विचार करते है। जब हम सेन्टार (Centaur) जैसे नामो पर विचार करते है, तब भी हमारा ध्यान ऐसे जीवो की ओर जाता है जिनका इस पद से बोध होता है। वे जीव मान लिये गये है। बस इतना ही काफी है अधिक की आवश्यकता नही है। पद से अर्थ का बोध इसलिये होता है, कि वह उन व्यक्तियो की ओर सकेत करता है, जिनका उससे बोध होता है। इसलिये जब हम किसी पद की परिभाषा करते है, तब हम किसी न किसी तरह से उस वस्तु की ओर भी सकेत करते है, जो उससे सूचित होती है। वह वस्तु चाहे वास्तविक हो या काल्पनिक। अस्तु वह नामात्मक परिभाषा जो नाम से सूचित वस्तु के सकेत से सम्बन्ध नही रखती असगत सी प्रतीत होती है।

(२) नामात्मक लक्षण जब केवल शब्द तक ही सीमित रहता है, तब पुन-रावृत्ति के अतिरिक्त और कुछ नही होता। इस प्रसग पर भली-भाति विचार हो चुका है। अत. अब अधिक कहने की आवश्यकता नही रही। हम देख चुके है कि पुनरावृत्ति को लक्षण नही कह सकते, क्योकि उससे जिस पद की व्याख्या करके समझाना चाहिये उसका केवल पर्यायी रख दिया जाता है। पर्यायी के रखने से लक्षण नही बन सकता।

(३) नामात्मक परिभाषा का तादात्म्य कुछ लोग व्यौत्पत्तिक लक्षण से करते है। व्यौत्पत्तिक लक्षण शब्द के मूलरूप के अनुसन्धान को कहते है। मान लिया हमे 'लॉजिक' शब्द का लक्षण बताना है,तो हम यह दिखलायेंगे कि यह शब्द ग्रीक शब्द 'लागॉस' से निकला है। जिसका अर्थ होता है, आन्तरिक विचार और उसका बाह्य व्यक्तीकरण। परन्तु 'लॉजिक' शब्द का जो अर्थ सर्व-मान्य है वह है 'व्यवस्थित अध्ययन, इसलिये शब्द का जो सामान्य अर्थ माना जाता है, उससे 'लागॉस' शब्द से कोई सम्बन्ध नही। इसलिये जब किसी वस्तु का एक नाम पड जाता है, वह चाहे जिस कारण पडा हो, स्वतत्र अर्थ देने लगता है और उस कारण का मुखापेक्षी नही रहता। इसलिये जब हम किसी नाम का इतिहास बतलाते है, तो उसके सम्बन्ध मे जानकारी बढाते है। किन्तु वह केवल ऐतिहासिक

विवरण ही कहलाता है, वह पद का अर्थ नही कहा जा सकता। परन्तु लक्षण का लक्ष्य होता है शब्द का अर्थ बतलाना। अस्तु स्पष्ट है कि व्यौत्पत्तिक विवरण परिभाषा नही हो सकता। इसलिये व्यौत्पत्तिक परिभाषा को परिभाषा नही कह सकते।

II. सारभूत (Substantial) और मूलजातिभूत (Genetic) लक्षण

(१) सारभूत लक्षण उन सारपूर्ण गुणो पर अवलम्बित रहता है। जिनका पद से बोध होता है। अर्थात् इसमे उन गुणो का कथन किया जाता है जो पद के अर्थ के लिये आधार है और स्वीकारात्मक है। जैसे मनुष्य एक विवेकवान प्राणी है, सोना "पीटकर बढाया जा सकता है"।

सारभूत लक्षण में विधेयात्मक गुणो का कथन रहता है।

(२) मूलजातिभूत लक्षण उस वस्तु या गुण की उत्पत्ति बतलाता है जिसका पद से बोध होता है, जैसे–प्रभावपूर्ण वक्तृता वह है जो लोगो के मन मे उथल-पुथल पैदा कर दे। इसमे प्रभावपूर्ण वक्तृता की उत्पत्ति बतलाई गई है और उत्पत्ति बतलाते हुये लक्षण भी बतलाया गया है। गणित शास्त्र मे अक्सर ऐसे लक्षण का उपयोग किया जाता है।

मूलभूत लक्षण में उत्पत्ति का वर्णन रहता है।

III व्याख्यात्मक और सश्लिष्टात्मक लक्षण
(Analytical & Synthetical Definition)

(१) व्याख्यात्मक लक्षण पद के अर्थ की व्याख्या करता है। इसमे उन गुणो का विवेचन रहता है जिनसे पद का गुण-व्याप्ति-बोधन (Connotation) बनता है, जैसे मनुष्यता। इसमे विवेकशीलता और चेतनता का योग है। इस लक्षण से मनुष्य पद की व्याख्या होती है। अर्थात् यह लक्षण मनुष्यता को दो गुणो मे—विवेकशीलता और चेतनता में–विभक्त करता है। जब पदो का अर्थ निश्चित होता है, तभी उनका व्याख्यात्मक लक्षण बताया जा सकता है। सामान्यत हम जीवन में उन पदो

व्याख्यात्मक लक्षण पद के गुणबोधन की व्याख्या करता है।

का व्यवहार करते है, जिनके अर्थ सश्लिष्ट रहते है। इसलिये उनकी व्याख्या के विना अर्थ स्पष्ट नही हो सकता। व्याख्यात्मक लक्षण व्याख्या करके उन अर्थों को स्पष्ट कर देता है।

(२) सश्लिष्टात्मक लक्षण इसके विपरीत, साधारण पदो या नये गढे गये पदो के अर्थ मे एक नया अर्थ जोड देता है। लेखक कभी-कभी साधारण पदों को नये अर्थ मे प्रयुक्त करता है और कभी वह नये शब्द गढता भी है। निर्णय पद का साधारण अर्थ है न्यायाधीश का मत किन्तु दर्शन मे इसका कुछ और ही अर्थ माना जाता है। दर्शन मे निर्णय का अर्थ होता है, किसी वस्तु या गुण का निर्देश करना, यानी उद्देश्य को एक विधेय देना। ऐसा लक्षण सश्लिष्ट इसलिये कहलाता है कि इसमे साधारण पद के अर्थ में एक नया अर्थ सश्लिष्ट किया जाता है। यह लक्षण विज्ञान के क्षेत्र में विशेष उपयोगी सिद्ध होता है।

विज्ञान में अनुसन्धान से अक्सर नये गुणो का पता लगता रहता है। इन नये गुणो के लिये नये नाम ढूढने या गढने पडते है। प्राणिशास्त्र मे विकास (Evolution) पद ऐसा ही नाम है। उन्नीसवी शताब्दी में इस तथ्य का पता लगा था कि आज के जीव की उलझी हुई प्रकृति किसी समय के जीव की अति साधारण प्रकृति का विकसित रूप है, सृष्टि के सम्बन्ध मे यह धारणा उस समय एक दम नई धारणा थी। इसके लिये एक नये नाम की आवश्यकता पडी। इसलिये विकास (Evolution) इसका नाम रक्खा गया। अस्तु नये नाम गढना और उन्हे नये अर्थ देना ही सश्लिष्ट लक्षण वताना है।

IV. पूर्ण (Complete) और अपूर्ण (Incomplete) लक्षण

(१) पूर्ण लक्षण मे गुणव्याप्तिवोधन (Connotation) का पूर्ण कथन रहता है; जैसे 'मनुष्य एक विवेकवान चेतन जीव है।' यह लक्षण पूर्ण माना जाता है, क्योंकि इससे मनुष्य के गुण का पूरा कथन होता है। ऐसे लक्षण इस लिये पूर्ण माने जाते है, कि इनमे मूल जाति के धर्म और उपजाति के व्यावर्तक धर्म का योग रहता है परन्तु यदि किसी लक्षण द्वारा पद का अर्थ भली भाति स्पष्ट हो जाय तो वह भी पूर्ण माना जाता है।

(२) इसके विपरीत अपूर्ण लक्षण वह लक्षण है, जो लक्ष्य पद के गुण-व्याप्ति-बोधन (Connotation) का केवल आंशिक कथन करता है या केवल सहज गुण (Property) या औपाधिक गुण (Accidents) का कथन करता है, जैसे—मनुष्य एक चेतन जीव है"। इसमे मनुष्य की विवेकशीलता का जिक्र नही है। इसलिये गुण-व्याप्ति-बोधन का कथन अधूरा ही रह गया। अस्तु लक्षण अपूर्ण रह गया। इसी प्रकार यदि केवल यह कहा जाय कि 'मनुष्य विवेकवान जीव है' तब भी लक्षण अपूर्ण ही रह जाता है क्योकि केवल व्यावर्त्तक धर्म से गुण व्याप्ति अधूरी ही रह जाती है।

अपूर्ण लक्षण सहजगुण या औपाधिक गुण का कथन है। अपूर्ण लक्षण केवल वर्णन है, लक्षण नहीं है।

कभी-कभी लोग सहज गुण (Property) या औपाधिक गुण (Accidents) का कथन करके लक्षण बताना चाहते है किन्तु ऐसा लक्षण लक्षण नही कहा जा सकता। यह केवल वर्णन कहा जा सकता है। वर्णन हम वस्तु का करते है, परन्तु लक्षण हम नाम का बताते है। वर्णन मे सहजगुण (Property) या औपाधिक गुण (Accidents) का कथन रहता है। उससे केवल सकेत मिलता है लक्षण नही मिलता। यदि कहा जाय कि 'मनुष्य वह जीव है, जो भोजन पकाता है' तो यह कथन वर्णन मात्र होगा। इस वाक्य मे मनुष्य के एक औपाधिक गुण, अर्थात् भोजन पकाने का वर्णन है। भोजन पकाना कोई ऐसा गुण नही है, जो मनुष्य पद में निहित हो। इसलिये यह केलव वर्णन है।

वर्णन से लक्षण ज्ञात नहीं होता, केवल सकेत ज्ञात होता है।

इस वाक्य से यह पता तो अवश्य लगता है कि मनुष्य पद का प्रयोग किस प्रयोजन के लिये किया गया है। अर्थात् इससे एक सकेत तो अवश्य ज्ञात होता है। लक्षण नही। अस्तु वर्णन को एक प्रकार का सकेत ही माना जा सकता है। लक्षण नही।

V विस्तृत लक्षण (Extensive Definition)

उदाहरणो द्वारा यदि किसी पद का लक्षण बताया जाय तो वह विस्तृत लक्षण

कहलाता है। जैसे यदि सोना, चादी, तावा, लोहा आदि का उदाहरण देकर हम धातु का लक्षण वतायें तो वह विस्तृत लक्षण कहा जायगा। इस लक्षण द्वारा धातु मे आधारभूत गुणो का कथन नही होता वल्कि इसमे उनका उदाहरण पाया जाता है।

VI सकेतात्मक लक्षण (Ostensive Definition)

सकेतात्मक लक्षण द्वारा पद की ओर सकेत करके परिचय कराया जाता है। जैसे किसी मनुष्य की ओर इगित करके हम कहे कि यह मनुष्य है तो यह सकेतात्मक कहलायेगा। व्यक्तिवाचक पदो का लक्षण वताने में इस प्रकार के लक्षण विशेष उपयोगी सिद्ध होते है।

VII समुदायात्मक लक्षण (Definition by type)

जव किसी वर्ग से एक ऐसे व्यक्ति को चुना जाता है जो वर्ग का प्रतिनिधि हो सकता है और जव उसके सकेत से वर्ग का लक्षण वताया जाता है, तव वह लक्षण समुदायात्मक लक्षण कहलाता है। जैसे यदि हम राम को मनुष्य वर्ग का प्रतिनिधि चुने और राम की ओर सकेत करके कहे कि यही मनुष्य है तो यह लक्षण समुदायात्मक लक्षण होगा।

उपर्युक्त तीनो लक्षण वास्तव मे लक्षण नही कहे जा सकते। इनमे से प्रत्येक सकेत मात्र करते हैं। लक्ष्य पद के अपरिहार्य गुणो पर कोई आधारित नही है। इसलिये ये केवल नाम की ओर सकेत मात्र करने से लक्षण नही वन सकते। किसी पद का लक्षण वताना भिन्न वात है और उसको व्यवहार में लाना भिन्न। एक वात और है। जव तक पद का लक्षण नही मालूम होगा तव तक उसका ठीक-ठीक व्यवहार भी कैसे किया जा सकता है। इसलिये पद को व्यवहार मे लाने के पहले उसका लक्षण जानना अनिवार्य है।

VIII निर्णीत और अनिर्णीत लक्षण (Final & Provisional)

अनिर्णीत (Provisional) लक्षण हमारे ज्ञान की वृद्धि के साथ वदलता रहता है किन्तु निर्णीत (Final) लक्षण कभी नही वदलता। वह पूर्ण होता है। किन्तु मनुष्य का ज्ञान सदैव वढता रहता है। इसलिये

सभी लक्षण अनिर्णीत (Provisional) ही कहे जायँगे। निर्णीत (Final) लक्षण प्राप्त करना तो विज्ञान का आदर्श है और यह आदर्श तभी प्राप्त हो सकता है जब हम सब चीजो का पूरा-पूरा ज्ञान प्राप्त कर लेगे।

फिर भी लक्षण का क्षेत्र असीमित नही है उसकी भी सीमाये है। जैसे—

(१) ऐसे मूल सवेदन जैसे—मिठास, कडुआहट, आनन्द इत्यादि। ये इतने सरल और बोधगम्य है कि इनके लक्षण की कोई आवश्यकता नही है।

(२) ऐसे पदार्थो के नाम जो केवल व्यक्ति-बोधक है। जैसे, समय, दिल्ली, ब्राउन, इत्यादि।

(३) कुछ ऐसे शब्द जो अति परिचित है, और जिनके लक्षण की कोई आवश्यकता नही है।

लक्षण वह निर्णय वाक्य है, जिसमे उस पद के, जिसका लक्षण दिया जाता है, अर्थ का निर्देश रहता है। इसलिये जब तक हम कुछ ऐसे शब्दो को अपने अधिकार मे न कर ले जिनका अर्थ स्वत. स्पष्ट है, तब तक हम किसी पद का लक्षण कैसे दे सकते है? ऐसे अतिपरिचित शब्दो के लिये जैसे "घर", "भोजन" इत्यादि लक्षण की कोई आवश्यकता नही है। अस्तु ये शब्द लक्षण की सीमा के बाहर है।

अध्याय ७ का सारांश

लक्षण या परिभाषा वह निर्णय वाक्य है जो शब्द का अर्थ व्यक्त करता है। नैयायिको का मत है कि लक्षण मे मूल जाति (Genus) और व्यावर्तक धर्म (Differentia) का कथन रहता है। जैसे मनुष्य का लक्षण देना है तो कहना होगा, "मनुष्य एक विवेकशील चेतन प्राणी है।"

लक्षण सम्बन्धी नियम नीचे दिये जाते है—

(१) लक्षण स्पष्ट होना चाहिये।

(२) लक्षण पर्याप्त होना चाहिये।

(३) लक्षण में पुनरावृत्ति नही होनी चाहियें।

(४) लक्षण निषेधात्मक नही होना चाहिये।

भिन्न-भिन्न नैयायिको ने भिन्न-भिन्न प्रकार के जो लक्षण निर्दिष्ट किये है वे नीचे दिये जाते है —

(१) व्यौत्पत्तिक लक्षण (Etymological Definition)
(२) मौखिक (verbal) लक्षण
(३) सारभूत (Substantial) लक्षण
(४) मूलजातिभूत (Genetic) लक्षण
(५) व्याख्यात्मक (Analytical) लक्षण
(६) सश्लिष्टात्मक (Synthetic) लक्षण
(७) पूर्ण (Complete) लक्षण
(८) अपूर्ण (Incomplete) लक्षण
(९) विस्तृत (Extensive) लक्षण
(१०) सकेतात्मक (Ostensive) लक्षण
(११) वर्गात्मक (Type) लक्षण
(१२) अनिर्णीत (Provisional) लक्षण
(१३) निर्णीत (Final) लक्षण

(१) जब हम शब्द की व्युत्पत्ति बतलाते है, तब हम उसका निरुक्त लक्षण देते है। जैसे—"आर्यावर्त आर्यो का देश है।" "दर्शन बुद्धिमत्ता का प्रेम है।" ये दोनो लक्षण निरुक्त या व्यौत्पत्तिक (Etymological) लक्षण है।

(२) मौखिक (Verbal) लक्षण मे हम शब्द का पर्यायी दे देते है। जैसे–"मनुष्य मानव है।"

(३) सारभूत (Substantial) लक्षण मे पद का विधेयात्मक (Positive) अर्थ बतलाया जाता है। जैसे, "मनुष्य एक विवेकशील प्राणी है"।

(४) मूलजातीय लक्षण वह लक्षण है, जो पद से व्यक्त वस्तु या धर्म की व्युत्पत्ति बतलाता है। जसे, "वक्तृता से मन पर प्रभाव डालने को वाक् पटुता (Eloquence) कहते है।"

(५) व्याख्यात्मक (Analytical) लक्षणो मे पद के गुण व्याप्ति बोधन की व्याख्या रहती है। जैसे "मानवता वरावर है विवेकशीलता और चेतन प्राणित्व के।"

(६) सश्लिष्टात्मक (Synthetic) लक्षण मे साधारण शब्दो का एक नया अर्थ रहता है अथवा नये गढे गये शब्द को अर्थ दिया जाता है। जैसे, जीवन-विकास (Evolution) का यदि यह लक्षण दिया जाय कि प्राणी जीवन साधारण अवस्था से गहन अवस्था मे विकसित होता है, तो यह उसका सश्लिष्टात्मक लक्षण होगा।

(७) अपूर्ण (Incomplete) लक्षण में पद के गुण-व्याप्ति बोधन का अधूरा कथन रहता है। जैसे-"मनुष्य एक प्राणी है।"

(८) पूर्ण (Complete) लक्षण मे पद के गुणव्याप्तिबोधन का पूरा कथन रहता हैं। जैसे-"मनुष्य एक विवेकशील प्राणी है।"

(९) विस्तृत (Extensive) लक्षण मे उदाहरण द्वारा पद का लक्षण वतलाया जाता है। जैसे-"धातु एक वस्तु है, जैसे-सोना, चांदी, तावा इत्यादि।"

(१०) सकेतात्मक (Ostensive) लक्षण मे पद की ओर सकेत मात्र रहता है।

(११) वर्गात्मक (of type) लक्षण मे वर्ग के प्रतिनिधि रूप से किसी व्यक्ति को चुनकर सामने लाया जाता है।

(१२) अनिर्णीत (Provisional) लक्षण ज्ञानवर्द्धन के पश्चात् परिर्वतित हो सकता है।

(१३) निर्णीत (Final) लक्षण कभी परिवर्तित नही होता।

इस सम्वन्ध मे ध्यान देने की वात जो है वह यह है कि निरुक्त लक्षण, मौखिक लक्षण, मूलजातीय लक्षण, विस्तृत लक्षण, सकेतात्मक लक्षण और वर्गात्मक लक्षण वास्तव मे शुद्ध लक्षण नही कहे जा सकते क्योकि लक्षण का काम शब्द का अर्थ व्यक्त करना है, जो इनमे से कोई नही करता। 'सश्लिष्टात्मक' शब्द भी विना प्रयोजन ही है, क्योकि जब हम कोई नया शब्द गढेगे तो उसके लिये कोई अर्थ अवश्य

रखेगे। पद का अर्थ देना ही उसका लक्षण देना है। इसलिये ऐसे लक्षण को सश्लिष्टात्मक लक्षण कहने की कोई आवश्यकता नही।

लक्षण की सीमा भी है। निम्नाकित उसकी सीमा के वाहर है —

(१) मूल सवेदन के नाम।

(२) अनोखी चीजो के नाम।

(३) कुछ ऐसे शब्द जो नित्य प्रति के व्यवहार के कारण अति परिचित हो गये है।

अध्याय ७ : अनुशीलन

(१) लक्षण किसे कहते है ?

(२) क्या तुम इस मत से सहमत हो कि लक्षण सदैव मूलजाति के और व्यावर्त्तकधर्म के वर्णन द्वारा ही दिया जा सकता है ?

(३) लक्षण के नियमो की व्याख्या करो।

(४) "लक्षण पर्याप्त होना चाहिये।" इसे उदाहरण देकर समझाओ।

(५) लक्षण कितने प्रकार के होते है ?

(६) नामात्मक (Nominal) और तथ्यात्मक (Real) लक्षण में अन्तर बताओ।

(७) निम्नाकित पर टिप्पणी लिखो—
मूलजातीय लक्षण, सश्लिष्टात्मक लक्षण; और सकेतात्मक लक्षण।

(८) वर्गात्मक लक्षण की व्याख्या करो। क्या यह लक्षण ठीक है ?

(९) लक्षण और वर्णन मे जो अन्तर है, उसे स्पष्ट करो।

(१०) लक्षण की सीमा क्या है ?

अध्याय ८

विभाजन (Division)

१. विभाजन क्या है ?

विभाजन का शाब्दिक अर्थ है, सम्पूर्ण को खडो में विभक्त करना। विभाजन प्राय तीन प्रकार का माना जाता है। अशाश्रित विभाजन (Physical Division), गुणाश्रित विभाजन (Metaphysical Division) और वर्गाश्रित विभाजन (Logical Division)। इनमें अन्य विभाजनो की अपेक्षा वर्गाश्रित विभाजन विशेप द्रष्टव्य है।

१ अंशाश्रित विभाजन (Physical Division)—व्यक्ति या वस्तु को उसके अवयवो मे विभाजित करने को अशाश्रित या आवयविक विभाजन कहते है। मनुष्य के शरीर को यदि हाथ, पाँव, सिर, आँख, नाक आदि में विभक्त किया जाय तो यह आवयविक या अशाश्रित विभाजन कहा जायगा। इसी प्रकार यदि किसी फूल को पराग, पखडियो और डठल में विभक्त किया जाय तो वह आवयविक विभाजन कहा जायगा।

२ गुणाश्रित विभाजन (Metaphysical Division)—जिस विभाजन द्वारा वस्तु की उसके गुणो के अनुसार व्याख्या की जाती है उसे गुणाश्रित विभाजन कहते हैं। जैसे सुवर्ण की यदि हम उसके गुणो के अनुसार व्याख्या करे तो उसके रग, रूप, दृढता, गुरुता और पीटने पर वढने की क्षमता आदि गुणो के अनुसार उसकी व्याख्या करेगे।

३ वर्गाश्रित विभाजन (Logical Division)—इस विभाजन में मूलजाति (Genus) का उपजाति (Species) मे विभाजन किया जाता है। जैसे, प्राणी का अडज, जरायुज आदि में विभाजन किया जाता है।

8

२. वर्गाश्रित विभाजन की विशेषता

ऊपर कथित यदि तीनो विभाजनो की तुलना की जाय तो ज्ञात होगा कि वर्गाश्रित विभाजन का सम्बन्ध वर्ग के नाम से है जब कि अन्य दोनो, यानी अशाश्रित और गुणाश्रित विभाजनो का सम्बन्ध केवल व्यक्ति से है। अशाश्रित या आवयविक विभाजन मे हम वस्तु को उसके अवयवो मे विभक्त करते हैं। गुणाश्रित विभाजन मे हम वस्तु को उसके तत्वो मे बाँटते है। परन्तु वर्गाश्रित विभाजन में हम एक बडे वर्ग को उसके अतर्निहित छोटे वर्गो मे बाँटते हैं।

इस प्रकार के वर्गो का आपस मे जो सम्बन्ध है वह असाधारण सा है। यद्यपि एक बडा वर्ग छोटे-छोटे वर्गो से बना हुआ होता है फिर भी बडे वर्ग का नाम अपने अन्तर्गत के सब छोटे वर्गो का विधेय बन सकता है। जीवधारी वर्ग के अन्तर्गत मनुष्य, बदर, घोडे, कुत्ते आदि सभी वर्ग आते है और हम कह सकते है कि मनुष्य जीवधारी है।' 'घोडा जीवधारी है।' 'वन्दर जीवधारी है' आदि। किन्तु आवयविक या गुणाश्रित विभाजन मे ऐसा नही कर सकते। उनमे जिस वस्तु का विभाजन हम अवयवो या तत्वो में करते है वह वस्तु अपने अवयवो या तत्वो का विधेय नही बन सकती। अर्थात् हम यह नही कह सकते कि "शिर शरीर है।" या "पीटने से बढने की क्षमता सोना है।"

अस्तु स्मरण रखना चाहिए कि (अ) आवयविक और गुणाश्रित विभाजन व्यक्ति से सम्बन्ध रखते हैं और वर्गाश्रित विभाजन वर्ग से तथा वर्ग के नाम से।

(ब) आवयविक और गुणाश्रित विभाजनो मे विभाज्य वस्तु अपने विभाजको का विधेय नही बन सकती किन्तु वर्गाश्रित विभाजन मे विभाज्य वर्ग अपने वर्गो का विधेय बन सकता है।

३. कुछ पदो का स्पष्टीकरण

(अ) विभाज्य-सम्पूर्ण (Totum Divisum) वह व्यापक सामान्य या मूलजाति है जो व्याप्त सामान्यो या उपजातियो मे विभाजित होता है।

(ब) विभाजक (Membra Dividentia) वे व्याप्त सामान्य या उपजातियाँ हैं जिनमें व्यापक सामान्य या मूलजाति विभाजित होती है।

मनुष्य पद को एशिया निवासी, यूरप निवासी और अमेरिका निवासी आदि में बाँट सकते हैं। मनुष्य पद विभाज्य-सम्पूर्ण और एशिया-निवासी, यूरप-निवासी और अमेरिका-निवासी आदि विभाजक वर्ग माने जायँगे।

(स) **मिश्र विभाजन** (Co-Division):—जब एक ही व्यापक सामान्य या मूलजाति भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणो से भिन्न-भिन्न विभाजक वर्गों में बाँटी जाय तब वह विभाजन मिश्र या सकर विभाजन कहा जाता है। ऐसे विभाजन मे एक दृष्टिकोण से विभाजित वर्ग दूसरे दृष्टिकोण से विभाजित वर्गों से पूर्णत पृथक नही होते। अक्सर ऐसा देखा जाता है कि प्रथम कोटि का वर्गांश दूसरे कोटि के वर्गांश मे सम्मिलित होता है। यदि हम त्रिभुज को समत्रिबाहु त्रिभुज, समद्विबाहु त्रिभुज, समकोण त्रिभुज और न्यूनकोण त्रिभुज आदि मे बाँटे, तो हम इसे दो भिन्न दृष्टिकोणो से बाँटेंगे। विभाजन का एक आधार होगा भुजा की समता या विषमता और दूसरा आधार होगा सबसे बडे कोण का परिमाण। इन दोनो दृष्टिकोणो से विभाजन करने पर त्रिभुज के जो वर्ग मिलते है वे एक दूसरे से सर्वथा भिन्न नही होते। एक समकोण त्रिभुज समद्विबाहु त्रिभुज भी हो सकता और एक न्यूनकोण त्रिभुज समत्रिबाहु भी। दूसरा उदाहरण लीजिए। जीवधारी को हम विवेकवान, विवेकहीन, अडज, जरायुज, उष्ण रक्तवालो और शीत रक्तवालो मे विभक्त करे तो वह मिश्र विभाजन होगा। यह विभाजन तीन दृष्टिकोणो से किया गया है। पहले विवेक की दृष्टि से, फिर जन्म की दृष्टि से और अन्त मे रक्त की उष्णता की दृष्टि से। किन्तु यह विभाजन एक विभाग को दूसरे से पृथक नही करता है। बहुत से जीवधारी विवेकवान भी होते है, जरायुज भी होते है और उष्ण रक्तवाले भी होते है।

मिश्र विभाजन वह प्रक्रिया है जिससे एक व्यापक सामान्य अपने व्याप्य सामान्यो में विभाजित किया जाता है।

(द) **श्रेणीवद्ध विभाजन** (Sub-Division):—जब हम किसी वर्ग को विभाजित करते है तो कुछ वर्गांश पाते है। इन वर्गांशो को हम

पुनः विभाजित कर सकते है। इस प्रकार के विभाजन को श्रेणीवद्ध विभाजन (Sub-Division) कहते है।

वर्गाश्रित विभाजन के नियम

१. प्रत्येक विभाजन का आधार एक सिद्धान्त होता है।

२. विभाजक वर्ग सब मिलकर विभाज्य वर्ग के बराबर होते है।

३ विभाज्य वर्ग के जितने विभाजक वर्ग है वे एक दूसरे से निरपेक्ष होते हैं।

४. यदि किसी विभाज्य वर्ग का श्रेणीवद्ध विभाजन किया जाय, तो सारी प्रक्रिया व्यवस्थानुकूल होनी चाहिए और प्रत्येक श्रेणी का उसके निकटतम उप-श्रेणी में विभाजन होना चाहिए।

नियमों का स्पष्टीकरण

१. एक नियम का एक ही आधार होना चाहिए। रक्त की उष्णता के अनुसार जीवधारियो को उष्ण रक्तवालो और शीतरक्तवालों मे विभाजित किया जाता है। यह विभाजन एक आधार पर निर्भर है। यदि हम एक से अधिक आधारो को अपनाते है तो सकर विभाजन का दोष आजाता है। जैसे, यदि हम जीवधारियो का विभाजन उष्ण रक्त-वालो, द्विपद, चतुष्पद और शीतरक्तवालो मे करें तो उस विभाजन मे सकर विभाजन का दोष आ जायगा। इनमे उपश्रेणियो का सकर पाया जाता है। क्योंकि ऐसी उपश्रेणियाँ जैसी उष्ण रक्त वालो की, द्विपदो या चतुष्पदो की आपस में एक दूसरी का वहिष्कार न करके अक्सर गठवन्धन करती है। वे व्यक्ति जो द्विपद या चतुष्पद है उष्ण रक्तवाले भी हैं। इसलिए यदि एक ही विभाजन में एक से अधिक आधार अपनाये जायेंगे तो वह विभाजन विभाजन नही रह जायगा।

इस नियम को भंग करने से संकर (मिश्रण) का दोष आता है।

२. सब उपवर्ग मिलकर विभाजित वर्ग के बराबर होने चाहिए। मूल-

जाति या व्यापक सामान्य उपजातियो या व्याप्त-सामान्यो से वनता है। इसलिए जव किसी व्यापक सामान्य का विभाजन किया जाय, तव उसके अन्तर्गत जितने व्याप्त-सामान्य है, सवका उल्लेख होना चाहिए। ऐसा नही करने से कुछ श्रेणियाँ छूट जाती है। तव सव विभाजक श्रेणियाँ मिलकर विभाज्य वर्ग के वरावर नही होती अर्थात् तव विभाजक वर्गो को सश्लिष्ट करने से विभाज्य वर्ग नही प्राप्त होता। इससे सकीर्णता का दोप आ जाता है। यदि हम मनुष्य को केवल एशिया निवासी और यूरोप निवासी में वाँटें तो विभाजन अपूर्ण होगा। क्योकि इन दोनो के योग से मनुष्य पद नही वनता। इसलिए यह विभाजन सकीर्ण विभाजन माना जाता है।

जव हम इस नियम का उल्लंघन करते है तव विभाजन में सकीर्णता या अतिव्याप्ति का दोष आता है।

जव उपवर्ग प्रधान वर्ग के वरावर नहीं होते तव विभाजन में संकीर्णता का दोष आता है।

कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि वर्ग का विभाजन करते समय वर्ग के अन्तर्गत कुछ ऐसे व्यक्तियो को रख दिया जाता है जो वर्ग से वाहर है। ऐसे विभाजन मे अतिव्याप्ति का दोप आता है। जैसे यदि हम मनुष्य वर्ग को एशिया निवासी, यूरोप निवासी, अफ्रीका निवासी, आस्ट्रेलिया निवासी और वनमानुप आदि मे विभाजित करें, तो अतिव्याप्ति का दोप आ जायगा। वनमानुप मनुष्य नही कहा जा सकता गो कि कुछ हद तक वह मनुष्यो से मिलता-जुलता दिखाई देता है। 'वनमानुष' एक दूसरे वर्ग का उपवर्ग है। इसकी गणना मनुष्य वर्ग में नहीं हो सकती। इसलिए इस विभाजन में, अतिव्याप्ति का दोप है।

जव कोई उपवर्ग वाहर से विभाजक वर्गों में सम्मिलित कर लिया जाता है तव अति व्याप्ति का दोष आता है।

३. **विभाज्य वर्ग के उपवर्ग परस्पर वहिर्भूत हो।** इस नियम का सम्वन्ध पहले नियम से है। हम पहले देख चुके है कि यदि कोई विभाजन एक से अधिक सिद्धान्तो को आधार-भित्ति के रूप मे रखता है तो विभाजक

वर्गों का आपस मे अतिक्षेप हो जाता है। इसलिए यह अति आवश्यक है कि उपवर्ग एक दूसरे से विल्कुल पृथक हो। यदि एक ही व्यक्ति एक से अधिक उपवर्ग मे पाया जाय तो समझ लेना चाहिए कि विभाजन दोषपूर्ण है। जीवो को अडज और जरायुज में बाँट सकते हैं। यदि उन्हे अडज, जरायुज और उष्ण रक्तवालो में बाँटा जाय,

यदि उपवर्ग निरपेक्ष नहीं है तो विभाजन दूषित है।

तव उपवर्गों में निरपेक्षता नही रह जायगी। जो जीव अडज या जरायुज है वे उष्ण रक्त वाले भी हो सकते हैं। अस्तु, यदि उपवर्ग निरपेक्ष नही है तो विभाजन क्रिया मे पहले नियम का उल्लघन होता है।

४. श्रेणीवद्ध विभाजन में प्रत्येक श्रेणी दूसरी की निकटतम श्रेणी होनी चाहिए। श्रेणीवद्ध विभाजन मे क्रम रहता है। उसमें एक वर्ग उपवर्गो में विभाजित किया जाता है, फिर वे उपवर्ग छोटे उपवर्गों में विभाजित किये जाते है। इस प्रकार क्रम जारी रहता है। दूसरे इस वात का ध्यान रखना चाहिए कि विभाजन व्यवस्थानुकूल हो, अव्यवस्थित न होने पाये, न उसमें व्यतिक्रम आने पाये। यदि हम पुस्तको को

श्रेणीबद्ध विभाजन क्रमानुसार होना चाहिये।

विज्ञान सम्वन्धी पुस्तको और कला सम्बन्धी पुस्तको मे बाँटे, फिर कला-सम्वन्धी पुस्तको को न्याय, चित्रकला और समालोचना की पुस्तको मे बाँटें तो इस विभाजन मे न तो व्यवस्या ही मिलेगी न क्रम ही। न्याय (Syllogism) की पुस्तके तर्क-शास्त्र की पुस्तको की उपजाति है। तर्क-शास्त्र की पुस्तके दर्शन की पुस्तको की उपजाति है और दर्शन की पुस्तकें कला-सम्वन्धी पुस्तको की उपजाति है। अस्तु, इस विभाजन में कला-सम्वन्धी पुस्तकें अपनी आसन्न उपजातियो मे, जैसे दर्शन-सम्वन्धी पुस्तके, साहित्य-सम्वन्धी पुस्तके और ललित-कला-सम्वन्धी पुस्तके आदि मे विभाजित न की जाकर दूर की उपश्रेणियो में, जैसे न्याय-सम्वन्धी पुस्तके, चित्र-कला-सम्वन्धी पुस्तके और समालोचना-सम्वन्धी पुस्तके आदि मे विभाजित की गई है। किन्तु उपवर्ग, 'न्याय-सम्वन्धी पुस्तकें' तर्क-शास्त्र-सम्वन्धी पुस्तको के अन्तर्गत आता है। तर्क-शास्त्र-सम्वन्धी पुस्तके दर्शन-शास्त्र-सम्वन्धी

पुस्तको के अन्तर्गत आती है और दर्शन-शास्त्र-सम्बन्धी पुस्तकें कला-सम्बन्धी पुस्तको के अन्तर्गत आती हैं। यही दशा चित्र-कला-सम्बन्धी पुस्तको और समालोचना-सम्बन्धी पुस्तको की भी है। चित्र-कला-सम्बन्धी पुस्तके ललितकला सम्बन्धी पुस्तको के अन्तर्गत आती हैं, जो स्वय कला-सम्बन्धी पुस्तको के अन्तर्गत आती हैं। समालोचना सम्बन्धी पुस्तकें साहित्य-सम्बन्धी पुस्तको की उपजाति है, जो स्वयं कला-सम्बन्धी पुस्तको की उपजाति है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि उपर्युक्त विभाजन व्यवस्थित नही है और न क्रम-बद्ध ही है। नीचे एक व्यवस्थित विभाजन की तालिका दी जाती है।
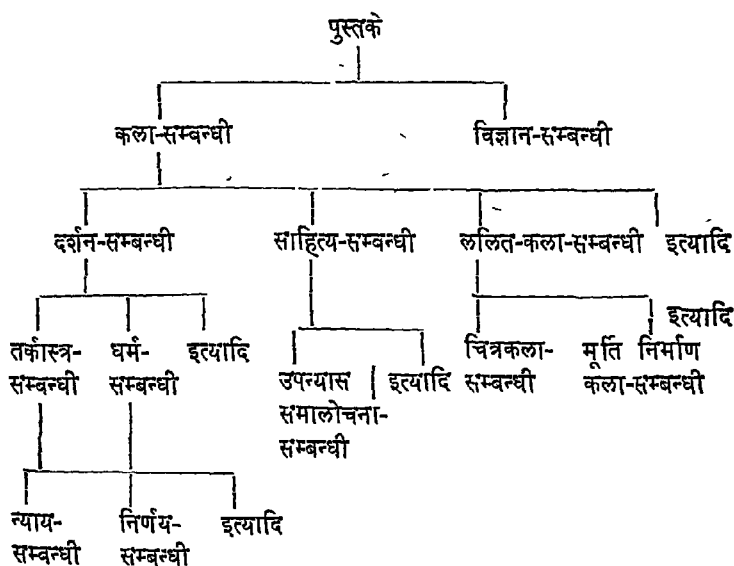
इस तालिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि उपर्युक्त विभाजन मे कुछ मध्यवर्ती उपजातियाँ छूट गई थी। अर्थात् कला-सम्बन्धी पुस्तको और न्याय सम्बन्धी पुस्तको की मध्यवर्ती जो कई उपजातियाँ है उनको छोड दिया गया था।

५ द्विकोटिक विभाजन (Division by Dichotomy)—जब किसी विभाज्य-वर्ग को दो परस्पर विरोधी उपवर्गों में बाँटा जाता है, तब

उस विभाजन को द्विवर्गाश्रित विभाजन कहते हैं। इस विभाजन में एक पद विधिवाचक रहता है और दूसरा उसी का विरोधी निषेधवाचक। इस प्रकार मनुष्य वर्ग को हिन्दू और अहिन्दू मे बाँटा जाता है। हिन्दू और अहिन्दू एक दूसरे के व्याघातक है। वे एक दूसरे से विल्कुल वहिर्भूत है। इन दोनो के मध्य में कोई तीसरा वर्ग नही आता। उपवर्ग हिन्दू और अहिन्दू मे सारा मनुष्य वर्ग बँट जाता है। कोई वाकी नही रह जाता। इससे स्पष्ट होता है कि द्विकोटिक विभाजन व्याघातक और मध्यम निषेधक नियमो को आधारभित्ति रखकर किया जाता है। नीचे इस विभाजन का व्यवस्थित उदाहरण दिया जाता है।

द्विवर्गाश्रित विभाजन विधिवाचक और उसके विरोधी निषेधवाचक पद के द्वारा किया जाता है।
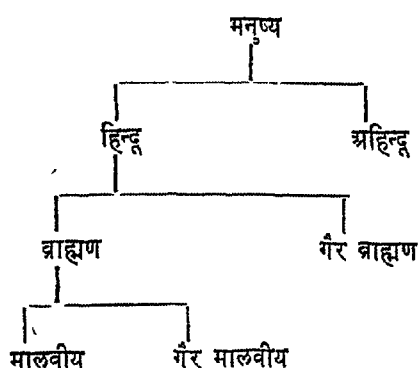
६. **द्विकोटिक विभाजन की त्रुटियाँ** (Defects of Division by Dichotomy)—द्विकोटिक विभाजन करने में कई कठिनाइयो का सामना करना पडता है।

(अ) पहली त्रुटि तो यह है कि यह विभाजन केवल रूपाश्रित (formal) है, तथ्याश्रित नही है। इसमे एक विधिवाचक पद को निषेधवाचक द्विवर्गाश्रित बना दिया जाता है। इसके अनुसार चेतन जीवधारियो को विवेकवान जीवधारियो और विवेकशून्य जीवधारियो में बाँटा जाता है। परन्तु विवेकशून्य

निपेधक है 'विवेकवान' का जो कि एक विधिवाचक पद है। विवेकशून्य जीवधारियो का उपवर्ग केवल 'विवेकवान जीवधारियो' का निपेधमात्र करके वना दिया गया है। वास्तव मे विवेकशून्य जीवधारियो का कोई उपवर्ग है या नही है, इसकी कोई जाँच नही की गई है। इसलिए यह उपवर्ग रूपाश्रित ही माना जायगा।

द्विवर्गाश्रित विभाजन केवल रूपाश्रित (Formal) होता है।

(व) दूसरी त्रुटि यह है कि निपेधात्मक वर्ग अनिश्चित होता है। यह विधिवाचक वर्ग का निपेधक होता है। इसलिए किसी निश्चित वर्ग की ओर सकेत नही करता। विभाजन का सम्वन्ध वर्ग के नाम व्याप्तिवोधन (Denotation) से होना चाहिए और विभाज्य वर्ग के दोनो उप-वर्ग निश्चित होने चाहिए।

द्विकोटिक विभाजन से प्राप्त निषेधात्मक वर्ग अनिश्चित होता है।

(स) तीसरी त्रुटि यह है कि द्विकोटिक विभाजन से जो निपेधात्मक नाम मिलता है वह वास्तविक वर्ग का नाम नही होता। वह तो केवल अपने समकक्षी विधिवाचक पद का निपेधक होता है। इसलिए निश्चयपूर्वक ऐसा नही कहा जाता कि इस नाम का एक वर्ग है। इससे स्पष्ट होता है कि इस विभाजन द्वारा हम किसी वर्ग का विभाग नही करते। इससे केवल हम एक ही उपवर्ग प्राप्त करते है। दूसरा उपवर्ग तो इसी उपवर्ग के नाम का निषेधक है। इसलिए खिलवाड मात्र है। परन्तु वहुत से नैयायिक द्विकोटिक विभाजन में भी कुछ उपयोगिता पाते है।

द्विकोटिक विभाजन वास्तविक नही है।

७ द्विकोटिक विभाजन से लाभ (Uses of Division by Dichotomy) —जो लोग द्विकोटिक विभाजन में कुछ उपयोगिता देखते हैं वे कहते है कि द्विकोटिक विभाजन से किसी विभाग की प्रामाणिकता की जाँच करने मे सहायता मिलती है। इस कथम मे कुछ सत्य अवश्य है। इस वात को तो सभी मानते है कि द्विकोटिक विभाजन वास्तविक विभाजन नही कहा जा सकता फिर भी इसे विभाग की प्रामाणिकता की कसौटी मानते हैं।

हम पहले देख चुके है कि जिन उपवर्गों में व्यापक वर्ग का विभाजन होता है वे एक दूसरे से पृथक होते है, यानी एक वर्ग दूसरे वर्ग के दायरे से बाहर रहता है। जब एक वर्ग दूसरे वर्ग के दायरे के बाहर रहेगा तब इसका मतलब यह होगा कि जहाँ एक रहेगा वहाँ दूसरा नही रहेगा अर्थात् एक वर्ग दूसरे का निषेधक होगा। अस्तु, इस विभाजन के सिद्धान्त को काम मे लाकर हम यह दिखला सकते है कि उपवर्ग एक दूसरे के दायरे के बाहर है या नही है। जीवधारियो को अंडज, और जरायुज मे बाँटा जाता है। अगर हम इन वर्गो को अंडा देनेवाले जानवरो और अन्डा न देनेवाले जीवधारियो में विभाजित कर सके या बच्चा देनेवाले और बच्चा न देनेवाले जीवधारियो मे विभाजित कर सके तो हम कह सकते हैं उपर्युक्त विभाजन प्रामाणिक है।

द्विकोटिक विभाजन वास्तविक विभाजन नहीं है फिर भी इस विभाजन से प्रामाणिकता जाँची जा सकती है।

८. **विभाजन और लक्षण** (Division & Definition) :— अब विभाजन और लक्षण के सम्बन्ध को स्पष्ट किया जायगा। लक्षण का प्रयोजन शब्द के अर्थ से रहता है। लक्षण बताते समय हम किसी न किसी रूप मे नाम-व्याप्ति (Denotation) का उल्लेख करते है जब किसी उपजाति (Species) के नाम का लक्षण बताते है तब हम मूलजातीय (Generic) धर्म और व्यावर्त्तकधर्म (Differentia) का सहारा लेते है। उस लक्षण को मूलजाति और व्यावर्त्तक का अनुसारक (Definition et genus per Differentium) कहते है। जब हम ऐसा लक्षण बताते है तब विभाजन क्रिया को भी व्यवहार मे लाते है। जैसे, जब हम मनुष्यपद का लक्षण बताते है तब उसके मूलजातीय और व्यावर्त्तक गुण का वर्णन करते है। वह चेतन जीव है और वह विवेकवान है और जब हम इन दोनो प्रकार के गुणो का सम्बन्ध समझना चाहते है तब चेतन जीव को उसके उपवर्गों में विभक्त करते है। इन उपवर्गो मे एक उपवर्ग ऐसा है

विभाजन और लक्षण अन्योन्याश्रित है।

जो विवेकवान है। इसलिए लक्षण बताने मे विभाजन का उपयोग किया जाता है।

इसके विपरीत यह भी सत्य है कि विभाजन की आधारभित्ति लक्षण ही है। जब हम किसी वर्ग को उपवर्गों में विभाजित करते हैं तब प्रत्येक का लक्षण बताकर उनको परस्पर बहिर्भूत रक्खा जाता है। हम व्यावर्तक धर्म द्वारा एक को दूसरे से पृथक रखते हैं और प्रत्येक के मूलजातीय गुणो में उन्हें एक व्यापक वर्ग के अन्तर्गत लाते हैं। इससे स्पष्ट है कि विभाजन के कार्य में लक्षण की सहायता ली जाती है वास्तव मे विभाजन और लक्षण अन्योन्याश्रित हैं।

९ विभाजन के उपयोग :—विभाजन का प्रयोजन पद की नाम-व्याप्ति (Denotation) से रहता है। नाम-व्याप्ति को वर्गों मे बद्ध करने को ही विभाजन कहते हैं। प्रत्येक सार्थक पद से किसी-न-किसी गुण का बोध होता है और किसी-न-किसी विषय के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त होता है। इसलिए विभाजन वर्ग के नाम-व्याप्ति से प्रयोजन रखने के कारण और वर्ग को श्रेणीबद्ध करने के कारण विभाजक और विभाज्य वर्गों के अर्थ को स्पष्ट करता है।

विभाजन का सम्बन्ध लक्षण से रहता है, इसलिये वह पद का अर्थ स्पष्ट करता है।

१० न्यायसम्मत विभाजन की सीमायें :—न्यायशास्त्र में यह क्रिया मन से सम्बन्ध रखती है। इससे मूलजाति उपजातियो मे विभक्त की जाती है। सूक्ष्म तत्व से सम्बन्ध रखने के कारण यह क्रिया कोरी आकारात्मक कही गई है। पर बात ऐसी नही है। वर्ग के विभाजन मे हम वस्तु का भी उल्लेख करते हैं और विभाज्य तथा विभाजक वर्गो के मूलभूत गुणो का सहारा भी लेते हैं। इसलिए विभाजन क्रिया को कुछ मानी मे आकारात्मक कह सकते हैं तो कुछ में तथ्यात्मक भी।

फिर विभाजन का प्रयोजन वर्ग से रहता है। इसलिए वर्ग के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु का विभाजन नही हो सकता। यदि हम किसी व्यक्ति या मिश्र समुदाय को उसके भिन्न-भिन्न टुकडो या तत्वो मे बाँटे तो ऐसा विभाजन न्याय-शास्त्र के विभाजन के अन्तर्गत नहीं आ सकता। न्यायशास्त्र-सम्मत विभाजन

तो वर्ग को ही लेकर किया जाता है। वर्ग मे भी प्रत्येक वर्ग का विभाजन नही किया जा सकता। सबसे छोटा उपवर्ग (Infima Species) ऐसा वर्ग है कि उसका बँटवारा छोटे वर्गो मे नही हो सकता, वह केवल व्यक्तियो मे बाँटा जा सकता है। परन्तु व्यक्तियो मे बँटवारा न्याय-सम्मत विभाजन नही माना जायगा। अस्तु, किसी व्यक्ति का, मिश्र समुदाय का तथा सबसे छोटे वर्ग का न्याय-सम्मत विभाजन नही हो सकता।

अध्याय ८ का सारांश

विभाजन (Division)

किसी वस्तु का जब उसके योजक अशो मे खड किया जाता है तब उस क्रिया को विभाजन कहा जाता है, विभाजन के तीन भेद हैं। (१) आवयविक विभाजन, (२) गुणाश्रित विभाजन, (३) वर्गाश्रित विभाजन।

आवयविक विभाजन मे किसी सम्पूर्ण वस्तु का उसके खडो मे विभाजन किया जाता है।

गुणाश्रित विभाजन मे मूलभूत गुणो को आधारभित्ति बनाकर विभाजन किया जाता है और तर्कसगत या वर्गाश्रित विभाजन मे मूल जाति को उसकी उप-जातियो मे विभाजित किया जाता है।

आवयविक और गुणाश्रित विभाजन व्यक्ति से सम्बन्ध रखते हैं किन्तु वर्गाश्रित विभाजन वर्ग से सम्बन्ध रखता है। वर्गाश्रित विभाजन मे विभाज्य वर्ग का नाम विभाजक वर्गो का विधेय बन जाता है किन्तु अन्य दोनो प्रकार के विभाजनो में विभाज्य वस्तु का नाम विभाजको का विधेय नही बन सकता।

वर्गाश्रित विभाजन के चार नियम हैं :—

१ प्रत्येक विभाजन की एक ही आधारभित्ति होनी चाहिए।

२ सभी उपवर्ग मिलकर विभाज्य वर्ग के बराबर होने चाहिए।

३ उपवर्ग आपस मे बहिर्भूत होते हैं।

४ वर्ग का उपवर्गो में विभाजन यथा-क्रम होना चाहिए।

द्विकोटिक विभाजन वह विभाजन है जिसमे एक वर्ग दो परस्पर विरोधी वर्गों मे विभाजित किया जाता है—जैसे, चेतन-प्राणी वर्ग को विवेकशील और अविवेकशील में विभाजित किया जाता है। द्विकोटिक विभाजन केवल आकारात्मक (Formal) विभाजन है। इसमें केवल एक ही विधेयात्मक वर्ग रहता है, दूसरा वर्ग उसका निषेधक मात्र होता है। इसलिए द्विकोटिक विभाजन वास्तविक विभाजन नही है।

विभाजन और लक्षण मे अन्योन्याश्रय का सम्बन्ध है। इसलिए एक दूसरे पर आधारित रहता है। विभाजन की उपयोगिता भी है। लक्षण से इसका सम्बन्ध होने के कारण यह भी पद के अर्थ को स्पष्ट करता है।

तर्कसम्मत विभाजन की सीमा भी है। किसी एक व्यक्ति या एक मिश्र समुदाय या सबसे छोटी उपजाति का वर्ग मे विभाजन नही हो सकता।

अध्याय ८ : अनुशीलन

१ विभाजन क्या है?

२ विभाजन कितने प्रकार के होते हैं?

३ आवयविक विभाजन, गुणाश्रित विभाजन और तर्कसगत (वर्गाश्रित) विभाजन में जो अन्तर है, उसे स्पष्ट करो।

४ आवयविक और तर्क-सम्मत (वर्गाश्रित) विभाजन मे जो अन्तर है उसकी व्याख्या करो।

५. तर्कसम्मत और गुणाश्रित विभाजन के अन्तर को समझाओ।

६ तर्कसम्मत विभाजन के नियमो की व्याख्या करो।

७ तर्कसम्मत विभाजन मे व्यतिक्रम के कारण कौन-सा दोष आ जाता है?

८ तर्कसम्मत विभाजन का उदाहरण दो।

९ उदाहरण देकर बतलाओ कि वर्गाश्रित (तर्कसम्मत) विभाजन मे क्रम की व्यवस्था शुद्ध कैसे रहती है?

१० द्विकोटिक विभाजन की व्याख्या करो। क्या यह वास्तव मे तर्कसम्मत विभाजन है?

११ द्विकोटिक विभाजन की त्रुटियो को वतलाओ।

१२. वर्गाश्रित या तर्कसम्मत विभाजन के क्या उपयोग है ?

१३ विभाजन और लक्षण मे जो सम्बन्ध है उसकी व्याख्या करो।

१४. विभाजन की सीमा क्या है ?

अध्याय ६

निर्णय-वाक्यों का तात्पर्य (Import of Proposition)

१. अर्थ और प्रसग-क्षेत्र (Meaning & Universe of Discourse)

निर्णय-वाक्य (Proposition) किसी प्रसग का वह अश है जिससे हम किसी वस्तु के सम्वन्ध मे कुछ तथ्य व्यक्त करते है। निर्णय-वाक्य शब्दो अथवा पदो से वनते है। ये पद, उद्देश्य, विधेय और सयोजक कहलाते है। निर्णय-वाक्यो का तात्पर्य इन्ही पदो पर निर्भर रहता है। क्योकि इन्ही पदो से निर्णय-वाक्य वनते है। जव कहा जाता है, "गुलाव सुन्दर होता है" तव इसका अवश्य कुछ तात्पर्य होता है। इस निर्णय-वाक्य का अर्थ 'गुलाव', 'सुन्दर' और होता है के अर्थ और वाक्यगत सम्वन्ध पर निर्भर करता है। वाक्य का तात्पर्य उसके प्रसग क्षेत्र पर भी निर्भर होता है। प्रसग-क्षेत्र वह प्रसग है जिसके अनुसार वाक्य व्यक्त किया जाता है। जिस दुनिया में हम रहते हैं वह कई गोलार्द्धों में वाँटी जा सकती है। इस पर वास्तविक पदार्थ और जीवो के अतिरिक्त काल्पनिक पदार्थो और जीवो के रहने की कल्पना भी की जाती है। इसलिए वास्तविक क्षेत्र के अतिरिक्त इसमे काल्पनिक क्षेत्र भी सम्मिलित है जिनमे कल्पना जगत् की सारी चीजे होती हैं। इनमे से प्रत्येक को एक

निर्णय-वाक्यो का अर्थ उन शब्दों पर निर्भर रहता है जिनसे निर्णय-वाक्य वनते है।

निर्णय-वाक्यो का अर्थ उस प्रसंग क्षेत्र पर भी निर्भर रहता है जिसके सम्वन्ध में निर्णय-वाक्य वनाया जाता है।

प्रसंग-क्षेत्र (Universe of Discourse) कहते है। इन्ही के सम्बन्ध मे वाक्य बनाये जाते है इसलिए वाक्यो का तात्पर्य बहुत अशों मे इन्ही प्रसग-क्षेत्रो पर निर्भर रहता है। "गुलाब सुन्दर है" यह वाक्य वास्तविक जगत् के प्रसग में बनाया गया है। परन्तु यदि कहा जाय "सेन्टार (Centaur) होते हैं" तो यह वाक्य हास्य सा ज्ञात होगा क्योकि सेन्टार के माने होते हैं मानवी घोडे। परन्तु मानवी घोडे कही मिलते नही। इसलिए जहाँ तक वास्तविक जगत का सम्बन्ध है यह वाक्य मिथ्या है। परन्तु काल्पनिक जगत मे अर्थात् पुराणो और कहानियो मे ऐसे जन्तुओ का जिक्र अवश्य आता है। इसलिए काल्पनिक जगत के प्रसग में यह वाक्य बिल्कुल सत्य है।

२. निर्णय-वाक्यो का तात्पर्य (Import of Proposition)

हम पहले बतला चुके है कि किसी अभिधेयकार्य या उद्देश्य-विधेय में सम्बन्ध-निर्णय कार्य को भाषा में व्यक्त करना निर्णय-वाक्य है। अभिधेय (Predicate) के मानी है किसी विषय या वस्तु के सम्बन्ध मे कुछ कहना। हम जो कुछ कहते है वह विधिरूपात्मक होता है या नकारात्मक होता है अर्थात् वाक्य द्वारा हम किसी वस्तु को स्वीकार करते है या अस्वीकार करते हैं। अभिधेय के स्थान मे यदि निर्णय (Judgment) को लिया जाय तो निर्णय वाक्य का तात्पर्य समझने मे सुविधा होगी। निर्णय मानसिक व्यापार है। इसलिए निर्णय (Judgment) की क्रिया, जो मानसिक व्यापार है, जब भाषा मे व्यक्त की जाती है तब वह निर्णय-वाक्य (Proposition) कहलाती है। इसलिए वाक्य के तात्पर्य का प्रश्न निर्णय की क्रिया के सिद्धान्त से घनिष्ट सम्बन्ध रखता है। अस्तु, निर्णय-वाक्य का तात्पर्य समझाने के लिए हमे निर्णय (Judgment) की व्याख्या करनी होगी। व्याख्या करने से हमे पता चलेगा कि वाक्य किसी वस्तु के सम्बन्ध में है या धारणा (idea)

निर्णय-वाक्य क्या है ?

उद्देश्य विधेय के सम्बन्ध-ज्ञान को भाषा मे व्यक्त करना निर्णय-वाक्य कहलाता है।

के सम्बन्ध मे। अब प्रश्न यह है कि वाक्य मे वस्तु का निर्देश किया जाता है या धारणा का? यदि वस्तु का ही निर्देश किया जाता है तो किस प्रकार की वस्तु का? कुछ विद्वानो का मत है कि वाक्य मे हम दो धारणाओ में अनुकूलता या प्रतिकूलता का निर्देश करते हैं। उनकी सम्मति है कि उद्देश्य पद एक धारणा के लिए और विधेय पद दूसरी धारणा के लिए काम मे लाया जाता है और निर्णय-वाक्य उन्ही की अनुकूलता या प्रतिकूलता का कथनमात्र है। परन्तु यह मत मिथ्या है। यदि हम इस मत को मान लेते है तब इस कथन का कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है', अर्थ होगा कि धारणा पृथ्वी परिक्रमा करती धारणा सूर्य की। किन्तु बात ऐसी है नही। जब कोई कहता है कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है तब वह दो धारणाओ को मन मे रखता अवश्य है। किन्तु कथन द्वारा उन धारणाओ के विषय मे वह कुछ कहना नही चाहता। धारणाओ द्वारा एक दूसरी का परिक्रमा कराना हास्यास्पद होगा। हम नाम की व्याख्या मे देख चुके है कि नाम वस्तु के होते है धारणाओ के नही। जब कथन मे प्रयुक्त नाम वस्तु के लिए हैं तब कथन भी वस्तु ही के लिये होगा, धारणा के लिए नही। निर्णय-वाक्य मे हम तथ्य का कथन करते है धारणाओ का नही। उनमे हम किसी वस्तु के सम्बन्ध मे प्रतीति या अप्रतीति व्यक्त करते है। परन्तु यह नही कहा जा सकता कि धारणाओ के सम्बन्ध मे तर्कसम्मत वाक्य कहा ही नही जा सकता। कहा जा सकता है, किन्तु उस समय धारणा भी तथ्य मे परिणत हो जाती है जैसे, "धारणा बिम्ब है"। बहुत से न्यायशास्त्र के विद्वान् यह मानते है कि वाक्य मे धारणाओ का कथन नही किया जाता। किन्तु जब वे निर्णय-वाक्य की व्याख्या करते है तब भिन्न-भिन्न मत उपस्थित करते है। इन भिन्न-भिन्न मतो को यहाँ पर छ शीर्षको मे विभक्त किया जाता है। इनके अनुसार उद्देश्य विधेय के बीच सम्बन्ध निर्णय करनेवाले छ मत होते है।

निर्णय-वाक्य में किस का निर्देश रहता है, धारणा का या तथ्य का?

निर्णय-वाक्यो में तथ्य का निर्देश रहता है, धारणाओ का नही।

(अ) हॉब्स का मत (Hobbe's View) :—हॉब्स के अनुसार निर्णय-वाक्य में जो कुछ हम कहते हैं उससे उद्देश्य पद और विधेय पद में अभिन्नता व्यक्त होती हैं। यानी हॉब्स के अनुसार उद्देश्य पद और विधेय पद एक ही वस्तु है। यदि कहा जाय "स है प" तो हॉब्स के अनुसार स और प एक ही वस्तु के नाम होगे। यह तो हुआ साकेतिक उदाहरण। अब व्यावहारिक उदाहरण लिये जाते हैं। इनसे पता चल जायगा कि हॉब्स का मत ठीक है या नही। "यह दीवार छ फीट ऊँची है"। "आकाश नीला है।" "सूर्य आकाश मे चढ आया है।" ये तीन कथन है। अब देखना है कि इनमें उद्देश्य पद और विधेय पद क्या एक ही वस्तु के नाम है ?

"यह दीवार छः फीट ऊँची है।" इस वाक्य मे 'दीवार' और "छः फीट ऊँची" दोनो एक वस्तु के नाम नही हो सकते। यदि ऐसा होता तो छ· फीट ऊँची का अर्थ होता दीवार। किंतु छ· फीट ऊँची का अर्थ दीवार नही होता, वरन् इससे उस वस्तु की ओर सकेत होता है जिसकी ऊँचाई छ फीट है। शब्द-समूह "छः फीट ऊँची" विशेषण है। यह एक ऐसी वस्तु का द्योतन करता है, जिसकी ऊँचाई छः फीट है। जिस वस्तु का यह शब्द समूह द्योतन करता है वह सदैव दीवार ही हो, यह आवश्यक नही है। दूसरी वस्तुएँ भी छ. फीट ऊँची हो सकती है और जिन वस्तुओ मे छ फीट ऊँची होने का गुण होगा, उन सबके लिए इस विशेषण का प्रयोग होगा। इसलिये हमे इन दो बातो मे जो अन्तर है उसे भली-भाँति समझ लेना चाहिए। ये बाते है—(१) पद वा नाम जो किसी प्रसग मे किसी वस्तु का गुण बतलाने के लिये प्रयुक्त होता है, और (२) पद वा नाम जो किसी वस्तु का नाम होता है। इस भिन्नता को न समझने के कारण ही हॉब्स ने ऐसा भ्रामक मत व्यक्त किया है। यदि 'आकाश' और 'नीला' एक ही वस्तु का नाम माना जाय तो सिवा हँसी के और कुछ नही होगा। इसी प्रकार 'सूर्य' और 'चढ आया' को भी एक मानना हास्यास्पद होगा। अगर 'आकाश' और 'नीला' तथा 'सूर्य और 'चढ आया' एक ही वस्तु के नाम होते तो एक ही अर्थ रखते और एक ही वस्तु की ओर सकेत करते। पर ऐसा नही है। इसलिये हॉब्स का मत भ्रमपूर्ण है।

इन वाक्यों मे, "पतग ऊँचे आसमान मे है", "सूर्य ऊँचे आसमान में है" "वायुयान ऊँचे आसमान मे है"; "ऊँचे आसमान में" विधेयपद है और यह विधेय तीन भिन्न-भिन्न वाक्यो मे तीन भिन्न-भिन्न वस्तुओ के लिये प्रयुक्त हुआ है। यदि यह सत्य है कि एक वाक्य मे हम एक वस्तु को दो नाम देते है तो पद, 'ऊँचे आसमान में', तीनो वाक्यो के तीनो पदो का पर्यायी होगा। अर्थात् पतग, सूर्य और वायुयान का पर्यायी होगा। पर्यायी एक-दूसरे के बदले में आते हैं। परन्तु कोई सोच भी नही सकता कि "ऊँचे आसमान मे" पतग, सूर्य और वायुयान के बदले व्यवहार मे आ सकता है। इसलिये हॉब्स का यह कहना कि वाक्य में हम एक वस्तु को दो नाम देते है, सर्वथा अनुपयुक्त है।

परन्तु ऐसे भी वाक्य पाये जाते हैं, जहाँ हॉब्स का मत सगत सिद्ध होता है। जैसे वे वाक्य जिनमे एक ही वस्तु के लिये अनेक नाम आते है या जिन वाक्यो मे एक ही वस्तु के दो नाम रहते है। जैसे "टली है सिसरो"। "महात्मा है गान्धी"। "नरेन है स्वामी विवेकानन्द।" इन वाक्यो मे उद्देश्य विधेय स्थानान्तरित हो सकते है। अर्थात् हम कह सकते है कि सिसरो है टली। गान्धी है महात्मा और स्वामी विवेकानन्द है नरेन। ऐसी स्थिति में हॉब्स का मत संगत है, परन्तु इसके अतिरिक्त अन्य स्थितियो मे वह असगत है।

(ब) **वाच्यार्थ सम्बन्धवाद** (The Denotative View) —कुछ नैयायिक उद्देश्य और विधेय के वाच्यार्थों को लेते है और कहते है कि ये परस्पर अन्तर्भूत या वहिर्भूत है, इसी सम्बन्ध का निर्देश करना वाक्य का प्रयोजन है। इस वाद को वाच्यार्थ सम्बन्धवाद कहते है। 'मनुष्य मरणशील है।' यह एक वाक्य है। इस वाद के अनुसार मनुष्य पद का तात्पर्य है मनुष्य वर्ग और मरणशील का तात्पर्य है मरणशील वर्ग और वाक्य द्वारा यह निर्देश होता है कि मनुष्य वर्ग अन्तर्गत है मरणशील वर्ग के। यदि वाक्य निषेधात्मक है तो जिस सम्बन्ध का निर्देश होता है वह वहिर्भूत होता है। यदि कहा जाय 'मनुष्य पूर्ण नही है' तो मनुष्य वर्ग, पूर्ण वर्ग से वहिर्भूत समझा जायगा।

इस मत के विरुद्ध मिल ने आक्षेप किये है। (१) मिल का कहना है कि

वर्ग की न निश्चित सीमा है न सख्या । वर्ग की सख्या घटती-बढती रहती है । इसमे कुछ नये व्यक्ति आते है तो कुछ पुराने जाते भी है, गोकि वर्ग वही रहता है । परन्तु वर्ग का निश्चित क्षेत्र नही रहता । वर्ग की धारणा अनिश्चित सख्यावाले व्यक्तियो मे सर्वनिष्ठ गुण या गुणो पर अवलम्बित रहती है । परन्तु जो क्रिया केवल विस्तार बतलाती है वह गुण का ज्ञान कैसे करा सकती है ? और जबतक हम वर्गो के गुण से परिचित न हो जायँ तब तक हम एक वर्गको दूसरे के अन्तर्गत या बहिर्गत कैसे रख सकते है ? जब तक हम यह न जान ले कि वस्तु सफेद है तब तक हम उसे सफेद वस्तुओ की श्रेणी मे कैसे रख सकते है । अस्तु यह मत जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन करना चाहता है उसी का निषेध करता है ।

(२) दूसरा आक्षेप मिल करते है, और ठीक ही करते है, कि वाच्यार्थ सम्बन्ध-वाद मे और हॉब्स के वाद मे कोई अन्तर नही है । "फलातू एक दार्शनिक है ।" इस कथन का जब हम वाच्यार्थ-सम्बन्ध-वाद के अनुसार अर्थ ग्रहण करते है तब हम फलातू व्यक्ति को दार्शनिक वर्ग के अन्तर्गत रखते है । अर्थात् दार्शनिक की सज्ञा जो कि दार्शनिक वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति को दी जाती है, फलातू को भी दी जाती है, यानी फलातू और दार्शनिक एक ही व्यक्ति के दो नाम है । हम पहले देख चुके है कि यही हॉब्स का मत है । हॉब्स का मत पहले अस्वीकार किया गया है, इसलिये वाच्यार्थ-सम्बन्ध-वाद भी अस्वीकार करना होगा ।

(३) इसके अतिरिक्त ऐसे भी वाक्य है, जिनका तात्पर्य वाच्यार्थ-सम्बन्ध-वाद के अनुसार नही समझा जा सकता—जैसे, सेब जमीन पर गिरता है । स्मिथ बेंच पर खडा है । अ, ब की दाहिनी ओर है । 'जमीन पर गिरता है' । 'बेंच पर खडा है ।' 'ब की दाहिनी ओर है' आदि पदो से कोई वर्ग सूचित नही होता । इन वाक्यो मे उद्देश्य और विधेय पदो का परस्पर अन्तर्भूत होने की कोई सूचना नही मिलती । इसलिये हम वाच्यार्थ-सम्बन्ध-वाद को अस्वीकार करते है ।

(स) गुणद्योतकवाद (The Connotative View):—इस मत

के अनुसार दो गुणों या दो गुण समूहो के मध्य निर्णय वाक्य सम्बन्ध बतलाता है। जो इस मत के समर्थक है वे उद्देश्य पद और विधेयपद के गुण-द्योतन (Connotation) से जिन गुणो का बोध होता है उनकी स्थिति एक साथ मानते है। जैसे इस वाक्य मे, "मनुष्य मरणशील है", मनुष्य पद से मनुष्यता और मरणशील पद से मरणशीलता का बोध होता है, इसलिये उनके अनुसार मनुष्यता और मरणशीलता एक साथ रहती है। अर्थात् जहाँ कहीं मनुष्यता रहेगी वहाँ मरणशीलता भी अवश्य रहेगी। निषेधात्मक वाक्य मे इस सम्बन्ध का अभाव बतलाया जाता है। जैसे कोई मनुष्य पूर्ण नही है' का तात्पर्य यह बतलाया जाता है कि मनुष्यता और पूर्णता मे कोई सम्बन्ध नही है।

इस मत मे सत्य का कुछ अश है। पूर्ण-व्याप्ति वाले निर्णय वाक्यो मे यह मत घटित होता है क्योकि सामान्य पद (General Term) का अर्थ किसी गुण वा गुण समूहो द्वारा ही गृहीत होता है। उससे किसी व्यक्ति-विशेष की ओर सकेत व्यक्त नही होता। ऊपर के उदाहरण मे मनुष्य पद से किसी व्यक्ति विशेष की ओर सकेत नही होता, बल्कि उससे सम्पूर्ण मनुष्य वर्ग का बोध होता है। मनुष्य पद मनुष्य वर्ग का नाम होने के कारण प्राणीत्व और विवेकशीलता के गुणों का द्योतन करता है। जिन्हे मनुष्य वर्ग के सभी लोग धारण करते है। इसलिये मनुष्य पद सकेत करता है उस व्यक्ति की ओर जिसमे विवेकशीलता और प्राणीत्व है। इसलिये यह स्पष्ट है कि "मनुष्य मरणशील है" का तात्पर्य गुण-द्योतक मत के जरिये समझने में आसानी होगी।

किन्तु इसका मतलब यह नही है कि प्रत्येक निर्णय-वाक्य (Proposition) में गुणो का ही सम्बन्ध बतलाया जाता है। ऐसे वाक्यो की सख्या बहुत बडी है जिनका अर्थ गुण-द्योतक मत की रीति द्वारा नही समझा जा सकता। जैसे, "यह एक पक्षी है"। "दार्जिलिंग कलकत्ते के उत्तर है"। "ब, स की बाई ओर है आदि ऐसे वाक्य है जिनमे हम उद्देश्य और विधेय के गुणो की सहस्थिति नही दिखला सकते, न गुणो का अन्य प्रकार से ही सम्बन्ध दिखला कर वाक्य का तात्पर्य समझा सकते है।

(द) सम्मिलित श्रेणी और गुणवाद या समन्वयवाद (The Comprehensive View or Denotative-Connotative View) :— यह मत कोई नया मत नही है। यह वाच्यार्थ-सम्बन्ध-द्योतक और गुण-सम्बन्ध-द्योतक दोनो का योग है। इस मत के अनुसार उद्देश्य और विधेय पद वाच्यार्थ द्योतन और गुण द्योतन दोनो अर्थ मे लिये जाते है। 'मनुष्य मरणशील हैं' वाक्य का अर्थ इस मत के अनुसार नाम-व्याप्ति या वाच्यार्थ और गुणबोधन या गुणद्योतन दोनो रीतियो से समझा जा सकता है। पहली रीति के अनुसार इस वाक्य का अर्थ होगा कि मनुष्य वर्ग मरणशील वर्ग के अन्तर्गत है। दूसरी रीति के अनुसार इस वाक्य का अर्थ होगा कि मनुष्यता और मरण-शीलता मे सहस्थिति है। इस मत की व्याख्या करने की आवश्यकता नही है। यह मत वाच्यार्थ सम्बन्धवाद और गुण-सम्बन्धवाद का योग है, इसलिये दोनो के दोषो से युक्त है।

(य) द्रव्य गुणवाद (Predicative View) :—इस मत के अनुसार निर्णय-वाक्य मे किसी वस्तु या वस्तुवर्ग का गुण वर्णन किया जाता है, यानी वस्तु या वस्तु वर्ग की विशेपता बतलाई जाती है। यह मत साधारण वुद्धि के अनुकूल है; इसलिये साधारण मत कहा जाता है। यह सत्य है कि सामान्यत जीवन में हम जिन वाक्यो का प्रयोग करते हैं, उनमें से अधिकाश वस्तुओ के गुण अथवा विशेषण ही बतलाते हैं। इसी से कुछ तर्कशास्त्रियो ने यह मत निर्धारित कर लिया कि सभी वाक्य द्रव्य का गुण ही बतलाते है। हर वाक्य में उद्देश्य और विधेय होते है। इस मत के समर्थको का कहना है कि विधेयपद सदैव विशेपण ही होता है। विशेषण से गुण का द्योतन होता है और द्रव्य का सकेत होता है, जिसमें वह गुण पाया जाता है; जैसे, सफेद एक विशेषण हैं। यह सफेदी, एक गुण का द्योतन करता है और सफेद द्रव्य का जिसमे वह गुण पाया जाता है, सकेत करता है। इसीलिये यह मत निर्धारित कर लिया गया कि प्रत्येक निर्णय-वाक्य में हम उद्देश्य को विशेषण से विशेषित करते है।

इस मत में भी कुछ कठिनाइयाँ है। विधेय, और विधेय और उद्देश्य के

मध्य का सम्बन्ध दो पृथक् बाते है। 'इसी पृथकता को न समझने के कारण इस मत की उत्पत्ति हुई। वाक्य मे किसी वस्तु के सम्बन्ध मे जो कुछ हम कहते है, वह विधेय होता है। परन्तु जो कुछ हम कहते है वह सदैव विशेषण ही नही होता। बहुत से अवसरो पर वह अवश्य विशेषण होता है, परन्तु सभी अवसरों पर वह विशेषण नही होता। निर्णय-वाक्य की परिभाषा मे बतलाया गया है कि निर्णय-वाक्य प्रसग का वह अंश है जिसमे हम किसी वस्तु के सम्बन्ध मे कुछ कहते है। इस परिभाषा से हम यह निष्कर्ष तो नही निकाल सकते कि जो-कुछ हम किसी वस्तु के बारे में कहते है, वह विशेषण ही होता है। कुछ वाक्यो मे जैसे "यह चिडिया पीली है", "सोना वजनी होता है," "राम बुद्धिमान है", "दूध सफेद है", हम अवश्य उद्देश्य का विशेषण बतलाते है। किन्तु ऐसे भी बहुत से वाक्य है, जिनकी व्याख्या इस ढग से हम नही कर सकते जैसे—"अ है ब की दाहिनी ओर", "ब है स के बराबर", "पुस्तक है मेज पर", "बिजली चमकने से घोष होता है"। इनमे हम किसी वाक्य मे उद्देश्य का विशेषण नही बतलाते। इन सबमे हम गुण न बतला कर सम्बन्ध बतलाते है। सम्बन्ध और गुण एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न है। गुण तो वस्तु मे व्याप्त रहता है। जैसे दूध में सफेदी व्याप्त रहती है। किन्तु सम्बन्ध व्यक्त करने के लिये कम से कम दो वस्तुओ या तथ्यो की आवश्यकता पडती है। ऊपर के वाक्य में बराबरी का सम्बन्ध व्यक्त करने के लिये ब और स दो व्यक्तियो की आवश्यकता पडी है। इसलिये सम्बन्ध इनमें से किसी एक का ही गुण नही कहा जा सकता। ऊपर के वाक्यो में—"ब की दाहिनी ओर" शब्द समूह 'अ' का कोई गुण नही बतलाता, न "स के बराबर" 'ब' का कोई गुण बतलाता है। ये शब्द-समूह पूरे अर्थ नही देते। वे तभी सार्थक होते है, जब वे उस वाक्य मे प्रयुक्त होते है जिसके वे अश है और यह ऐसा इसलिये है कि हम उक्त दोनो वाक्यो में दो तथ्यों मे सम्बन्ध बतलाते है।

यदि किसी वाक्य मे दो वस्तुओ के मध्य सम्बन्ध बतलाया जाय, तो उससे उस वाक्य के उद्देश्य और विधेय की भिन्नता पर कोई आघात नही होता। उद्देश्य वही होता है जिसके बारे मे हम कुछ कहते है और विधेय वही होता है

जो-कुछ हम उद्देश्य के बारे में कहते हैं। "अ है ब की दाहिनी ओर," इस वाक्य में हम सदैव 'अ' के विषय में ही कुछ कहते हैं। इसलिये 'अ' उद्देश्य है और "ब की दाहिनी ओर" विधेय है क्योंकि यही हम 'अ' के विषय में कहते हैं। यह विधेय 'अ' का कोई गुण नहीं बतलाता, केवल सम्बन्ध व्यक्त करता है। 'दाहिनी ओर' सम्बन्ध तभी व्यक्त हो सकता है जब 'अ' और 'ब' दोनों का कथन होता है। इस वाक्य में "अ है ब की दाहिनी ओर," हम 'अ' और 'ब' के मध्य सम्बन्ध बतलाते हैं, अ का विशेषण नहीं बतलाते। जिस वाक्य में हम सम्बन्ध बतलाते हैं, उसमें गुण नहीं बतलाते यद्यपि उस वाक्य में भी विधेय होता है। इसलिये विधेय सदैव विशेषण नहीं होता। अस्तु द्रव्य-गुण-वाद (Predicative View) प्रत्येक अवसर पर सत्य नहीं होता।

(फ) सापेक्षवाद (The Equational View) —इस मत के अनुसार वाक्य के उद्देश्य और विधेय पद परिमाण में सानुपातिक होते हैं अर्थात् उद्देश्य से व्यक्तियों की जिस संख्या का बोध होता है विधेय से भी उसी संख्या का बोध होता है। इस मत के अनुसार व्याख्या करने से "सब मनुष्य मरणशील हैं" का अर्थ होगा कि 'सब मनुष्य हैं कुछ मरण-शील' यानी सब मनुष्य बराबर हैं कुछ मरणशील के।

आलोचना —(१) पहली बात तो यह है कि प्रत्येक तर्कसम्मत वाक्य में हम उद्देश्य और विधेय के मध्य समानुपात का ही वर्णन नहीं करते।

(२) दूसरी बात यह है कि ऐसे अनगिनत वाक्य हैं जिनकी व्याख्या इस मत के द्वारा नहीं की जा सकती। अगर कहा जाय "यह टेबुल भूरा है" तो 'टेबुल' और 'भूरा' पदों से एक ही व्यक्ति नहीं समझा जा सकता। "भूरा" पद का 'टेबुल' पद से सम्बन्ध अवश्य है, किन्तु 'भूरा बराबर टेबुल के' ऐसा न कोई कह सकता है न कोई मान सकता है।

(३) तीसरी बात यह है कि यदि हम इस मत का भली-भाँति निरीक्षण करते हैं तो देखते हैं कि यह मत वाच्यार्थ सम्बन्धवाद (The Denotative View) और हॉब्स के मत से भिन्न नहीं है।' "सब मनुष्य मरणशील

है।" सापेक्ष मत के अनुसार इस वाक्य का अर्थ होता है, 'सब मनुष्य हैं कुछ मरणशील', यानी मनुष्य वर्ग मरणशील वर्ग के अन्तर्गत है, किन्तु यही वाच्यार्थ सम्बन्धवाद है। 'वाच्यार्थ-सम्बन्धवादकी त्रुटियाँ पहले ही बतला दी गई हैं। इसलिये उनके दुहराने की आवश्यकता नही। हॉब्स के मत की भी त्रुटियाँ बतला दी गई हैं। किन्तु सापेक्ष मत तो हॉब्स के मत से भी गया गुजरा मत है।

अध्याय ९ का सारांश

उद्देश्य और विधेय मे सम्बन्ध-सूचक दो प्रधान मत हैं। उनमे से एक के अनुसार प्रत्येक निर्णय वाक्य (Proposition) दो धारणाओ के बारे में कथित होता है और उनके मध्य सम्बन्ध बतलाता है। दूसरे मत के अनुसार प्रत्येक निर्णय-वाक्य (Proposition) तथ्यो के बारे मे कथित होता है, धारणाओ के बारे मे नही। हमने इन पर विस्तारपूर्वक विचार किया है और दूसरे मत को स्वीकार किया है तथा उसको स्वीकार करने के लिये यथेष्ठ कारण भी बतलाया है। किन्तु बहुत से नैयायिक जो इस मत के समर्थक हैं वे तथ्य के प्रकृत अर्थ के सम्बन्ध में मतभेद रखते हैं। इनमे से बहुत से मतो पर हमने विचार किया है और देखा है कि इनमें से प्रत्येक एकागी है। इनमे से किसी की नीव निर्णय-वाक्यों की पर्याप्त व्यापकता की व्याख्या पर नही डाली गई है।

भिन्न-भिन्न प्रकार के निर्णय वाक्य भिन्न-भिन्न प्रकार के तथ्यों का निर्देश करते हैं।

अधिकाश नैयायिक यही मानते हैं कि निर्णय वाक्यो मे तथ्यो का ही कथन रहता है। किन्तु प्रत्येक वाक्य मे एक ही प्रकार के तथ्यों का कथन नही रहता। ससार में विभिन्न प्रकार की वस्तु, विभिन्न प्रकार के गुण और सम्बन्ध होते है। वाक्यो में इन सब का कथन रहता है। इसलिये विषय की व्यापकता के कारण वाक्य भी व्यापक और भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। किसी में अस्तित्व, किसी में गुण और किसी मे सम्बन्ध आदि का कथन रहता है।

अध्याय ९ : अनुशीलन

१. निर्णय-वाक्य (Proposition) क्या है?

२. निर्णय-वाक्य किसके बारे मे होते हैं, तथ्यो के या धारणाओ के?

३ निर्णय वाक्यो का अर्थ-विधान वर्णन करो।
४ अभिधेयो (Predicables) के अर्थ के सिद्धान्तो की व्याख्या करो।
५ हॉब्स का मत है कि उद्देश्य-नाम और अभिधेय-नाम एक ही वस्तु के नाम है। क्या तुम इस मत से सहमत हो ?
६ अभिधान-विधान (Predication) के नाम-व्याप्ति विषयक दृष्टि-कोण (Denotative View) की आलोचनात्मक व्याख्या करो।
७ क्या यह कहना ठीक है कि नाम-व्याप्ति-विषयक दृष्टिकोण मे और हॉब्स के दृष्टिकोण मे कोई अन्तर नहीं है ?
८. गुण-व्याप्ति-विषयक (Connotative View) की व्याख्या करो।
९. अभिधेयात्मक (Predicative) दृष्टिकोण की व्याख्या करो। क्या तुम समझते हो कि तुम सब तरह के निर्णय-वाक्यो की इनके अनुसार व्याख्या कर सकते हो ?
१० "निर्णय-वाक्य में हम उद्देश्य और विधेय के मध्य समानता के सम्बन्ध का निर्देश करते है।" क्या इस मत के मानने मे कोई कठिनाई है ? इस पर भली-भाँति प्रकाश डालो

अध्याय १०

निर्णय वाक्यों में प्रकारान्तर

भिन्न-भिन्न नैयायिको ने भिन्न रीति से और भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों के अनुसार निर्णय वाक्यो मे प्रकारान्तर बतलाया है, परन्तु परम्परा से जो विभाजन की रीति मानी गई है वह नीचे दी जाती है और हम इसी से व्याख्या का काम आरम्भ करते हैं।

निर्णय वाक्यो मे प्रकारान्तर

१ निर्माण के अनुसार { सरल (Simple) स है प, र नहीं है स
यौगिक (Compound) स और प है क
न तो स और न प हैं क

२. सम्बन्ध के अनुसार — निरपेक्ष (Categorical) स है प, स नही है प
सापेक्ष (Conditional) { अनुमानाश्रित (Hypothetical) — यदि अ है ब तो स है द
वैकल्पिक (Disjunctive) — अ या है ब या स।

३. गुण के अनुसार { विधिवाचक (Affirmative) स है प
निषेधवाचक (Negative) स नही है प

४. व्याप्ति के अनुसार { सर्वव्याप्तिमय (Universal) सब स है प, कोई स नही है प
अल्प व्याप्तिमय (Particular) कुछ स है प, कुछ स नही है प

५. रूप-विधि (Modality) के अनुसार { निश्चयवाचक (Necessary) प अवश्य है क,
निर्देशवाचक (Assertory) प है क
सम्भाव्यवाचक (Problematic) प हो सकता है क

६ अर्थबोधन के अनुसार { शाब्दिक (Verbal) मनुष्य विवेकशील है।
वास्तविक (Real) यह वृक्ष हरा है।

१. निर्माण के अनुसार . सरल और यौगिक निर्णय वाक्य

(अ) सरल निर्णय वाक्य (Proposition) उसे कहते है, जिसमें सरल तथ्य का कथन रहता है, इसमे केवल एक ही उद्देश्य और एक ही विधेय रहता है। इसमें हम एक विधेय द्वारा एक उद्देश्य का प्रतिपादन या प्रतिवाद करते है। "जैसे दूध सफेद है", "यह मेज भूरी नही है", पहले मे विधेय प्रतिपादक है और दूसरे मे प्रतिवादक या निषेधक।

(ब) इसके प्रतिकूल यौगिक निर्णय वाक्य में एक से अधिक उद्देश्य या एक से अधिक विधेय होते है या दोनो एक से अधिक होते है, जैसा कि यौगिक शब्द से प्रकट होता है, यौगिक निर्णय वाक्य में दो या दो से अधिक निर्णय वाक्यो का योग रहता है, जैसे—"सोना पीला और वजनी होता है", "घोडे और गाये उपयोगी

जानवर है", "सीजर मर गया है पर ब्रूटस जीवित है।" इनमे पहले मे दो विधेय और एक उद्देश्य है यह दो निर्णय वाक्यो से अर्थात् सोना पीला है और सोना वजनी है के योग से बना है। दूसरे मे दो उद्देश्य है और एक विधेय, यह निर्णय वाक्य, घोडे उपयोगी जानवर है और गाए उपयोगी जानवर है के योग से बना है। तीसरे निर्णय वाक्य में दो उद्देश्य और दो विधेय है, सीजर और ब्रूटस दो उद्देश्य है और मर गया है और जीवित है ये दो विधेय है, यह निर्णयवाक्य सीजर मर गया है और ब्रूटस जीवित है के योग से बना है।

बहुत से नैयायिक यौगिक निर्णय वाक्य के तीन भेद भी बतलाते है, इनके नाम है सयोजक निर्णय वाक्य, पार्थक्यसूचक निर्णय वाक्य और अतिरेकसूचक निर्णय वाक्य।

सयोजक निर्णय वाक्यो मे विधिवाचक निर्णय वाक्यो का साधारण योग रहता है, जैसे—अ है ब और स। पार्थक्यसूचक (Remotive) निर्णय वाक्यो में निषेधवाचक निर्णय वाक्यो का योग रहता है। जैसे—अ न तो प है न क। अतिरेकसूचक (Discretive) निर्णय वाक्यो मे 'किन्तु', 'परन्तु' आदि शब्दो से युक्त दो विधिवाचक निर्णयवाक्यो का योग रहता है। इनके अतिरिक्त कुछ नैयायिक एक और निर्णय वाक्य का जिक्र करते है, वे इसे इक्सपोनिबुल (Exponible) निर्णय वाक्य कहते हैं। इसके भी दो भेद माने जाते हैं :— बहिर्भूत (Exclusive) और अपवाद भूत (Exceptive)। (१) केवल ग्रैजुएट पद के योग्य हैं (२) समाजवादियो को छोडकर सभी सदस्य सभा मे उपस्थित थे, इनमे पहला निर्णय वाक्य केवल सरल निर्णय वाक्य है, पर दूसरा निर्णय वाक्य यौगिक निर्णय वाक्य है और इक्सपोनिबुल (Exponible) निर्णय वाक्य वह वाक्य है जो देखने मे सरल किन्तु अर्थ मे यौगिक होता है। इनके अतिरिक्त स्पष्ट उक्त (Explicit) और अस्पष्ट उक्त (Primitive) निर्णय वाक्य भी माने जाते है। ये सरल निर्णय वाक्यो के ही भेद माने जाते हैं। जैसे—"आग लगी है", "वह भाग गया है" आदि को स्पष्ट उक्त कहते है और "आग", "भाग गया" आदि को अस्पष्ट उक्त निर्णय वाक्य कहते है। इनमे अन्तर केवल आकार का रहता है, दूसरे मे उद्देश्य और विधेय रहते अवश्य है, पर स्पष्ट

उक्त नही रहते। इसमे जो कुछ कहा जाता है वह एक ही शब्द द्वारा व्यक्त किया जाता है। पहले मे उद्देश्य और विधेय दोनो स्पष्ट उक्त रहते है, इसमें जो कुछ कहा जाता है वह पूरे वाक्य द्वारा व्यक्त किया जाता है। अर्थात् उसमे उद्देश्य, विधेय और सयोजक तीनो ही उक्त रहते है।

२. **यौगिक (Compound) निर्णय वाक्य एक निर्णय वाक्य नहीं होता।** लक्षण से व्यक्त है कि यौगिक निर्णय वाक्य एक निर्णय वाक्य नही होता उसमें कई समवाक्य सयुक्त होते है। जिस प्रकार किसी समूह को एक नही कहा जा सकता उसी प्रकार यौगिक को भी एक नही कहा जा सकता, क्योकि 'एक टोकरे भर आम' और 'एक आम' का एक ही अर्थ नही हो सकता। मिल (Mill) के कथनानुसार, "हम एक यौगिक निर्णय-वाक्य को एक निर्णय-वाक्य उसी तरह कह सकते है जिस तरह सडक पर के सब मकानो को एक मकान।" सड़क पर एक मकान नही होता वल्कि मकानो की एक पक्ति होती है। वे सब मकान आपस में जुडे हुए अवश्य होते है, पर इससे वे एक नही हो सकते।

परन्तु ग्रथित (Complex) निर्णय वाक्य एक वाक्य हो सकता है। जिस वाक्य मे हम ग्रथित तथ्यो का निर्देश करते है, वह वाक्य ग्रथित निर्णय-वाक्य है, जैसे—"देर मे आने के कारण वह आदमी उस गाडी को पकडने के लिए जो अभी छूट गई, बेतहाशा दौडता है।" "क्षणिक सुख के लिए वह कठिनाई से अर्जित अपना धन नष्ट कर रहा है।" ये दोनो ग्रथित निर्णय-वाक्य है। इन दोनो में विधेय एक न होकर अनेक है और एक ग्रन्थि में युक्त है। वाक्यो मे कथित तथ्यों द्वारा ही इस अन्तर का बोध होता है।

२. सम्बन्ध के अनुसार निर्णय वाक्य : निरपेक्ष और सापेक्ष (अनुमानाश्रित और वैकल्पिक निर्णय वाक्य

(अ) **निरपेक्ष (Cotegorical) निर्णय-वाक्य**.—निरपेक्ष निर्णय-वाक्य वह वाक्य है जिसमे विना अन्य वस्तु या विषय की अपेक्षा के किसी वस्तु या विषय का स्वतत्र रूप से कथन रहता है। जैसे—आसमान नीला है, वह वृक्ष हरा है, यह पुस्तक मेज पर है। पहले वाक्य से 'आसमान का नीला होना', दूसरे

से 'वृक्ष का हरा होना' और तीसरे से 'पुस्तक का मेज पर होना' जाना जाता है । इनके लिए हमे किसी अन्य ज्ञान का मुखापेक्षी नही बनना पड़ता । तात्पर्य यह कि निरपेक्ष निर्णय वाक्य मे उद्देश्य या अनुवाद्य के लिए ऐसा विधेय रहता है जो अन्य किसी की अपेक्षा नही करता ।

(ब) सापेक्ष (Conditional) निर्णय वाक्य अनुमानाश्रित (Hypothetical) और वैकल्पिक (Disjunctive) निर्णय वाक्य —निरपेक्ष निर्णय-वाक्य के प्रतिकूल अनुमानाश्रित और वैकल्पिक निर्णय-वाक्य सापेक्ष माने जाते है। निरपेक्ष निर्णय वाक्य में अपेक्षारहित वस्तु-निर्देश रहता है किन्तु सापेक्ष-निर्णय-वाक्य मे वस्तुनिर्देश अपेक्षायुक्त रहता है। अनुमानाश्रित निर्णय-वाक्य; 'यदि', 'तो' आदि से आरम्भ होता है। वैकल्पिक निर्णय वाक्य, 'अथवा', 'या' इत्यादि से। जैसे—'यदि अ है ब तो स है द', एक अनुमानाश्रित निर्णय-वाक्य है और 'अ है ब या स', एक वैकल्पिक निर्णय-वाक्य है। अनुमानाश्रित निर्णय वाक्य में तो अपेक्षा स्पष्ट है किन्तु वैकल्पिक निर्णय-वाक्य मे वह नही दिखाई देती, फिर इसे सापेक्ष क्यो कहा जाता है ? इसे सापेक्ष इसलिए कहा जाता है कि यह निर्णय-वाक्य कई अनुमानाश्रित निर्णय-वाक्यो के योग से बना हुआ माना जाता है और चूंकि अनुमानाश्रित वाक्य सापेक्ष होते है इसलिए वैकल्पिक वाक्य सापेक्ष माने जाते है।

अनुमानाश्रित (Hypothetical) निर्णय वाक्य सापेक्ष क्यो ?

सापेक्ष कथन का ठीक-ठीक अर्थ क्या है ? हम कोई बात कहते हैं तो उसे कहते है ; नही कहते तो नही कहते। इसके अतिरिक्त क्या कोई अन्य वस्तु भी बीच मे सम्भव है ? क्या कोई कथन सापेक्ष भी हो सकता है ? "यदि अ है ब तो स है द" मे दो टुकडे हो सकते है। एक है, "अ है ब" और दूसरा है, "स है द।" ये दोनो टुकडे, 'यदि' और 'तो' से जुडकर एक निर्णय-वाक्य बनाते है। इनमें पहला पूर्वपक्ष (Antecedent) और दूसरा उत्तरपक्ष (Consequent) कहलाता है। इनको पूर्ववर्ती और अनुवर्ती भी कह सकते है। अनुवर्ती निर्भर रहता है पूर्ववर्ती पर। इसलिए यदि हम चाहे कि अकेले पूर्ववर्ती या अनुवर्ती को लेकर कोई तात्पर्य निकालें तो नही निकाल सकते। बिना पूरे वाक्य

के तात्पर्य नही निकल सकता। 'स' का 'द' होना निर्भर करता है 'अ' के 'ब' होने पर। यह इस वाक्य का तात्पर्य है। इसलिए 'स' का 'द' होना सापेक्ष कहा जाता है। स्पष्ट है कि किसी बात को सापेक्ष कहना उसकी अपेक्षाओं का वर्णन करना है। ये अपेक्षाये 'यदि', 'तो' आदि के द्वारा व्यक्त की जाती है।

परन्तु हम यह नही कह सकते कि सापेक्ष कथन अपने नई भी सापेक्ष होता है।

सापेक्ष कथन स्वयं सापेक्ष नहीं होता।

अर्थात् जब हम कहते है, "यदि 'अ' है 'ब', तो 'स' है 'द'" तब हम सीधी एक बात कहते है और वह बात है पूर्ववर्ती और अनुवर्ती का सम्बन्ध। इस सम्बन्ध का कथन किसी अन्य कथन की अपेक्षा नहीं रखता। इसलिए यह सापेक्ष नही है।

१ अनुमानाश्रित निर्णय वाक्यो की व्याख्या .—अनुमानाश्रित निर्णय-वाक्य मे किसी सामान्य तथ्य का कथन नही रहता, न किसी गुण या सम्बन्ध का। जब हम कहते है "यह एक चिडिया है" "यह चिडिया पेड पर है", "यह एक पीली चिडिया है" तब हम एक तथ्य का या एक साधारण सम्बन्ध का या गुण का अस्तित्व बतलाते है। दूसरे वाक्य में

निरपेक्ष वाक्य के प्रतिकूल अनुमानाश्रित सापेक्ष वाक्य में एक आवश्यक सम्बन्ध बतलाया जाता है।

जो सम्बन्ध बतलाया गया है वह आवश्यक नही है। उस समय जब उसके बारे में कहा गया कि चिड़िया पेड पर बैठी है, तब यह आवश्यक नही होता कि वह सदैव पेड ही पर बैठी रहे। वह दूसरी जगह भी रह सकती है। इसलिए उक्त वाक्य मे चिडिया' और पेड' के मध्य जो सम्बन्ध है वह आवश्यक नही है। यह वाक्य निरपेक्ष है। परन्तु इसके प्रतिकूल अनुमानाश्रित सापेक्ष वाक्य मे दो तथ्यो या दो गुणों के मध्य आवश्यक सम्बन्ध का निर्देश रहता है। जैसे— यदि तुम घटी की घुण्डी दबाओगे तो वह बजेगी" मे हम घुण्डी के दबाने" और "घटी के बजने" के मध्य एक आवश्यक सम्बन्ध का निर्देश करते है। इसी प्रकार, "फूल पीला है तो सुगन्धित है" मे हम "पीले रग" और "सुगन्ध" के मध्य एक सम्बन्ध का निर्देश करते है।

२ क्या अनुमानाश्रित सापेक्ष निर्णय वाक्य का निरपेक्ष वाक्य में रूपान्तर हो सकता है?—कुछ लोगो का कहना है कि अनुमानाश्रित सापेक्ष निर्णय-वाक्य और निरपेक्ष वाक्य मे जो अन्तर है वह अनपेक्ष (absolute) नहीं है और अनुमानाश्रित सापेक्ष निर्णय-वाक्य निरपेक्ष निर्णय-वाक्य में तथा निरपेक्ष निर्णय-वाक्य अनुमानाश्रित सापेक्ष निर्णय-वाक्य में रूपान्तरित किये जा सकते है। "यदि फूल पीला है तो वह सुगन्धित है", यह अनुमानाश्रित सापेक्ष-वाक्य उनके अनुसार रूपान्तरित किया जा सकता है निरपेक्ष वाक्य, "सब फूल जो पीले हैं सुगन्धित है" में। किन्तु यह मत भ्रामक है। दोनो के अर्थ में अन्तर है। अनुमानाश्रित सापेक्ष निर्णय-वाक्य को निरपेक्ष का रूप देने पर भी उसके अर्थ मे अन्तर नही होना चाहिए था। उसके केवल वाह्य आकार मे ही अन्तर होना चाहिए था। अर्थ मे नही। अर्थ में अन्तर होने पर केवल रूपान्तर नही रहा। अनुमानाश्रित सापेक्ष निर्णय-वाक्य दो तत्वो में आवश्यक सम्बन्ध वतलाता है। निरपेक्ष रूप मे भी उसे अपना वास्तविक अर्थ नही छोड़ना चाहिए। किन्तु यह सम्भव नही। अनुमानाश्रित सापेक्ष निर्णय-वाक्य और निरपेक्ष निर्णय-वाक्य दो भिन्न-भिन्न कोटि के निर्णय-वाक्य प्रमाणित होते हैं। इसलिए इनका परस्पर रूपान्तर नही हो सकता।

अनुमानाश्रित सापेक्ष निर्णय वाक्य निरपेक्ष निर्णयवाक्य में रूपांतरित नहीं किया जा सकता।

वैकल्पिक (Disjunctive) निर्णय वाक्य

वैकल्पिक निर्णय वाक्य में विधेय किसी उद्देश्य को सीधा प्रतिपादित नही करता। इसमे यह वतलाया जाता है कि जितने विधेय प्रस्तावित किये गये है उनमें से उद्देश्य के लिए विकल्प से एक सत्य है। जैसे—"अ है व या स।" यहाँ पर हम यह नही कहते कि "अ है व" और न यही कहते है कि "अ है स। जब हम कहते है, "रेल का सिगनल लाल है या हरा" तब हम बतलाते हैं कि रेल का सिगनल प्रस्तावित रगों में से एक को ग्रहण करता है। यह विकल्प का एक मूर्त्त उदाहरण है।

वैकल्पिक और अनुमानाश्रित निर्णय वाक्य

वैकल्पिक निर्णय-वाक्य में एक विकल्प दूसरे से कोई सम्पर्क नही रखता। वे दोनो ही एक साथ उद्देश्य के विधेय नही बन सकते । विकल्पो मे उद्देश्य के लिये यदि एक ग्राह्य है तो अन्य सब अग्राह्य। ऊपर के उदाहरण मे 'रेलवे सिगनल' यदि लाल है तो वह हरा नही हो सकता और यदि हरा है तो लाल नही हो सकता। यहाँ पर उद्देश्य दो विकल्पों मे से एक ही को ग्रहण कर सकता है। पर एक को अवश्य ग्रहण करता है। जब प्रस्तावित विकल्प दो ही होते हैं तब उनमे से एक अवश्य ग्राह्य है और दूसरा त्याज्य। परन्तु जब प्रस्तावित विकल्प अनेक होते है तव उनमे से एक त्याज्य होता है, शेष विकल्पो मे से एक ग्राह्य होता है अन्य सब अग्राह्य।

वैकल्पिक निर्णय-वाक्य के विकल्प परस्पर कोई सम्पर्क नही रखते ।

इससे स्पष्ट है कि एक वैकल्पिक निर्णय-वाक्य की व्याख्या चार अनुमानाश्रित निर्णय-वाक्यो मे की जा सकती है। जैसे—"रेलवे सिगनल लाल है या हरा" का चार विकल्प से अर्थ ग्रहण किया जा सकता है।

जैसे :—(१) यदि रेलवे सिगनल लाल है तो वह हरा नही है।
(२) यदि रेलवे सिगनल हरा है तो वह लाल नही है।
(३) यदि रेलवे सिगनल लाल नही है तो वह हरा है।
(४) यदि रेलवे सिगनल हरा नही है तो वह लाल है।

कुछ नैयायिक कहते है कि उद्देश्य को सभी विकल्प अग्राह्य हो सकते हैं। वे कहते है कि विकल्प सब एक साथ ग्राह्य नही हो सकते किन्तु अग्राह्य हो सकते हैं । जैसे—"वह दुष्ट है या मूर्ख है" मे दोनो विकल्प 'दुष्ट' और 'मूर्ख' उद्देश्य को एक साथ ग्राह्य नही हो सकते किन्तु अग्राह्य हो सकते है । वे कहते है कि यदि वह दुष्ट है तो वह मूर्ख नही भी हो सकता है । ऐसा भी हो सकता है कि न तो वह दुष्ट ही हो न मूर्ख ही। इसलिए हम ऐसा नही कह सकते कि वह दुष्ट नही है तो मूर्ख होगा ही। इसलिए वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि वैकल्पिक निर्णय-वाक्यो के खड करके दो ही निर्णय-वाक्य बनाये जा सकते है। इसलिए,

"रेलवे सिगनल लाल है या हरा" दो ही निर्णय-वाक्यो मे विभक्त किया जा सकता है। जैसे —

(१) यदि रेलवे सिगनल लाल है तो वह हरा नही है।

(२) यदि रेलवे सिगनल हरा है तो वह लाल नही है।

परन्तु यह मत मान्य नही हो सकता क्योकि वैकल्पिक वाक्यो का इससे ठीक अर्थ नही निकलता न विकल्पो की ठीक-ठीक धारण बनाने मे ही यह सहायक होता है।

३. विधिवाचक और निषेधवाचक निर्णय-वाक्य (Affirmative and Negative Propositions)

गुण के अनुसार निर्णय-वाक्य विधिवाचक और निषेधवाचक निर्णय वाक्यों में विभाजित किये जाते है। विधिवाचक निर्णय-वाक्य में उद्देश्य या अनुवाद्य के लिए एक विधेय दिया जाता है यानी उद्देश्य और विधेय के मध्य एक सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। इसके विपरीत निषेधवाचक निर्णय वाक्य मे हम विधेय द्वारा उद्देश्य को अस्वीकार करते हैं। इसमें हम व्यक्त करते है कि उद्देश्य और विधेय पद में कोई सम्बन्ध नही है। जैसे, "दूध सफेद है।" एक विधिवाचक वाक्य है। "मेज भूरी नही है" एक निषेधवाचक वाक्य है। 'दूध सफेद है' मे विधेय पद 'सफेद' उद्देश्य 'दूध' के लिए व्यवहार मे लाया गया है। इसका अर्थ होता है दूध सफेद रग रखता है। "मेज भूरी नही है" विधेय पद 'भूरी' उद्देश्य पद 'मेज' के लिए अस्वीकृत है। इसका अर्थ यह है कि मेज भूरा रग नही रखती। निषेधात्मक निर्णय-वाक्य में यह छोटा सा अश 'नहीं' अस्वीकृति प्रदर्शित करता है।

विधिवाचक वाक्य में उद्देश्य और विधेय के मध्य सम्बन्ध रहता है। निषेधवाचक वाक्य में उद्देश्य और विधेय के मध्य कोई सम्बन्ध नहीं रहता।

क्या निषेधवाचक वाक्य विधिवाचक वाक्य में रूपान्तरित किये जा सकते है?

कुछ नैयायिको के अनुसार निषेधवाचक निर्णय-वाक्य विधिवाचक निर्णय-वाक्य में रूपान्तरित किये जा सकते है। उनके अनुसार निषेधवाचक निर्णय-

वाक्य के छोटे से अश 'नही' को विधेय पद से स्थानान्तरित करके निपेधवाचक निर्णय-वाक्य को विधिवाचक निर्णय-वाक्य मे बदला जा सकता है। जैसे, "यह मेज भूरी नही है।" एक निषेधवाचक वाक्य है। यदि 'नही' और 'भूरी' को जोडकर इस प्रकार रखे, "यह मेज भूरी-नही है" तो यह विधिवाचक निर्णय-वाक्य हो जायगा। किन्तु अर्थत उक्त दोनो वाक्यो के बीच कोई अन्तर नही आता। निपेध जो पहले वाक्य से व्यक्त होता है वह दूसरे वाक्य में भी मौजूद रहता है। विधेय पद भूरी-नही से अन्तत भूरी का अभाव ही व्यक्त होता है। अस्तु उसके अर्थ मे कोई अन्तर नही आया। किन्तु विभाजन की कसौटी अर्थ ही है। कोई वाक्य विधिवाचक है या निपेधवाचक है, इसका निर्णय हम अर्थ से ही कर सकते है न कि आकार से। इसलिए यह मानना पडेगा कि निषेधवाचक निर्णय-वाक्य विधिवाचक निर्णय-वाक्य मे रूपान्तरित नही किये जा सकते।

क्या अनुमानाश्रित निर्णय-वाक्य (Hypothetical Propositions) **निषेधवाचक हो सकते है ?**

अनुमानाश्रित वाक्य विधिवाचक होता है या निषेधवाचक ?

कुछ लोग कहते है कि यदि अनुमानाश्रित निर्णय-वाक्य का अनुवर्ती (Consequent) विधिवाचक है तो वह वाक्य भी विधिवाचक है और यदि उसका अनुवर्ती निषेधवाचक है तो वह वाक्य भी निपेधवाचक माना जाना चाहिए। इस प्रकार "यदि अ है ब तो स नही है द" एक निषेधवाचक वाक्य माना जायगा, क्योकि इसका अनुवर्ती "स नही है द" निषेधवाचक है। फिर "यदि अ है ब तो य है क" एक विधिवाचक वाक्य माना जायगा, क्योकि इसका अनुवर्ती विधिवाचक है।

समालोचना:—यह मत सगत नही है। भ्रम के कारण ही ऐसा कहा गया है। इस वाक्य मे, 'यदि अ है ब तो स नही है द' यदि कहा जाय कि "स नही है द", एक निषेधवाचक वाक्य है तो यह कथन सत्य नही होगा, क्योकि "स नही है द" एक वाक्याश है, पूरा वाक्य नही है। इसलिए हम 'द' द्वारा सत्यत 'स' का निषेध नही कर सकते। अनुमानाश्रित वाक्य मे हम केवल यह बताते है कि "स का द न होना" निर्भर करता है "अ के द न" होने पर। इसी प्रकार, "यदि

अ है ब तो प है क" में अनुवर्ती, "प है क" भी एक वाक्यांश है। पूरा वाक्य नही है। केवल इसी के विधिवाचक होने से पूरा वाक्य विधिवाचक नही हो सकता। यहाँ पर हम केवल इतना ही कह सकते है कि 'प' का "क" होना निर्भर करता है 'अ' के 'ब' होने पर। अर्थात् इन वाक्यो से हम एक सम्बन्ध बतलाते है। इससे स्पष्ट है कि अनुमानाश्रित निर्णय-वाक्य सदैव विधिवाचक होता है, क्योंकि प्रत्येक अनुमानाश्रित निर्णय-वाक्य अनुवर्ती (Consequent) और पूर्ववर्ती (Antecedent) के बीच एक आवश्यक सम्बन्ध रखता है, जो चाहे विधिवाचक हो चाहे निषेधवाचक। इसलिए प्रत्येक अनुमानाश्रित निर्णय-वाक्य सदैव विधिवाचक होता है।

४. सर्व-व्याप्तिमय और अल्प-व्याप्तिमय निर्णय-वाक्य (Universal & Particular Proposition)

परिमाण (Quantity) के अनुसार निर्णय-वाक्य (Propositions) सर्वव्याप्तिमय और अल्पव्याप्तिमय मे विभक्त किये जाते है। सर्वव्याप्तिमय (Universal) निर्णय-वाक्य वह वाक्य है जिसमे विधेय सम्पूर्ण वर्ग के अर्थ में लिया जाता है। जैसे—'सब मनुष्य मर्त्य है।" "कोई मनुष्य पूर्ण नही है।" "सब मनुष्य मर्त्य है" मे विधेय 'मर्त्य' सम्पूर्ण मनुष्य वर्ग को मर्त्य स्थिर करता है। एक भी व्यक्ति मृत्यु से नही बचता। इसी प्रकार, "कोई मनुष्य पूर्ण नही है" मे विधेय "पूर्ण नही" सम्पूर्ण मनुष्य वर्ग की अपूर्णता बताता है। इस अपूर्णता से कोई बरी नही होता।

सब सर्वव्याप्तिमय निर्णय-वाक्य अर्थ मे अनुमानाश्रित निर्णय-वाक्य होते ह और वे "यदि", "तो" आदि के रूप मे रखे जा सकते है। इस प्रकार जब कहते हैं, "सब मनुष्य मर्त्य है तब सबका अर्थ 'सकलित' नही होता, न उससे कोई निश्चित मनुष्य वर्ग ही सूचित होता है, तब सबका अर्थ होता है केवल "कोई", 'जब कभी' और 'यदि' आदि। यह बीते हुए समय के मनुष्य और वर्तमान तथा भविष्य के मनुष्यो की ओर सकेत करता है, इसलिए

सब सर्वव्याप्तिमय वाक्य अनुमानाश्रित होते हैं।

"सब मनुष्य मर्त्य हैं' का अर्थ है यदि कोई एक व्यक्ति है तो वह मर्त्य है। सर्व-व्याप्तिमय निर्णय-वाक्य की यही पहचान है कि वह 'कोई', 'प्रत्येक', 'जहाँ कही' और 'सब' आदि से प्रारम्भ होता है।

(ब) **अल्प व्याप्तिमय निर्णय-वाक्य** (Particular Proposition)—अल्पव्याप्तिमय निर्णय-वाक्य वह है जिसमे विधेय से किसी वर्ग के कुछ व्यक्तियो का अस्तित्व स्वीकार या अस्वीकार किया जाता है। सर्वव्याप्तिमय निर्णय-वाक्य मे विधेय सम्पूर्ण वर्ग को स्वीकार या अस्वीकार करता है किन्तु अल्प-व्याप्तिमय निर्णय वाक्य के विधेय वर्ग के एक अश को स्वीकार या अस्वीकार करता है। जैसे—"कुछ मनुष्य ईमानदार हैं", "कुछ मनुष्य बुद्धिमान नही हैं". ये दो अल्पव्याप्तिमय निर्णय-वाक्य है, पहले में विधेय "ईमानदार" उद्देश्य "कुछ मनुष्य" के लिए स्वीकार किया गया है। और दूसरे मे विधेय "बुद्धिमान नही" उद्देश्य "कुछ मनुष्य" के लिए अस्वीकार किया गया है। 'कुछ' पद किसी निश्चित व्यक्ति या व्यक्तियो की सख्या नही बतलाता, फिर भी कुछ का अर्थ होता है कुछ लोग, जिसका तात्पर्य यह है कि वर्ग का कोई अश। उपर्युक्त बात में कुछ मनुष्य कहने से कुछ अनिश्चित व्यक्ति का बोध होता है और कुछ मनुष्य से यह निश्चित हो जाता है कि मनुष्य वर्ग मे जितने मनुष्य है उससे उक्त मनुष्यो की सख्या कम है।

(स) **व्यक्तिवाचक निर्णय-वाक्य** (Singular Proposition)—परम्परित न्यायशास्त्र में सर्वव्याप्तिवाचक और व्यक्तिव्याप्तिवाचक वाक्य मे कोई अन्तर नही बतलाया गया है। व्यक्तिव्याप्तिवाचक निर्णयवाक्य, सर्व-व्याप्तिवाचक निर्णयवाक्य की तरह उपयोग मे लाया जा सकता है। व्यक्ति-व्याप्तिवाचक निर्णय-वाक्य वह वाक्य है जिसमे उद्देश्य से कोई एक व्यक्ति निर्णीत होता है। जैसे—भारत के प्रधान मत्री सुवक्ता है, इसमे विधेय सुवक्ता किसी एक विशेष व्यक्ति के लिए प्रयुक्त हुआ है। अब स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्ति-व्याप्तिवाचक वाक्य का विधेय किसी एक व्यक्ति की स्थिति को स्वीकार या अस्वी-कार करता है। परन्तु सर्वव्याप्तिवाचक वाक्य का विधेय एक वर्ग की स्थिति को स्वीकार या अस्वीकार करता है और अल्पव्याप्तिवाचक वाक्य का विधेय

किसी वर्ग के एक अश की स्थिति को स्वीकार या अस्वीकार करता है। इसको दूसरे शब्दो मे समझें तो यो कहेगे कि सर्वव्याप्तिवाचक वाक्य सम्पूर्ण वर्ग से सम्बन्ध रखता है। अल्पव्याप्तिवाचक वाक्य उस वर्ग के एक अश से सम्बन्ध रखता है। और व्यक्तिव्याप्तिवाचक वाक्य किसी एक व्यक्ति से सम्बन्ध रखता है। इसलिये व्यक्तिव्याप्तिवाचक वाक्य को उक्त दोनो से अवश्य भिन्न माना जा सकता है। और निर्णय वाक्यो की व्यवस्था मे उसे स्थान दिया जा सकता है।

प्रत्येक अनुमानाश्रित निर्णय-वाक्य सर्वव्याप्तिवाचक वाक्य के समतुल्य होता है। इसलिए वह भी सर्वव्याप्तिवाचक वाक्य है। जैसे—"यदि पानी बरसता है तो सडकें गीली होती है", "पानी बरसने की सब दशा सड़को के गीली होने की दशा है।"

५. आवश्यक, निर्देशात्मक और संभाव्य निर्णय वाक्य
(Necessary, Assertory and Problematic Propositions)

रूपविधि (Modality) के अनुसार, निर्णय-वाक्य आवश्यक, निर्देशात्मक और सभाव्य निर्णय वाक्यो मे विभक्त किये जाते हैं। रूप-विधि (Modality) का अर्थ होता है निश्चितता का परिमाण जिसके द्वारा विधेय उद्देश्य का प्रतिपादन या प्रतिवाद करता है और आवश्यक निर्णय-वाक्य, निर्देशात्मक निर्णय-वाक्य तथा सभाव्य निर्णय-वाक्य की स्थिति की निश्चितता का परिमाण बतलाता है, निश्चय की स्थिति की दृष्टि से आवश्यक निर्णय-वाक्य को सबसे ऊँचा स्थान मिलता है। इसके बाद निर्देशात्मक निर्णय-वाक्य का स्थान आता है। सभाव्य निर्णय-वाक्य को अपेक्षाकृत निश्चितता में सबसे न्यून स्थान मिलता है।

(अ) **आवश्यक (Necessary) निर्णय-वाक्य**—आवश्यक निर्णय-वाक्य उद्देश्य और विधेय के मध्य एक ऐसा सम्बन्ध व्यक्त करता है जो उनकी प्रकृति पर आधारित रहता है या उनके वस्तु विधान के नियम पर निर्भर रहता है। जैसे—"दो और तीन मिलकर पाँच बनाते हैं", "दो सीधी रेखाए एक स्थान को नही घेर सकती", ये दो आवश्यक वाक्य है। इनमे से पहला गणना के नियम

पर निर्भर है, दूसरा रेखाओ की प्रकृति पर। इन वाक्यो में किसी मध्यवर्ती वस्तु के लिए स्थान नही रहता। इसलिए इनमें निश्चितता पूर्णरूप से विद्यमान रहती है।

निर्देशात्मक (Assertory) निर्णय-वाक्य :—निर्देशात्मक निर्णय-वाक्य में उद्देश्य और विधेय का सम्बन्ध प्रकृति पर निर्भर नही रहता। निर्देशात्मक निर्णय-वाक्य की निश्चितता अनुभव पर निर्भर करती है। "आकाश नीला है।" यह एक निर्देशात्मक निर्णय-वाक्य है। हम प्रत्यक्ष बोध से अनुभव करते हैं कि आकाश नीला है और इस ज्ञान को इस वाक्य द्वारा व्यक्त करते हैं। परन्तु हम यह नही जानते कि आकाश नीला क्यो है? इसलिए "आकाश नीला है" पूर्णरूप से सत्य नही हो सकता।

निर्देशात्मक निर्णय-वाक्य में आवश्यक निर्णय-वाक्य से कम निश्चितता रहती है।

"आकाश लाल है" भी कहा जा सकता है। इसलिए निर्देशात्मक वाक्य मध्यवर्ती वाक्य के लिए भी स्थान छोडता है। इसलिए यह आवश्यक वाक्य से कम निश्चितता रखता है। सक्षेप में कहा जा सकता है कि निर्देशात्मक निर्णय-वाक्य मे उद्देश्य और विधेय के बीच जो सम्बन्ध बतलाया जाता है वह किसी आधार पर स्थिर नही रहता, वह केवल औपाधिक होता है।

औपाधिक सत्य वह सत्य है जो केवल अनुभव पर न कि प्रकृति पर आधारित रहता है।

(स) सम्भाव्य (Problematic) निर्णय-वाक्य मे उद्देश्य और विधेय के बीच एक ऐसा सम्बन्ध रहता है, जो अशत किसी आधार पर स्थित रहता है। यह सम्बन्ध न तो पूर्णरूप से अनुभव पर ही निर्भर रहता है और न पूर्णरूप से किसी नियम पर ही, इसलिए यह केवल अशत ही सत्य हो सकता है। ऐसे निर्णय वाक्यो में निर्देशात्मक निर्णय वाक्यो की अपेक्षा भी कम निश्चितता रहती है और आवश्यक निर्णय वाक्यो की अपेक्षा तो बहुत ही कम। वह ईमानदार हो सकता है और इस शाम को वर्षा हो सकती है। ये दो सम्भाव्य निर्णय वाक्य के उदाहरण हैं। इनमें पहले में विधेय ईमानदार का उद्देश्य के साथ सीधा सम्बन्ध नही जोडा गया है। यहाँ पर हम उद्देश्य और विधेय के सम्बन्ध मे अशत' निश्चितता प्राप्त

करते है और यह सम्बन्ध अनुभूत भी नही है। हम कह सकते है कि हमने अभी तक उसे अपने व्यवहार में ईमानदार नही पाया और न तो उसकी प्रकृति में ईमानदारी का अभिन्न रूप से योग ही पाते है। कुछ चीजें उसके लिए ज्ञात हुई है जिससे हम उसको ईमानदार मानने के लिए उन्मुख होते है, लेकिन जो कुछ हम उसके बारे मे जानते है वह इतना अधिक नही है कि हम इस स्थिति में हो कि उसे पूर्ण रूप से ईमानदार कहें। सम्भव है वह ईमानदार हो, परन्तु यह भी सम्भव है कि वह ईमानदार न हो। इसके प्रतिकूल जब हम कहते हैं कि वह ईमानदार है तब हम एक निर्देशात्मक कथन करते है। इसमें हम एक निश्चित समय मे उस व्यक्ति को जैसा पाते है वैसा कह देते है। यह सत्य है कि वह बेईमान हो सकता है अथवा वह भूत मे बेईमान था तो भी हम निश्चित रूप मे यह कह सकते है कि वह इस समय ईमानदार है। किन्तु सम्भाव्य निर्णय-वाक्य "वह ईमानदार हो सकता है" मे विधेय उद्देश्य के लिए एक बार भी निश्चित रूप से सत्य नही है, इसलिए हम उद्देश्य के प्रति विधेय की सत्यता की ओर केवल उन्मुख होते हैं। सचमुच इसे सत्य नही मानते। स्पष्ट है कि सभाव्य निर्णय-वाक्य "वह ईमानदार हो सकता है" उतना निश्चित नही है जितना निर्देशात्मक निर्णय-वाक्य, "वह ईमानदार है।" किन्तु यह निर्देशात्मक वाक्य भी उतना निश्चित नही है जितना आवश्यक वाक्य, "वह अवश्य ही ईमानदार है"। इसी प्रकार "इस शाम को वर्षा हो सकती है" की भी व्याख्या की जा सकती है और दिखाया जा सकता है कि वह निर्देशात्मक निर्णय-वाक्य "वर्षा हो रही है" से कम निश्चित है।

६ शाब्दिक और वास्तविक निर्णय वाक्य
(Verbal and Real Propositions)

अर्थ बोध के अनुसार निर्णय-वाक्य शाब्दिक और वास्तविक निर्णय-वाक्यो मे बाँटे जाते है।

(अ) शाब्दिक निर्णय-वाक्य वह वाक्य है जिसमे उद्देश्य के बारे में विधेय कोई नई सूचना नही देता। वह उद्देश्य के जातिव्याप्तिबोधन (Connotation) के किसी एक हिस्से या सम्पूर्ण का अर्थ बतलाता है। इस प्रकार,

"मनुष्य विवेकशील है" एक शाब्दिक वाक्य है। इसमें विधेय से एक तत्व व्यक्त होता है जो अन्य तत्वों के साथ मिलकर पद का जातिव्याप्ति-बोधन (Connotation) प्रकट करता है। हम जानते है कि पशुता और विवेकशीलता मिलकर मनुष्य जाति का गुण प्रकट करती है। इसलिए "मनुष्य विवेकशील है" में विवेकशील विधेय द्वारा उद्देश्य पद की केवल व्याख्या की जाती है, उसके बारे में कोई नई बात नही बताई जाती बल्कि मनुष्य पद के अर्थ में से केवल एक हिस्से का वर्णन कर दिया जाता है। इसीलिए ऐसे निर्णय-वाक्यो को शाब्दिक निर्णय-वाक्य कहा जाता है।

(ब) **वास्तविक निर्णय-वाक्य** —वह वाक्य है, जिसमे उद्देश्य के बारे मे विधेय एक नई सूचना देता है। इसलिए वास्तविक निर्णय-वाक्य केवल उद्देश्य पद की व्याख्या पर निर्भर नही रहता, वह, अनुभव पर भी आधारित रहता है। वास्तव मे इसमे उद्देश्य और विधेय का सम्बन्ध अनुभव पर निर्भर रहता है जैसे—"चिडिया पीली है और पर्वत बर्फ से ढँका है"। ये दो वास्तविक निर्णय-वाक्य है। प्रथम मे पीली विधेय उद्देश्य पद की व्याख्या से प्राप्त नही है क्योकि चिडिया पद पीली का बोधक नहीं है। चिडिया का होना आवश्यक नही है कि वह पीली हो, हम विधेय पीली को उद्देश्य चिडिया से सम्बन्धित करते है। क्योकि हम अनुभव से चिडिया के पीले रग को पहचानते है। बिना प्रत्यक्ष अनुभव के हम यह वाक्य नही बना सकते कि चिडिया पीली है। इसमे उद्देश्य या विधेय का सम्बन्ध पद की व्याख्या से प्रारम्भ नही होता, बल्कि अनुभव पर आश्रित रहता है और सकलन से प्राप्त होता है। इस प्रकार "बर्फ से ढंका है" मे विधेय उद्देश्य के जाति-व्याप्ति की केवल व्याख्या नही करता और न वह पर्वत शब्द के अर्थ का कोई हिस्सा ही है। बिना प्रत्यक्ष अनुभव के हम यह नही जान सकते कि पर्वत बर्फ से ढँका है या नही। यह वाक्य व्याख्या से प्राप्त नही होता, बल्कि इसमे उद्देश्य और विधेय के मध्य एक नया सम्बन्ध ज्ञात होता है, जो अनुभव पर आधारित है। वास्तविक निर्णय वाक्य उद्देश्य की व्याख्या से प्राप्त नही होता यह उद्देश्य और विधेय के सकलन (Synthesis) से प्राप्त वस्तुस्थिति पर आधारित होता है और इसलिए सकलित निर्णय-वाक्य कहा जाता है।

निर्णय वाक्यो का सारांश		वाक्यो की श्रेणी
१ निर्माण के अनुसार	सरल	अस्पष्ट उक्त—"आग !"
		स्पष्टउक्त—"स है प" "प है क" "आग लगी है ।"
	यौगिक	"वह अपने कठिन परिश्रम से अर्जित धन को क्षणभगुर आनन्द के लिए खर्च कर रहा है।"
२. सम्बन्ध के अनुसार	निरपेक्ष निर्णय-वाक्य	"स है प । स नही है प"
	अनुमानाश्रित. निर्णय-वाक्य	"यदि अ है व तो स है द"
	वैकल्पिक निर्णय-वाक्य	"अ है ब या स"
३ गुण के अनुसार	विधिवाचक निर्णय-वाक्य	"स है प"
	निषेधवाचक निर्णय-वाक्य	"स नही है प"
४ परिमाण के अनुसार	सर्वव्याप्तिवाचक निर्णय-वाक्य	"सब स है प"। "कोई स नही है प"
	अल्पव्याप्तिवाचक निर्णय-वाक्य	"कुछ स है प", "कुछ स नही है प"
	व्यक्तिव्याप्तिवाचक निर्णय-वाक्य	"ताजमहल ससारके आश्चर्यों मे से एक है।
५ रूप विधि के अनुसार	आवश्यक निर्णय-वाक्य	"अ अवश्य है ब", "अ अवश्य नही है ब"
	निर्देशात्मक निर्णय-वाक्य	"अ है ब" "अ नही है ब'
	सम्भाव्य निर्णय-वाक्य.	"अ हो सकता है ब"
६ अर्थवोध के अनुसार	शाब्दिक निर्णय-वाक्य	"मनुष्य विवेकशील है"
	वास्तविक निर्णय-वाक्य	"यह वृक्ष हरा है"

अध्याय १० : अनुशीलन

१. निर्णय-वाक्यो का श्रेणी विभाजन करो।

२. सरल और यौगिक निर्णय-वाक्यों मे अन्तर बताओ। क्या यौगिक निर्णय-वाक्य को सचमुच एक वाक्य कह सकते हो ?

३. निर्णय-वाक्यो को तुम सरल (Simple) और यौगिक (Compound) में विभाजित करते हो या सरल (Simple) और ग्रथित (Complex) में ?

४. यौगिक (Compound) निर्णय-वाक्य की ग्रथित (Complex) निर्णय-वाक्य से तुलना करो।

५. प्राइवेटिव (Privative) निर्णय-वाक्य किसे कहते हैं ? उदाहरण देकर इसकी व्याख्या करो। व्यक्त (Explicit) निर्णय-वाक्यो को खड करके समझाओ।

६. अनुमानाश्रित (Hypothetical) निर्णय-वाक्य की व्याख्या करो। क्या यह सापेक्ष निर्णय-वाक्य है ?

७ कुछ लोग कहते है कि साधारण वाक्य (Sentence) तो सापेक्ष होते हैं किन्तु कोई निर्णय-वाक्य (Proposition) इस अर्थ मे सापेक्ष नही होता कि हम उसे सापेक्ष कथन कहे। क्या यह मत ठीक है ? युक्ति-युक्त उत्तर दो।

८ क्या कोई अनुमानाश्रित निर्णय-वाक्य (Hypothetical Proposition) साधारण निर्णय-वाक्य (Categorical Proposition) में रूपान्तरित किया जा सकता है ?

९ क्या एक साधारण निर्णय-वाक्य अनुमानाश्रित निर्णय-वाक्य मे रूपान्तरित किया जा सकता है ?

१० वैकल्पिक (Disjunctive) निर्णय-वाक्य की प्रकृति बतलाओ। इसमें कितने अनुमानाश्रित निर्णय-वाक्य अन्तर्भूत रहते है ?

११ गुण के अनुसार निर्णय-वाक्यों का विभाजन करो।

१२ क्या निषेधवाचक निर्णय-वाक्य विधिवाचक में रूपान्तरित किये जा सकते हैं?

१३ क्या अनुमानाश्रित वाक्य निषेधवाचक बनाये जा सकते हैं?

१४ सर्वव्याप्तिमय और अल्पव्याप्तिमय वाक्यों में अन्तर बताओ।

१५ व्यक्तिवाचक और अल्पव्याप्तिवाचक वाक्यों की तुलना करो।

१६ रूपविधि (Modality) के अनुसार निर्णय-वाक्यों के विभाजन को समझाओ।

१७ शाब्दिक और वास्तविक निर्णय-वाक्यों की सोदाहरण व्याख्या करो।

अध्याय ११

निर्णय वाक्यों का चतुरंग विधान

(The Four Fold Scheme of Propositions)

१ गुण और परिमाण का योग

परम्परा से न्याय-शास्त्र में गुण के अनुसार निर्णय-वाक्य (Propositions) विधिवाचक (Affirmative) और निषेधवाचक (Negative) तथा परिमाण के अनुसार सर्व-व्याप्तिवाचक (Universal) और अल्प-व्याप्तिवाचक (Particular) में विभाजित किये जाते हैं। इन दो सिद्धान्तों के योग के अनुसार अर्थात् गुण और परिमाण के सिद्धान्तों के योग के अनुसार निर्णय-वाक्यों के चार मूलभूत रूप मिलते हैं। उनके नाम निम्न-लिखित हैं—

(१) विधिवाचक सर्व-व्याप्तिमय, (२) निषेधवाचक सर्व-व्याप्तिमय।
(३) विधिवाचक अल्प-व्याप्तिमय, (४) निषेधवाचक अल्प-व्याप्तिमय।

ये चारो रूप A, E, I और O के चिन्हो से साकेतिक रूप मे व्यक्त किये जाते है; जैसे—

सब S है P—सब हब्शी काले है।
कोई S नही है P—कोई मनुष्य पूर्ण नही है।
कुछ S है P—कुछ मनुष्य बुद्धिमान है।
कुछ S नही है P—कुछ मनुष्य बुद्धिमान नही है।

२. पदो की व्याप्ति (Distribution of Terms)

जब किसी पद की वाचकता उसकी पूर्ण नाम-व्याप्ति (Denotation) की द्योतक होती है, तब वह पद पूर्ण-व्याप्ति वाला (Distributed) कहा जाता है। एक सर्व-व्याप्तिमय वाक्य मे विधेय सम्पूर्ण वर्ग को स्वीकार या अस्वीकार करता है। एक वर्ग मे एक ही प्रकार के अनेक व्यक्ति होते है। इसलिये वह पद जो एक वर्ग की व्याप्ति बतलाता है, उस वर्ग के सभी व्यक्तियो की भी व्याप्ति बतलाता है, अर्थात् विधेय पद की वाचकता उन सभी व्यक्तियो के लिये लागू होती है जो उद्देश्य पद के अनुरूप होने के कारण विधेय पद की वाचकता के अन्तर्गत स्थान पाते है। इसलिये सर्वव्याप्तिमय-निर्णय वाक्य का उद्देश्य पूर्ण व्याप्तिमय (Distributed) होता है। यदि कहा जाय "सब हब्शी काले है" तो विधेयपद 'काले' का प्रयोग सम्पूर्ण हब्शी वर्ग के लिये होता है। इस वर्ग का कोई भी व्यक्ति अपवादरूप छोडा नही जाता। स्पष्ट है कि ऐसे प्रयोगो मे पद की वाचकता अपने सम्पूर्ण नाम-व्याप्ति (Denotation) के बराबर होती है। इसलिये ऐसा पद पूर्ण-व्याप्तिमय (Distributed) कहा जाता है। किन्तु विधिवाचक-सर्व-व्याप्ति-मय (Universal Affirmative) निर्णय-वाक्य मे केवल उद्देश्य ही अपनी पूर्ण व्याप्ति मे रहता है, विधेय नही। 'काले शब्द से सभी काले जीव और काली वस्तु का बोध होता है।' हब्शियो के अतिरिक्त अन्य और चीजे तथा लोग काले होते है। इसलिये उक्त वाक्य में

विधिवाचक सर्व-व्याप्तिमय निर्णय वाक्य का केवल उद्देश्य अपनी पूर्ण व्याप्ति में रहता है।

विधेय पद अपनी पूरी नाम-व्याप्ति में नहीं लिया गया। अर्थात् विधेय पद पूर्ण व्याप्तिमय (Distributed) नही है।

"कोई मनुष्य पूर्ण नहीं है" इस निषेधवाचक निर्णय-वाक्य में, विधेय पद 'पूर्ण' समस्त मनुष्य वर्ग के लिये अस्वीकृत है, गोकि उस वर्ग के व्यक्तियों की संख्या असीम है। इसलिये निर्णय-वाक्य का उद्देश्य पद अपनी पूर्ण-व्याप्ति में पाया जाता है। इसका विधेय पद भी पूर्ण-व्याप्ति में है, क्योंकि जब कहा जाता है कि "कोई मनुष्य पूर्ण नहीं है" तब इसका मतलब यह होता है कि वह सम्पूर्ण व्यक्ति-वर्ग जिनमें पूर्णता है मनुष्य वर्ग से कोई सम्बन्ध नहीं रखता। यहाँ पर वाक्य में निषेधात्मकता पूर्ण है। इसलिये इस वाक्य का विधेय पद भी पूर्ण-व्याप्ति रखता है।

निषेधवाचक सर्व-व्याप्तिमय निर्णय वाक्य के उद्देश्य और विधेय दोनों पूर्ण-व्याप्ति में रहते हैं।

"कुछ लोग बुद्धिमान हैं" इस वाक्य में "कुछ" पद से ज्ञात होता है मनुष्य वर्ग के सब व्यक्ति कथित नहीं किये गये हैं। विधेय से जिन लोगों का वर्णन होता है उनकी संख्या थोड़ी ही है, गोकि वह निश्चित नहीं है। "कुछ" पद "सब" पद से न्यून है यह सबको मालूम है।

इसलिये "कुछ लोग बुद्धिमान हैं" का उद्देश्य पूर्ण-व्याप्ति नहीं रखता। विधेय "बुद्धिमान" भी पूर्ण-व्याप्ति नहीं रखता। कुछ लोग बुद्धिमान हैं" इसका यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता कि "कुछ लोग" सब बुद्धिमान लोग हैं क्योंकि कुछ और लोग हो सकते हैं जो बुद्धिमान हों। इसलिये बुद्धिमान पद भी अपनी पूर्ण-व्याप्ति में नहीं लिया गया है।

विधिवाचक अल्प-व्याप्तिमय निर्णय वाक्य का न उद्देश्य और न विधेय अपनी पूर्ण व्याप्ति रखता है।

"कुछ लोग बुद्धिमान नहीं हैं" इस निर्णय-वाक्य में यह स्पष्ट है कि उद्देश्य की व्याप्ति अपूर्ण है, किन्तु विधेय "बुद्धिमान नहीं" अवश्य अपनी पूर्ण व्याप्ति में है। इस निर्णय-वाक्य का यह अर्थ होता है कि सब "बुद्धिमान-नहीं" लोग कुछ व्यक्तियों से कोई सम्बन्ध नहीं रखते।

निषेधवाचक अल्प-व्याप्तिमय वाक्य का विधेय पूर्ण व्याप्ति रखता है।

नीचे पूर्व व्याख्या का सारांश दिया जाता है—

(१) सर्व-व्याप्तिमय वाक्य का उद्देश्य पूर्ण-व्याप्ति में रहता है।

(२) अल्प-व्याप्तिमय वाक्य का उद्देश्य पूर्ण-व्याप्ति मे नही रहता है।

(३) निषेधवाचक वाक्य का विधेय पूर्ण-व्याप्ति में रहता है।

(४) विधिवाचक वाक्य का उद्देश्य पूर्ण-व्याप्ति में रहता है।

अर्थात् ए (A) का उद्देश्य पूर्ण व्याप्ति मे रहता है, विधेय नही।

ई (E) का उद्देश्य और विधेय दोनो पूर्ण व्याप्ति में रहते है।

आइ (I) के न उद्देश्य और न विधेय पूर्ण-व्याप्ति में रहते है।

ओ (O) का विधेय पूर्ण-व्याप्ति मे रहता है, उद्देश्य नही।

३ गुण और परिमाण के चिन्ह
(Signs of quantity & quality)

निर्णय वाक्यो के प्रारम्भ मे कुछ शब्दो या उद्देश्य से लगे हुये कुछ तत्वो से (१) गुण या (२) परिणाम या दोनो का ज्ञान होता है। इन्हे चिन्ह कहते है। ऐसे कुछ चिन्ह नीचे दिये जाते है—

(१) जो निर्णय-वाक्य 'कोई' 'प्रत्येक', 'जो कुछ' 'सब' और "सदैव" से युक्त होते है वे सर्वव्याप्तिवाचक (Universal) निर्णय-वाक्य होते है। जैसे—

"सब मनुष्य मर्त्य है" . (A)

"कोई मनुष्य पूर्ण नही है" . (E)

"प्रत्येक कौआ काला है" . (A)

"जब पानी बरसता है तब सडकें गीली होती है···(A)

निषेधवाचक निर्णय-वाक्य, "सब" "प्रत्येक" इत्यादि से युक्त होने पर कही-कही अल्पव्याप्ति वाचक (Particular) निर्णय-वाक्य हो जाते है। जैसे—"सब चमकने वाली चीजे सोना नही हैं"

="कुछ चमकनेवाली चीजें सोना नही है"=ओ (O)

"प्रत्येक मनुष्य धनी नही है"

="कुछ मनुष्य धनी नही है=ओ (O)

.इत्यादि।

(२) जो निर्णय वाक्य "कोई नही," "कुछ नहीं" "कभी नहीं" आदि से युक्त होते हैं वे सर्वव्याप्तिवाचक निषेधवाचक निर्णयवाक्य (Universal Negative) होते है। जैसे—

"कोई मनुष्य पूर्ण नहीं है" . . .. .. (E)

"बिना हवा के कोई जी नही सकता" . (E)

... .. इत्यादि।

(३) जो निर्णयवाक्य, "कुछ", "थोडा सा", "बहुत" और 'कई' इत्यादि से युक्त होते हैं, वे अल्पव्याप्तिवाचक निर्णय-वाक्य होते है। जैसे—

"कुछ नारंगियाँ मीठी हैं" . (I)

"कुछ लोग गिरफ्तार किये गये". (I)

"बहुत से लोग मूर्ख हैं" . .. (I)

इत्यादि

'कभी-कभी', 'मुश्किल से', 'कठिनाई से' आदि से आरम्भ होने वाले निर्णय-वाक्य आकार में विधिवाचक पर अर्थ मे निषेधवाचक होते है। जैसे—

"मुश्किल से कोई ऐसा होगा जो बिना पढे परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ होगा।"

"ऐसा कोई नही है जो बिना पढे परीक्षा मे उत्तीर्ण हुआ है". (E)

(५) निष्क्रांत निर्णय वाक्य (Exclusive Propositions)—ऐसे वाक्य जो, 'अकेले', कोई नही 'लेकिन', और 'केवल' आदि से युक्त होते है वे निष्क्रात सर्वव्याप्तिवाचक वाक्य होते हैं और रूप के अनुसार विधि अथवा निषेधवाचक होते है, जैसे—

"केवल ग्रेजुएट ही पद के योग्य हैं।"

="जो ग्रेजुएट नहीं है वह पद के योग्य नही हैं" .(A)

अथवा "केवल ग्रेजुएट ही इस पद के योग्य हैं"

="सब जो योग्य हैं ग्रेजुएट है (A)

बहादुरों को छोडकर कोई पुरस्कार नही पा सकता

=कोई नही-बहादुर पुरस्कार नही पा सकता .(E)

या केवल वहादुर पुरस्कार पा सकता है

=वे सब जो पुरस्कार पा सकते है बहादुर है ... (A)

(६) **प्रत्येक अपवादवाचक निर्णय वाक्य** (Exceptive Propositions)—अर्थात् उस वाक्य मे जिसमे उद्देश्य के साथ, "केवल" "इसे छोडकर" आदि शब्द लगे रहते है, विधिवाचकअल्पव्याप्तिवाचक और निषेधवाचक अल्पव्याप्तिवाचक निर्णय वाक्यो का योग रहता है। जैसे—

"एक को छोडकर ससद् के सभी सदस्य सभा में उपस्थित थे।" (I+O)

= { "अधिकतर सदस्य सभा मे उपस्थित थे" . (I)
+
एक सदस्य सभा में उपस्थित नही था . . .(O) }

(७) "जब तक नही" से युक्त निर्णय-वाक्य सर्वव्याप्ति मय विधिवाचक या निषेधवाचक होते है। जैसे—

"लडके जबतक प्रवेश-परीक्षा उत्तीर्ण नही हो जाते तब तक सैनिक कालेज में भर्ती नही किये जाते।"

="केवल वही लडके जो प्रवेश-परीक्षा उत्तीर्ण है, सैनिक कालेज में भर्ती होते है।"

="कोई जो प्रवेश-परीक्षा उत्तीर्ण नही है सैनिक कालेज मे भर्ती नही हो सकता।" .. (E)

-या "वे सभी लडके जो सैनिक कालेज मे भर्ती होते है वही है जो प्रवेश-परीक्षा उत्तीर्ण है .. . (A)

कुछ वाक्यो की बाह्य आकृति धोखे मे डाल देती है। भ्रामक आकृति के कारण एक अल्पव्याप्तिवाचक (Particular) निर्णयवाक्य सर्वव्याप्ति वाचक (Universal) निर्णय-वाक्य जान पडता है और एक निषेधवाचक निर्णय-वाक्य विधि वाचक प्रतीत होता है। इसलिये यह निश्चय करने के लिये कि अमुक निर्णय-वाक्य सर्व व्याप्तिवाचक है या अल्पव्याप्तिवाचक अथवा विधिवाचक है या निषेधवाचक हमे आकृति पर न जाकर निर्णय-वाक्यो के अर्थ पर ध्यान देना चाहिये।

४. ए, ई, आइ और ओ की आकृतिक प्रतिरूपता
(Diagramatic Representation of A, E, I & O)

कभी-कभी निर्णय-वाक्यो के मूलभूत रूप A, E, I और O के अर्थ को आकृति (Diagram) के माध्यम से समझाया जाता है। आकृति के माध्यम से उद्देश्य और विधेय के मध्य सम्बन्ध दिखलाने के लिये तीन सूक्ष्म नियम बताये जाते है। ये नियम इस प्रकार है —

(१) जो आकृति उपयोग में लाई जाय वह स्पष्ट हो जिससे दृष्टि डालते ही निर्णय-वाक्य का अर्थ समझा जा सके, यानी, उसके द्वारा उद्देश्य और विधेय के मध्य जो सम्बन्ध दिखलाया गया है वह ज्ञात हो जाय।

(२) प्रत्येक आकृति एक अर्थ दिखा सके और प्रत्येक अर्थ के लिये एक आकृति का उपयोग हो।

(३) एक निर्णयवाक्य की प्रतिरूपता (Representation) एक ही आकृति द्वारा दिखाई जाय।[1]

भिन्न-भिन्न नैयायिको ने भिन्न-भिन्न रूप से मूलभूत निर्णय-वाक्यो का आकृति विधान दिखलाया है। इनमे से लैम्बर्ट (Lambert), वेन (Venn) और ऊलर (Euler) के विधान अधिक प्रसिद्ध हैं।

५. ऊलर के वृत[2] (Euler's Circles)

ऊलर के विधान मे ५ आकृतियाँ है और प्रत्येक आकृति मे दो वृत्तो का उपयोग किया गया है। ये आकृतियाँ अगले पृष्ठ पर दी जाती है :—

आकृति (१) प्रतिरूपता दिखलाती है A की—सब S है सब P।

इसमे S को दिखलाने वाला वृत P को दिखलाने वाले वृत को पूरा-पूरा ढँक लेता है। आकृति (२) भी A की प्रतिरूपता दिखलाती है—सब S है कुछ P।

इसमें वृत S वृत P के अतर्गत आ जाता है।

आकृति (३) प्रतिरूपता दिखलाती है I की—कुछ S है सब P।

---

1 Welton Vol 1, P 215

२ ऊलर एक स्विस था है, यह १८वी शताब्दी का गणितज्ञ और नैयायिक था।

इसमे P का वृत S के वृत के अतर्गत आ जाता है।

आकृति (४) भी I की प्रतिरूपता दिखलाती है। कुछ S है कुछ P।
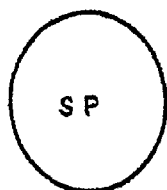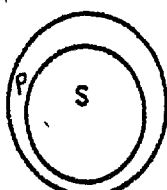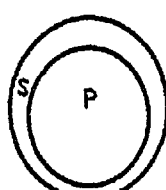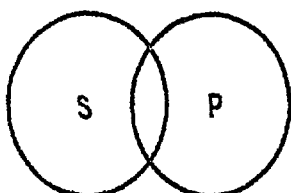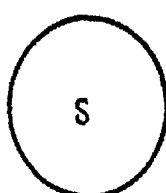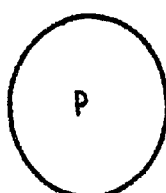
इसमे S और P के वृत एक-दूसरे को काटते है।

आकृति (५) प्रतिरूपता दिखलाती है E की—S नही है P।

इसमे S और, P के वृत एक दूसरे को स्पर्श नही करते।

आलोचना —ऊलर का आकृति विधान निर्णय-वाक्यो के डिनोटेटिव (Denotative) सिद्धान्त पर आधारित है। किन्तु हम पहले देख चुके है कि यह सिद्धान्त ठीक नही है। न तो हम उद्देश्य को वाच्यार्थ में प्रतिपादित करते है न विधेय को। दूसरी बात यह है कि उद्देश्य और विधेय मे जिस सम्बन्ध का निर्देश किया जाता है वह न अन्तर्भूत रहता है न वहिर्भूत।

६ विधेय का परिमाण द्योतन (Quantification of the Predicate)

विधेय और उद्देश्य को परिमाण का चिन्ह देना विधेय का परिणाम द्योतन कहा जाता है। इस सिद्धान्त का सबसे बडा विवेचक हैमिल्टन है। इस

सिद्धान्त के अनुसार निर्णय-वाक्य आठ रूपो में रूपान्तरित किये जा सकते हैं। A, I, E, O के विधान मे केवल उद्देश्य का परिमाण दिखलाया जाता है। यदि हम विधेय का परिमाण भी दिखलाये तो हमे आठ मूलभूत निर्णय-वाक्य मिलेंगे। जैसे,

A—सब S है सब P .U
सब S है कुछ P ..A
I—कुछ S है सब P . Y
कुछ S है कुछ P I
E—कोई S नही है कोई P E
कोई S नही है कुछ P N
O—कुछ S नही है कोई P. O
कुछ S नही है कुछ P W'

आलोचना :—(१) इस सिद्धान्त के विरुद्ध पहली आपत्ति तो यह है कि यह वाच्यार्थ-सूचक (Denotative) मत को आधार भित्ति बनाता है। इसलिये जो दोष डिनोटेटिव सिद्धान्त मे है वे इस पर भी लग सकते हैं।

(२) दूसरी यह कि मनोविज्ञान की दृष्टि से इस सिद्धान्त की आधार भित्ति सत्य नही है। हम किसी विधेय को वाच्यार्थ (Denotation) में नही लेते। जैसे जब हम कहते है, "सब मनुष्य मर्त्य है", तब हम विधेय का परिमाण नही बताते। हमारा यह मतलब नही होता कि सब मनुष्य है कुछ मर्त्य।

अध्याय ११ : अनुशीलन

१ निर्णय-वाक्यो का चतुरंग-विधान (Four fold scheme) समझाओ।

२ पदो की पूर्ण-व्याप्ति (Distribution) का क्या तात्पर्य है ?

३. निम्नांकित वाक्यो को तर्कसम्मत निर्णय-वाक्यो मे रूपान्तरित करो—

(क) कोई मनुष्य मर्त्य है।

(ख) हरएक हब्शी काला होता है।

(ग) कुछ लोग गरीब नही हैं।

(घ) हवा के बिना कोई जीवित नही रह सकता।

(ङ) बहुत से आदमी ईमानदार नही है।

(च) आयरलैण्ड मे साँप मुश्किल से मिलते हैं।

(छ) इस प्रश्न को कोई हल नही कर सकता।

(ज) ग्रेजुएट के सिवा और कोई नही चुना जायगा।

(झ) केवल परिश्रमी लडके ही पुरस्कृत होगे।

(ट) केवल पुण्यात्मा सुखी है।

४. ऊलर की आकृति-अनुरूपता के विधान को समझाओ। क्या तुम इस विधान को स्वीकार करते हो ?

५ विधेय के परिमाण-सूचन का क्या अर्थ है ? क्या इसमे कोई कठिनाई है ?

— ० —

अध्याय १२

निर्णय-वाक्यों की प्रतिपक्षिता

(Opposition of Proposition)

१. प्रतिपक्षिता का तात्पर्य (Opposition explained):—जब दो निर्णय-वाक्य एक से उद्देश्य और विधेय रखते है, किन्तु गुण या परिमाण अथवा दोनो मे भिन्न होते है, तब उन निर्णय-वाक्यो के मध्य का सापेक्ष सम्बन्ध पारिभाषिक शब्दो मे प्रतिपक्षिता (Opposition) कहा जाता है। हम ऊपर देख चुके है कि निर्णय-वाक्यो के मूलभूत चार रूप होते हैं। वे A, E, I और O है। इन चारो मे से किन्ही दो को लेकर उनके मध्य सापेक्ष सम्बन्ध बताना उनकी प्रतिपक्षिता (Opposition) स्थिर करना है।

२. प्रतिपक्षिता के प्रकार (Kinds of Opposition):—प्रतिपक्षिता के चार प्रकार है। उनके नाम हैं—(१) विपर्यय (Contrariety), (२) विरोध (Contradiction), (३) उपविपर्यय (Sub-Contrariety) और (४) उपविरोध (Subalternation)।

(१) विपर्यय (Contrariety)

A और E के सापेक्ष सम्बन्ध को विपक्ष कहते हैं।

एक ही उद्देश्य और एक ही विधेय रखने वाले किन्तु गुण मे पूर्ण भिन्नता रखने वाले दो सर्वव्याप्तिमय (Universal) निर्णय वाक्यो का अर्थात् A और E निर्णय-वाक्यो का सापेक्ष सबध विपर्यय (Contrary Oppositions) कहा जाता है। A विधिवाचक सर्वव्याप्तिमय निर्णय-वाक्य हैं जब कि E निषेधवाचक सर्वव्याप्तिमय निर्णय वाक्य है। इसलिये A और E गुण मे भिन्नता रखते है। अस्तु एक ही उद्देश्य और विधेय रखनेवाले A और E निर्णय-वाक्य प्रतिपक्षी होते है। उनकी प्रतिपक्षिता को विपर्यय (Contrariety) कहा जाता है। इस प्रकार "सब मनुष्य सुखी हैं" और "कोई मनुष्य सुखी नही है" विपरीत निर्णय-वाक्य कहे जाते हैं। इनमे से एक के सत्य होने पर दूसरा असत्य होता है। किन्तु यह आवश्यक नही है कि उनमें से यदि एक असत्य है तो दूसरा अवश्य सत्य होगा। अर्थात् दोनो निर्णय-वाक्य एक साथ सत्य नही हो सकते, किन्तु दोनो एक साथ असत्य हो सकते हैं। जब हम कहते है "सब मनुष्य सुखी है, तब हम 'मनुष्य' उद्देश्य के प्रति 'सुखी' विधेय की विद्यमानता बतलाते है और जब हम कहते है, "कोई मनुष्य सुखी नही है" तब हम उसी उद्देश्य "मनुष्य" के प्रति उसी विधेय "सुखी होने" का अभाव व्यक्त करते है। दोनो निर्णय-वाक्यो मे उद्देश्य "मनुष्य" वर्ग है और विधेय 'सुखी होना" है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि हम किसी एक वर्ग की उपस्थिति और अनुपस्थिति दोनो एक साथ ही नही दिखा सकते। अर्थात्

विपरीत दोनो सत्य नही होते यद्यपि दोनों असत्य हो सकते हैं।

यदि विधेय उद्देश्य "मनुष्य वर्ग" के विषय मे सुख की उपस्थिति प्रगट करता है तो वही विधेय उसी उद्देश्य 'मनुष्य वर्ग' के बारे मे उसी वस्तु "सुख" की अनुपस्थिति नही प्रगट करता। अथवा यदि हम विधेय में 'मनुष्य वर्ग' के लिये सुख की अनुपस्थिति व्यक्त करते हैं तो उसी समय उपस्थिति भी व्यक्त नही कर सकते। यदि "सब मनुष्य सुखी हैं" को सच मानते है तो "कोई मनुष्य सुखी नही है" को झूठ मानना पडेगा और यदि "कोई मनुष्य सुखी नही है" को सच मानते हैं तो "सब मनुष्य सुखी हैं" को झूठ मानना पडेगा।

परन्तु इनमे से यदि एक असत्य है तो यह आवश्यक नही है कि दूसरा सत्य ही होगा। अर्थात् दोनो असत्य हो सकते हैं। एक की सत्यता पर तो हम दूसरे को असत्य मान सकते हैं, किन्तु एक की असत्यता पर दूसरे को सत्य ही मानें ऐसा नही हो सकता। इस हालत मे दूसरा सत्य या असत्य दोनो हो सकता है।

सक्षेप में विपर्यय के नियम का इस प्रकार वर्णन कर सकते है कि यदि कोई एक विपरीत, जैसे A या E सत्य है तो दूसरा असत्य है। लेकिन यह नही कहा जा सकता कि उनमे से एक असत्य है तो दूसरा अवश्य सत्य होगा। वह सत्य या असत्य दोनो हो सकता है।

विरोध (Contradiction)

जब दो निर्णय-वाक्य एक ही उद्देश्य और विधेय रखते है, लेकिन गुण और परिमाण दोनो मे भिन्न होते हैं, तब उनके बीच का सापेक्ष सम्बन्ध विरोध कहा जाता है। A और O तथा E और I गुण और परिमाण दोनो मे भिन्न होते है। इसलिये परस्पर-विरोधी युग्म है। इन विरोधी युग्मो मे प्रत्येक मे ऐसा सम्बन्ध है कि यदि उनमें से एक सत्य है तो दूसरा असत्य है और यदि एक असत्य है तो दूसरा सत्य है। विरोध मे हम दोनो रास्तो से आगे बढ सकते हैं, अर्थात् एक को सत्य प्रमाणित करके दूसरे को असत्य प्रमाणित कर सकते हैं अथवा एक को असत्य प्रमाणित करके दूसरे

यदि एक विरोधी सत्य है तो दूसरा असत्य और यदि एक असत्य है तो दूसरा सत्य।

को सत्य प्रमाणित कर सकते हैं। इस प्रकार का विरोध एक ओर A और O में होता है तो दूसरी ओर E और I में। जैसे—"सभी मनुष्य प्रसन्न हैं".........A; "कुछ मनुष्य प्रसन्न नही हैं" ... .O ; ये दो विरोधी निर्णय-वाक्य हैं। यदि कहा जाय "सभी मनुष्य प्रसन्न हैं", तो यह वाक्य जब सत्य है तब स्पष्ट है कि यह वाक्य, "कुछ मनुष्य प्रसन्न नही हैं" असत्य है। अतएव A की सत्यता से O की असत्यता प्रमाणित होती है। परन्तु यदि "कुछ मनुष्य प्रसन्न नहीं हैं" को जब सत्य मानते हैं तब "सब मनुष्य प्रसन्न हैं" को असत्य मानना पडता है। अतएव O की सत्यता से A की असत्यता प्रमाणित होती है।

A और O तथा E और I परस्पर विरोधी वाक्य हैं।

(२) विरोध और मध्य-निषेधक नियम

(Contradiction & The Law of Excluded Middle)

मध्य-निषेधक नियम का अर्थ होता है कि दो विरोधियो में कुछ भी मध्यस्थ नही होता। विरोध की प्रतिपक्षिता में एक विरोधी की सत्यता दूसरे की असत्यता प्रमाणित करती है अथवा एक की असत्यता दूसरे की सत्यता प्रमाणित करती है। इसलिये दो विरोधी निर्णय-वाक्य पूर्ण रूप से एक दूसरे के प्रतिपक्षी होते हैं। दोनो एक ही समय सत्य नही हो सकते न दोनो असत्य ही हो सकते हैं। इसलिये विरोध की प्रतिपक्षिता मध्य-निषेधक से सीधी जुडी हुई है ?

(३) उपविपर्यय (Sub-Contrary)

जब दो अल्पव्याप्तिवाचक निर्णय-वाक्य एक ही उद्देश्य और विधेय रखते हैं, पर गुण में भिन्न होते हैं, तब उनके मध्य के सापेक्ष सम्बन्ध को उपविपर्यय कहते हैं। उपविपर्यय I और O के मध्य होता है। उपविपरीत निर्णय-वाक्यो में यदि एक असत्य होता है तो दूसरा सत्य होता है, परन्तु यह बात नहीं है कि उनमें से यदि एक सत्य है तो दूसरा असत्य है। उपविपरीत दोनों असत्य नहीं हो सकते यद्यपि

I और O का सापेक्ष सम्बन्ध उपविपर्यय कहा जाता है।

दोनों सत्य हो सकते है। जैसे, "कुछ लोग सुखी है" और "कुछ लोग सुखी नही है" विपरीत निर्णय वाक्य है। अब इनमे से यदि एक असत्य है, तो दूसरा अवश्य सत्य होगा अर्थात् दोनो असत्य नही हो सकते, किन्तु यदि उनमें से एक सत्य है तो दूसरा अवश्य ही असत्य है ऐसा नही कहा जा सकता। दोनो सत्य हो सकते हैं। "कुछ" का अर्थ होता है "सब नही"। 'सब' का केवल एक अश। इसलिये कुछ मनुष्य का अर्थ होता है, सम्पूर्ण मनुष्य वर्ग का एक अश। यहाँ मनुष्य वर्ग के दो हिस्से हो सकते है। एक हिस्से के लोग सुखी हो सकते हैं और दूसरे हिस्से के लोग सुखी नही हो सकते। इसलिये "कुछ मनुष्य सुखी है" और "कुछ मनुष्य सुखी नही है" दोनो सत्य हो सकते हैं। किन्तु जब कहते है "कुछ मनुष्य सुखी नही है" असत्य है तब इसका अर्थ होता है कि कुछ मनुष्य सुखी है। अस्तु उक्त वाक्य का विपरीत "कुछ मनुष्य सुखी है" सत्य प्रमाणित होता है। इसलिये दोनो विपरीत असत्य नही हो सकते।

उपविपरीत दोनो असत्य नही हो सकते, किन्तु दोनों सत्य हो सकते है।

कुछ विद्वान कहते हैं कि जब दोनो निर्णय वाक्य सत्य होते है, तब उनमे प्रतिपक्षिता कहाँ रह जाती है। किन्तु यह मत भ्रामक है। हमने अभी देखा है कि जब एक विपरीत असत्य होता है, तब दूसरा अवश्य सत्य होता है। इसलिये विपरीत निर्णय वाक्यो मे पर्याप्त प्रतिपक्षिता पाई जाती है।

उपविरोध (Subalternation)

एक उद्देश्य और एक ही विधेय के साथ A और I तथा E और O के मध्य के सापेक्ष सम्बन्ध को उपविरोध कहा जाता है। A और I केवल परिमाण मे भिन्न होते हैं। उसी प्रकार E और O भी केवल परिमाण मे भिन्न होते हैं। इसलिये हम कह सकते हैं कि ऐसे दो निर्णय-वाक्यो के बीच का सम्बन्ध जो एक ही उद्देश्य और विधेय रखते है, किन्तु परिमाण मे अन्तर रखते है, उपविरोध कहा

A और I तथा E और O के बीच का सम्बन्ध उपविरोध कहा जाता है।

जाता है और इस प्रकार से सम्बन्धित निर्णय वाक्य उपविरुद्ध (Subaltern) कहे जाते हैं।

उपविरोधी (Subalterns) A & I	महत्तम अर्थव्याप्तियुक्त A=(Subalternans or Subalternant or Super-implicant)
	लघुत्तम अर्थव्याप्तियुक्त I=(Subalternate or Sub-implicant)

उपविरोधी (Subalterns) E & O	महत्तम अर्थव्याप्तियुक्त E=(Subalternans, Subalternant or Super-implicant)
	लघुतम अर्थव्याप्तियुक्त O=(Subalternate or Sub-implicant

A और I के मध्य का सम्बन्ध

यदि A सत्य है तो वही उद्देश्य और विधेय रखनेवाला I भी सत्य है। किन्तु इसका विपरीत सत्य नही होता अर्थात् यदि A सत्य है, तो I सत्य है किन्तु यह आवश्यक नही है कि I सत्य है तो A भी सत्य हो। A सत्य या असत्य दोनो हो सकता है। यदि कहा जाय "सब मनुष्य सुखी हैं" तो यह प्रत्यक्ष है कि "कुछ मनुष्य सुखी है" भी सत्य है। क्योकि "कुछ" "सब" का एक अग (Part) है। निरश (Whole) यदि सत्य है तो उसका अश भी सत्य होगा इसमे कोई सन्देह नही है। परन्तु यदि कहा जाय "कुछ मनुष्य सुखी है" तो इसके आधार पर यह नही कहा जा सकता कि "सब मनुष्य सुखी है", क्योकि अग की सत्यता से निरश की सत्यता नही प्रमाणित की जा सकती। जब अश सत्य है तब निरश सत्य या असत्य दोनो हो सकता है। अर्थात् जब I सत्य है तो A सत्य या असत्य दोनो हो सकता है। अब देखना यह है कि I सत्य होने पर A क्योकर सत्य या असत्य होता है।

यदि A सत्य है तो I भी सत्य है किन्तु विपरीत नहीं।

हम आसानी से समझ सकते है कि जब "I सत्य है A सत्य है" किन्तु जब 'I सत्य है" तब "A असत्य" कैसे होता है। हम ऊपर देख चुके है कि 'I' और 'O' दोनो एक साथ सत्य हो सकते हैं। इसलिये जब 'O' सत्य होता है तब 'A' असत्य होता है।

यदि I असत्य है तो A भी असत्य है, पर विपरीत सत्य नहीं होता।

जब 'I' असत्य होता है, तब 'A' भी असत्य होता है। लेकिन विपरीत सत्य नही होता। यदि "कुछ मनुष्य सुखी है, असत्य है तो स्पष्ट है कि "सब मनुप्य सुखी है" भी असत्य है। कारण यह कि जो बात वर्ग के अश के लिये असत्य है वह सम्पूर्ण वर्ग के लिये कैसे सत्य हो सकती है। क्योकि अश तो निरश के ही अन्तर्गत है। किन्तु 'A' की असत्यता से 'I' की भी असत्यता प्रमाणित नही की जा सकती। यदि "सब मनुष्य सुखी है "असत्य है तो इसके आधार पर हम यह नही कह सकते "कुछ मनुष्य सुखी है" भी असत्य है। जब "सब मनुष्य सुखी है" असत्य है, तब "कुछ मनुष्य सुखी है" सत्य भी हो सकता है।

E और O का सम्बन्ध

उपविरोध की दृष्टि से E और O मे वैसा ही सम्बन्ध है जैसा A और I मे है। एक ही उद्देश्य और विधेय रखने पर यदि E सत्य है तो O भी सत्य है, किन्तु विपरीत सत्य नही है। यदि "सब मनुष्य पूर्ण नही है" सत्य है तो "कुछ मनुष्य पूर्ण नही है" भी सत्य है, किन्तु यदि "कुछ मनुष्य पूर्ण नही है" सत्य है तो इसके आधार पर यह नही कहा जा सकता कि "सब मनुष्य पूर्ण नही है" भी सत्य है। यह सत्य भी हो सकता है और असत्य भी। उपविरोधियो मे I और O दोनो सत्य हो सकते है और इसलिये यदि O सत्य है तो I भी सत्य हो सकता है और यदि I सत्य है तो E असत्य होगा। इसलिये O के सत्य होने पर E असत्य भी हो सकता है, फिर भी हम यह नही कह सकते कि E ऐसी दशा में सदैव असत्य है। O के सत्य होने पर E सत्य भी हो सकता है और असत्य भी।

यदि हम किसी विधेय को किसी वर्ग के कुछ व्यक्तियो के लिये अस्वीकार नही कर सकते तो हम उस विधेय को उस वर्ग के सम्पूर्ण व्यक्तियो के लिये भी अस्वीकार नही कर सकते। यदि "कुछ मनुष्य सुखी नही हैं" असत्य है, तब हम यह नही कह सकते कि "सब मनुष्य सुखी नही हैं" सत्य है। O के असत्य होने पर I सत्य होता है (उपविपरीतता से) और I के सत्य होने से E असत्य होता है (विरोध की प्रतिपक्षिता से) इसलिये यदि O असत्य है, तो E असत्य है। यदि "कुछ लोग सुखी हैं" असत्य है तो "सब लोग सुखी हैं" भी असत्य है।

किन्तु ऐसा नही होता कि यदि E असत्य है तो O भी हर हालत में असत्य है। O सत्य भी हो सकता है और असत्य भी। E के असत्य होने से I सत्य होता है (विरोध से)। और I के सत्य होने से O भी सत्य हो सकता है; यह आवश्यक नही है कि O असत्य ही हो (उपविपर्यय से)। इसलिये E के असत्य होने से हम यह नही कह सकते कि O भी असत्य है। "सब मनुष्य पूर्ण नही हैं" यदि असत्य है, तो "कुछ मनुष्य पूर्ण हैं" सत्य हो सकता है (विरोध से) और "कुछ मनुष्य पूर्ण हैं" के सत्य होने से "कुछ मनुष्य पूर्ण नही हैं" भी सत्य हो सकता यद्यपि ऐसा नही कहा जा सकता कि यह यहाँ और अब सत्य है। इससे स्पष्ट है कि O की असत्यता E की असत्यता का अनुगमन नहीं करती।

अर्थविस्तार की दृष्टि से A का I और E का O के साथ सम्बन्ध।

अर्थविस्तार की दृष्टि से A निर्णयवाक्य I का महत्तम रूप है और E निर्णयवाक्य O का अर्थात् जब A सत्य है, तब I अवश्य सत्य है और जब E सत्य है, तब O अवश्य सत्य है। इसमें गति A से I की ओर और E से O की ओर होती है। इसको अर्थविस्तार का महत्तम रूप (Super-implication) कहते हैं। इसका विपक्षी भी है। वह अर्थविस्तार का लघुत्तम रूप (Sub-implication) कहा जाता है। इसमे गति I से A की ओर और O से E की ओर होती है अर्थात् जब I सत्य है, तब A सत्य या असत्य हो सकता है और जब O सत्य है, तब E सत्य या असत्य हो सकता है।

क्या उपविरोध वास्तविक प्रतिपक्षिता है ?
(Is Sub-alternation a real kind of opposition ?)

A & I और E & O एक साथ सत्य और असत्य हो सकते हैं। इसलिये कुछ नैयायिक कहते है कि इनमें सच्ची प्रतिपक्षिता नहीं है।

जैसा कि हमने ऊपर देखा है, दो निर्णय-वाक्य जो एक ही उद्देश्य और विधेय रखते हैं, किन्तु केवल परिमाण में भिन्न होते है वे दोनो एक साथ सत्य या असत्य हो सकते हैं। दूसरे शब्दो मे, A, I और E, O एक ही उद्देश्य और विधेय रखने पर सत्य या असत्य दोनो हो सकते है। इसलिये कुछ नैयायिक कहते है, कि उनमे वास्तविक प्रीतपक्षिता नही है। किन्तु यह मत अतिदूरा-कर्षित है। A, I मे तथा E, O में कुछ प्रतिपक्षिता अवश्य है।

A या E की असत्यता से I या O की असत्यता प्रमाणित नही होती यद्यपि यह ठीक है कि ये उपविरोधी (Subaltern) सत्य या असत्य दोनो हो सकते है। किन्तु यदि A असत्य है तो I भी अपरिहार्य रूप से असत्य हो ऐसी बात नही है। A के असत्य होने पर I सत्य भी हो सकता है। यदि यह निर्णय-वाक्य, "सब मनुष्य सुखी है" असत्य है तो इसका यह मतलब नही होगा कि "कुछ मनुष्य सुखी है" भी असत्य है। सब मनुष्य सुखी न हो, फिर भी "कुछ मनुष्य सुखी हो सकते है। इससे स्पष्ट है कि I की असत्यता A की असत्यता का अनुगमन नही करती।

A के असत्य होने से O सत्य होता है (विरोध से)। O के सत्य होने से I भी सत्य हो सकता है (उपविपर्यय से)। फिर मान लिया कि यह निर्णय-वाक्य, "सब मनुष्य सुखी नही है", (E) असत्य है तो इससे यह प्रमाणित नही होता कि "कुछ मनुष्य सुखी नही है" (O) भी असत्य है। हम कह सकते है कि "कुछ मनुष्य सुखी नही है", यद्यपि यह हम नही कह सकते कि "कोई मनुष्य सुखी नही है।" यदि हम कह सकते है कि "कुछ मनुष्य सुखी है", तब हम यह नही कह सकते कि "कोई मनुष्य सुखी नही है"। फिर भी हम यह कह सकते

है कि 'कुछ' मनुष्य सुखी नही है। दूसरे शब्दो मे, यदि "सव मनुष्य सुखी नही है", तो "कुछ मनुष्य सुखी नही है" अनिवार्य रूप से असत्य नही हो सकता। "सव मनुष्य सुखी नही है" के असत्य होने पर "कुछ मनुष्य सुखी नही है" सत्य हो सकता है। सक्षेप मे इसे यो समझा जा सकता है, कि जव E असत्य है, तव I सत्य है (विरोध से) और जव I सत्य है, तव O भी सत्य हो सकता है। इसका मतलव यह हुआ कि जव E असत्य है तव O का असत्य होना अनिवार्य नही।

जब E असत्य है तब I सत्य है और O भी सत्य हो सकता है। इसलिये जब E असत्य है तब O का असत्य होना अनिवार्य नहीं है।

इसके प्रतिकूल जव I सत्य है, तो A का सत्य होना अनिवार्य नही है। यदि कहा जाय "कुछ मनुष्य सुखी है," तो इसका यह अर्थ नही होगा कि "सव मनुष्य सुखी है।" I के सत्य होने पर O सत्य हो सकता है (उपविपर्यय से) और जव O सत्य होगा, तव A असत्य होगा (विरोध से)। इसलिये जव I सत्य है, तव A असत्य हो सकता है। I के सत्य होने से यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि A भी सत्य है।

जब I या O सत्य है तब A या E असत्य हो सकते है। A और E की सत्यता I और O की सत्यता का अनुगमन नहीं करती।

इसी प्रकार यदि O सत्य है तो यह निश्चित नही है कि E भी सत्य है। यदि कहा जाय कुछ मनुष्य सुखी नही है, तो इसका यह अर्थ नही होगा कि सव मनुष्य सुखी नही है। हो सकता है कुछ मनुष्य सुखी हो, कुछ न सुखी हो। O के सत्य होने से I सत्य हो सकता है (उपविपर्यय से) और यदि I सत्य है तो E असत्य है (विरोध से)। इसलिये O की सत्यता से E की सत्यता नही प्रमाणित की जा सकती। O के सत्य होने पर E असत्य भी हो सकता है।

अब तो स्पष्ट हो गया होगा कि उपविरोधियो (Subalterns) मे भी कुछ प्रतिपक्षिता है। एक ओर A और I मे और दूसरी ओर E और O में भी कुछ प्रतिपक्षिता है। क्योकि जब A या E असत्य होते है, तब I या O सत्य हो सकते है। इसलिये हम उप-विरोध (Subalternations) को प्रतिपक्षिता का एक प्रकार मान सकते है।

यदि A या E असत्य है तो I या O सत्य हो सकते हैं और यदि I या O सत्य है तो A या E असत्य हो सकते हैं।

३. प्रतिपक्षिता का वर्ग
(The Square of Opposition)

प्रतिपक्षिता को विभिन्न प्रकार के वर्गो की आकृति में दिखलाना प्रतिपक्षिता का वर्ग कहा जाता है। प्रतिपक्षिताका परम्परानुगत वर्ग अरिस्तू के वर्ग पर आधारित है, फिर भी दोनो मे थोडा अन्तर है, जो नीचे स्पष्ट किया जाता है.
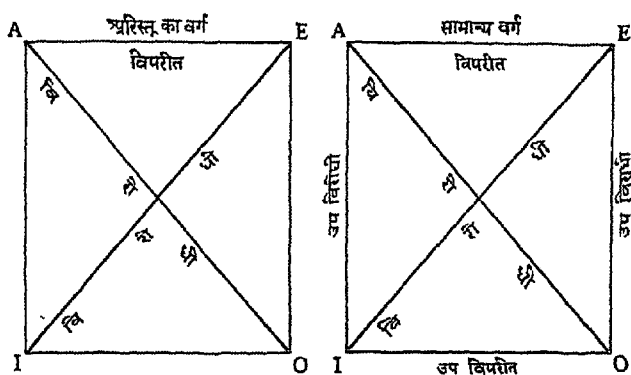
अरिस्तू (Aristotle) के अनुसार चार प्रकार की प्रतिपक्षिता सम्भव है।

(१) सर्वव्याप्तिमय विधिवाचक की सर्वव्याप्तिमय निषेधवाचक से। अर्थात् (A) की (E) से

(२) सर्वव्याप्तिमय विधिवाचक की अल्पव्याप्तिमय निषेधवाचक से।
अर्थात् (A) की (O) से

(३) सर्वव्याप्तिमय निषेधवाचक की अल्प व्याप्तिमय विधिवाचक से।
अर्थात् (E) की (I) से

(४) अल्पव्याप्तिमय विधिवाचक की अल्पव्याप्तिमय निषेधवाचक से।
अर्थात् (I) की (O) से

परन्तु अरिस्तू (Aristotle) यह भी कहता है कि वास्तव मे तीन प्रकार की प्रतिपक्षिता होती है अर्थात् A की E से, A की O से और E की I से[1]।

(१) विपरीत प्रतिपक्षी—A और E
(२) „ —I और O
(३) विरोधी —E और I

इसलिये अरिस्तू की तीन प्रकार की प्रतिपक्षिता वास्तव में दो ही प्रकार की सिद्ध होती है—(१) विपरीत प्रतिपक्षी (२) विरोधी प्रतिपक्षी। अरिस्तू के अनुसार A और E एक ही उद्देश्य और विधेय से युक्त होने पर एक दूसरे के प्रतिपक्षी होते हैं। A मे सम्पूर्ण वर्ग के लिये विधेय स्वीकृत रहता है और E मे वही विधेय उसी वर्ग के लिये अस्वीकृत रहता है। स्वीकृत और अस्वीकृत पूर्ण रूप से एक दूसरे के विपक्षी होते हैं। इसलिये

अरिस्तू के वर्ग में भुजाओं द्वारा विपरीत प्रतिपक्षी दिखाये गये है और कर्णों द्वारा विरोधी।

अरिस्तू के अनुसार विपर्यय की प्रतिपक्षिता पूर्ण होती है। A और E विपरीत प्रतिपक्षियो की प्रतिरूपता उस सीधी रेखा द्वारा सब से अच्छी तरह दिखाई जा सकती है जो उनके मध्य खीची जाती है। इसीलिये A और E का सम्बन्ध वर्ग की भुजा द्वारा दिखलाया जाता है। और A, O तथा E, I विरोधियो का सम्बन्ध कर्णो द्वारा व्यक्त किया जाता है। स्पष्ट है कि अरिस्तू उपविपरीत तथा उपविरोधी प्रतिपक्षियो को स्वीकार नही करता था। अरिस्तू के इसी वर्ग के

---

1 Analytica Priora II, 15, 63b, 25.

आधार पर परम्परानुगत वर्ग का भी विकास हुआ है। इसमें भी वर्ग की भुजाओं में से एक भुजा A, E (विपरीत) के मध्य सम्बन्ध बतलाती है और इस भुजा के सामने की भुजा I, O (उपविपरीत) के मध्य का सम्बन्ध बतलाती है। बाकी भुजाये A, I तथा E, O के (उपविरोधियो) के मध्य का सम्बन्व बतलाती है और कर्णों के द्वारा A, O तथा E, I (विरोधियो) के मध्य का सम्बन्ध दिखलाया गया है।

परम्परानुगत सामान्य व्यवहार के वर्ग की आलोचना।

इस आकृति मे सबसे बडा दोष यह है कि विपरीत और उपविपरीत प्रतिपक्षिता के लिये एक-सी रीति का व्यवहार किया गया है और उसमें महत्तम अर्थ-व्याप्ति (Superimplication) और लघुत्तम अर्थ-व्याप्ति (Sub implication) को नही दिखलाया गया है। इसलिये कुछ आधुनिक नैयायिको ने प्रतिपक्षिता दिखलाने के लिये नई आकृतियो का व्यवहार किया है। इनमे कुमारी स्टेबिंग, (Miss Stebbing) की आकृति अधिक उपयुक्त है।[1] कुछ रूपान्तर के साथ हम इसी आकृति को स्वीकार करते है। गृहीत आकृति का, जो स्टेबिंग की आकृति का रूपान्तरित प्रतिरूप है, नीचे विवरण दिया जाता है।

1. A Modern Introduction to Logic, P. 59, Edition 1
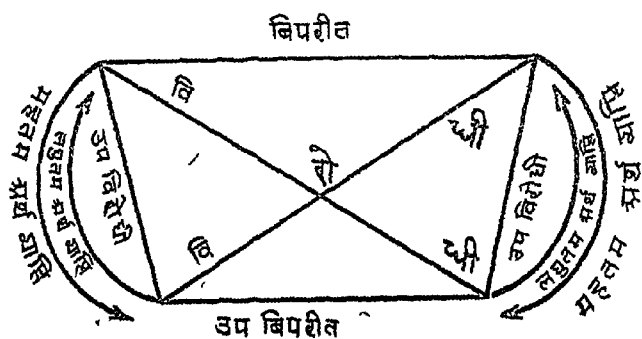
स्टेविंग अपनी आकृति में दोनो उपविरोधियों को असयुक्त रखती है। महत्तम अर्थव्याप्ति (Super-implication) और लघुत्तम अर्थव्याप्ति को कुछ तीरो द्वारा दिखा देती है। हम लोग रूपान्तरित आकृति में उपविरोधियों को दोनो सिरो पर एक सीधी रेखा से जोडते हैं जो उपविरोध व्यक्त करती है। शेष प्रतिरूपता के लिये हम स्टेविंग की आकृति स्वीकार करते हैं। विपरीत और उपविपरीत मे अन्तर है। स्टेविंग ने विपरीत की प्रतिरूपता दिखाने के लिये बडी सीधी रेखा का उपयोग किया है और उपविपरीतता दिखाने के लिए उससे छोटी रेखा को लिया है।

अध्याय १२ : अनुशीलन

१. निर्णय-वाक्यों की प्रतिपक्षिता की व्याख्या करो।

२. प्रतिपक्षिता कितने प्रकार की होती है? प्रत्येक को उदाहरण देकर समझाओ।

३ उपविरोध क्या है? व्याख्या करो। क्या यह भी प्रतिपक्षिता का एक भेद है?

४ प्रतिपक्षिता के वर्ग को समझाओ। स्टेविंग की आकृति क्यो अधिक महत्वपूर्ण है?

५. उपविपर्यय की विरोध और विपर्यय से तुलना करो।

६ विरोध और मध्यनिषेधक नियम मे कोई सम्बन्ध हो तो समझा कर लिखो।

७. परम्परानुगत सामान्य वर्ग में क्या त्रुटियाँ है?

अध्याय १३

अनुमान (Inference)

१. अनुमान का लक्षण

अनुमान ज्ञान का वह रूप है जिसमे ज्ञात से अज्ञात की ओर बढा जाता है। एक ज्ञात सत्य के आधार पर अज्ञात के एक टुकडे को ज्ञात किया जाता है। पहले कोई बात व्यक्त की जाती है फिर उस ज्ञात वस्तु से अज्ञात की ओर गमन किया जाता है। उसके अधार पर एक नई वस्तु का पता लगाया जाता है। चिन्तन की इसी गति को अनुमान कहते है। इस प्रकार जब हम कुछ दूर पर धुँआ देखते है तब उसके आधार पर इस निश्चय पर पहुँचते है कि वहाँ आग है। चिन्तन की इस क्रिया को अनुमान कहते है। यहाँ पर हम धुआँ पाते है न कि आग। फिर भी धुआँ के आधार पर यह निश्चय करते है कि वहाँ पर आग है। सक्षेप मे कह सकते है कि पहले हमको *यह निर्णय-वाक्य* मिलता है, "वहाँ धुआँ का स्तम्भ है" और फिर इसके आधार पर इस निर्णय-वाक्य पर पहुँचते है, "वहाँ पर आग है"। यह दूसरा वाक्य जो नया ज्ञान व्यक्त करता है निगमन या निष्कर्ष (Conclusion) कहलाता है और पहला वाक्य निगमन-समर्थक-वाक्य (Premise) कहा जाता है। इसको दी हुई शर्त या आधार-भूत वाक्य (Datum) भी कहते है।

चिन्तन की ज्ञात से अज्ञात की ओर गति को अनुमान कहते है।

नये सत्य को व्यक्त करनेवाला वाक्य निगमन कहलाता है और दिया हुआ ज्ञात वाक्य निगमन समर्थक-वाक्य कहा जाता है।

अनुमान पद का अभिप्राय

अनुमान पद के दो पार्श्व होते है—(१) एक प्रक्रिया और (२) दूसरा

अर्थात् अनुमान पहले एक ऐसी मानसिक प्रक्रिया माना जाता है जिससे हम एक नये सत्य पर पहुँचते हैं। इस नये सत्य का आधार कोई दिया हुआ निर्णय-वाक्य रहता है; दूसरे अनुमान उस निष्कर्ष को कहते हैं जो हमें दिए हुए निर्णय-वाक्य के आधार पर प्राप्त होता है।

अनुमान या तो मानसिक प्रक्रिया है या उसका परिणाम।

निगमन-समर्थक-वाक्य और निगमन में पार्थक्य नहीं होता

अनुमान के दोनों पार्श्व एक दूसरे से स्वतंत्र नहीं कहे जा सकते। हम इसके दोनों पार्श्वों को अलग नहीं कर सकते। यदि यह मानसिक प्रक्रिया है तो यह केवल 'प्रक्रिया' (Process) नहीं कहा जा सकता। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे ज्ञात सत्य से हम अज्ञात सत्य को प्राप्त करते हैं। इसलिए अनुमान की प्रक्रिया का अन्त परिणाम प्राप्ति में होता है, जिसे निष्कर्ष या निगमन कहते हैं। इसके प्रतिकूल यदि निष्कर्ष एक परिणाम है तो यह एक मानसिक प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है। निष्कर्ष ऐसा निर्णय-वाक्य है जो अपने आप खड़ा नहीं रह सकता। इसे किसी निर्णय-वाक्य का सहारा चाहिए। इसलिए निष्कर्ष सदैव ऐसे निर्णय-वाक्य से या वाक्यों से सम्बन्धित रहता है, जो उनके लिए आधारभूत होते हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि निष्कर्ष अनुमान की मानसिक प्रक्रिया का अग्रशीर्ष है। इसलिए जब हम अनुमान को निष्कर्ष कहेंगे तो इसका सम्बन्ध हम निष्कर्ष की मानसिक प्रक्रिया से भी जोड़ेंगे। जो हमें एक या कई एक निर्णय-वाक्य से एक नये निर्णय-वाक्य पर पहुँचाता है। फिर यदि हम अनुमान को एक मानसिक प्रक्रिया मानें तब कुछ दिये हुए निर्णयवाक्यों के आधार पर हम एक नये निर्णय-वाक्य पर पहुँचने का कार्य करते हैं। अस्तु दोनों का वास्तविक अभिप्राय एक ही होता है। इसलिए अनुमान को दो अर्थों में ग्रहण नहीं कर सकते। यह एक ही अर्थ में गृहीत हो सकता

अनुमान का दो अर्थ नहीं होता। चाहे उसे हम मानसिक प्रक्रिया मानें चाहे परिणाम, दोनों का तात्पर्य एक है अर्थात् मनका ज्ञात सत्य के आधार पर अज्ञात सत्य की प्राप्त करना।

है। इसलिए सक्षेप मे इसकी यह परिभाषा होगी कि अनुमान एक ऐसी मानसिक प्रक्रिया है जिसमे किसी दिये हुए निर्णय-वाक्य या वाक्यो के आधार पर हम एक नये ज्ञान को प्राप्त करते है।

३. अनुमान और तर्कोक्ति (Inference & Argument)

> **साधारणतः तर्क-उक्ति अनुमान का ही भाषा में व्यक्तरूप माना जाता है।**

कभी-कभी अनुमान और तर्क-उक्ति में अन्तर बताया जाता है। साधारणत: तर्क-उक्ति को भाषा मे व्यक्त अनुमान का ही रूप माना जाता है। किन्तु यदि सचमुच देखा जाय तो तर्क-उक्ति का अर्थ अधिक विस्तृत है। इसका अर्थ है तर्क या अनुमान के द्वारा किसी कथन् को प्रमाणित करना। इस दृष्टि से एक तर्क-उक्ति में हम निर्णय-वाक्य से प्रारम्भ करते है। फिर आवश्यक निगमन-समर्थक-वाक्य की तलाश करते हैं। इसमे सन्देह नही कि तर्क-उक्ति (Argument) वास्तव में वही है जो तर्क (Reasoning) या अनुमान (Inference) फिर भी तर्क-उक्ति और अनुमान मे अन्तर है। अनुमान मे हम किसी दिये हुए निर्णय-वाक्य से या वाक्यों से प्रारम्भ करते है फिर यह देखते है कि उससे या उनसे कौन-सा निर्णय-वाक्य मिलता है। परन्तु तर्क उक्ति मे हम एक निर्णय-वाक्य से प्रारम्भ करते हैं। फिर उसके समर्थन मे हम दूसरे निर्णय-वाक्य प्रस्तुत करते है। स्पष्ट है कि तर्क-उक्ति मे अनुमान अन्तर्निहित रहता है, परन्तु एक तर्क-उक्ति केवल एक अनुमान ही नही कही जा सकती। तर्क-उक्ति (Argument) अर्थ मे अनुमान (Inference) से कुछ अधिक व्यापक है।

> **तर्क-उक्ति में तर्क या अनुमान द्वारा किसी उक्ति की प्रामाणिकता प्रतिष्ठित की जाती है।**

४. अनुमान के प्रकार · अव्यवहित और व्यवहित अनुमान (Immediate and Mediate Inference)

परम्परानुगत अनुमान के दो रूप माने जाते है। अव्यवहित और व्यवहित।

फिर इनके भी कई उप प्रकार हैं। अव्यवहित अनुमान में एक निर्णय-वाक्य से सीधा निष्कर्ष निकाला जाता है। इसलिए इसको एक निगमन-समर्थक निर्णय-वाक्य का अनुमान कहा जाता है। अव्यवहित अनुमान के भिन्न-भिन्न प्रकार हैं। इसका वर्णन आगे के अध्याय मे किया जायगा।

अव्यवहित अनुमान एकाकी निगमन समर्थक-वाक्य का अनुमान होता है।

व्यवहित अनुमान (Mediate Inference)

व्यवहित अनुमान मे एक से अधिक निगमन या आगमन-समर्थक वाक्य (Premises) होते हैं। इसमे एक वाक्य से सीधे दूसरे वाक्य पर नही पहुँचा जाता। इसमे हम दो या दो से अधिक वाक्यो को एक साथ लेते है और फिर उनके आधार पर एक नया निष्कर्ष निकालते है। व्यवहित अनुमान के भिन्न-भिन्न रूप है। उन्हें निगमन (Deduction) और आगमन (Induction) कहते हैं।

व्यवहित अनुमान में दो या दो से अधिक निगमन समर्थक-वाक्य रहते हैं।

निगमन अनुमान में दो निगमन-समर्थक-वाक्य (Premises) रहते है किन्तु आगमन अनुमान मे दो या दो से अधिक आगमन-समर्थक-वाक्य होते है। निगमन में निष्कर्ष निगमन-समर्थक-वाक्यो (Premises) से अधिक व्यापक नही रहता, किन्तु आगमन में निष्कर्ष आगमन-समर्थक-वाक्यो (Premises) से अधिक व्यापक होता है। आगमन के सिद्धान्त पर हम फिर विचार करेंगे। अभी निगमन पर ही विचार करना है। निगमन के दो भेद होते हैं। एक को निगमनात्मक अनुमान या न्याय (Syllogism) कहते है और दूसरे को अनिगमनात्मक (Non-Syllogistic) अनुमान

व्यवहित अनुमान के निगमन और आगमन दो मूलभूत रूप है। निगमन में दो समर्थक-वाक्य होते है, पर आगमन में दो या दो से अधिक समर्थक-वाक्य होते हैं। निगमन में निष्कर्ष समर्थक-वाक्यो से अधिक व्यापक नहीं होता। आगमन में होता है।
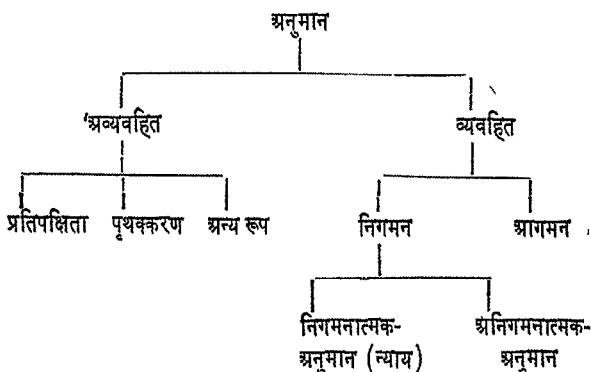
कहते हैं। नीचे इन्हे एक तालिका के रूप में रक्खा जाता है.-

अध्याय १३ : अनुशीलन

१. अनुमान का लक्षण बताओ।

२. एक निर्णय-वाक्य और अनुमान मे क्या अन्तर है ?

३. कुछ लोग कहते है कि 'अनुमान या तो प्रक्रिया है या परिणाम।' इस विषय मे तुम्हारा क्या मत है ?

४. क्या तुम तर्क-उक्ति और अनुमान मे अन्तर समझते हो ? युक्ति-युक्त उत्तर दो।

५. अनुमान के भेद समझाकर लिखो।

६. क्या यह कहना पर्याप्त होगा कि अव्यवहित अनुमान एक समर्थक-वाक्य का अनुमान है ?

७. भिन्न प्रकार के व्यवहित अनुमानो में अन्तर बताओ।

८. अनुमानो को तालिका के द्वारा समझाओ।

अध्याय १४

अव्यवहित अनुमान (Immediate Inference)

नैयायिकों ने अव्यवहित अनुमान को कई शीर्षकों के अन्तर्गत रखा है। जैसे—प्रतिपक्षिता (Opposition), परिवर्तन सहसंकुचन (Eduction), बोध-ग्रन्थि (Complex Conception), निर्धारक विशेषता (Added Determinants), सम्बन्ध परिवर्तन (Change of Relations), रूप-परिणाम (Model Consequences) और सम्बन्धान्तर (Converse Relation) आदि।

(१) प्रतिपक्षिता से अनुमान
(Inference by Opposition)

हम पहले देख चुके हैं कि प्रतिपक्षिता के चार भेद होते हैं। उनके नाम हैं — विपर्यय (Contrariety), विरोध (Contradiction); उपविपर्यय (Sub-Contrariety), और उपविरोध (Sub-alternation)।

हम प्रतिपक्षिता से दिये हुए वाक्य से निष्कर्ष रूप एक दूसरा वाक्य प्राप्त कर सकते हैं।

विपर्यय की प्रतिपक्षिता—A-E (विपरीत)
विरोध की प्रतिपक्षिता—A-O & E-I (विरोध)
उपविपर्यय की प्रतिपक्षिता—I-O (उपविपरीत)
उपविरोध की प्रतिपक्षिता–A-I & E-O (उपविरोधी)

अब यह देखना है कि यदि कोई वाक्य A, E, I या O के आकार में दिया जाता है तो क्या प्रतिपक्षिता से निष्कर्ष रूप कोई दूसरा वाक्य प्राप्त किया जा सकता है? जब किसी दिये हुए वाक्य से एक नया वाक्य निकाला जा सकता है तब वह दिया हुआ वाक्य सत्य माना जाता है। ऐसे निष्कर्ष का तात्पर्य यही होता है कि यदि दिया हुआ वाक्य

सत्य है तो दूसरा वाक्य भी सत्य है। प्रतिपक्षिता-अव्यवहित-अनुमान का अनुसन्धान कुछ नैयायिक नीचे दी हुई रीति से करते है :—

(१)

सत्य	सत्य	असत्य	अनिश्चित
A	I	E, O	—
I	—	E —	A, O
E	O	A, I	—
O	—	A	E, I

(२)

असत्य	सत्य	असत्य	अनिश्चित
A	O	—	E, I
I	O, E	A	—
E	I	—	O, A
O	I, A	E	—

यह अनुसन्धान भ्रमात्मक है। अव्यवहित अनुमान का लक्षण कहता है कि 'अव्यहित अनुमान' वह अनुमान है जिसमे हम एक निर्णय-वाक्य से निगमन रूप दूसरा निर्णय-वाक्य प्राप्त करते है। किन्तु यदि एक निर्णय-वाक्य से निष्कर्ष के परिणाम-स्वरूप दूसरे निर्णय-वाक्य पर पहुँचा जाय तो इसका यह मतलब नही होता कि एक की सत्यता या असत्यता से हम दूसरे की सत्यता या असत्यता पर पहुँचते है।

अनुमान एक दिशा की ओर गतिशील होता है।

अनुमान एक ही दिशा को गतिशील होता है। इसमे पहले एक निर्णय-वाक्य को सत्य माना जाता है फिर इसके बल पर दूसरे वाक्य की सत्यता प्रमाणित की जाती है। इसलिए समर्थक-वाक्य (Premise) और निष्कर्ष (Conclusion) की असत्यता का प्रश्न ही नही उठता। अनुमान मे विशेषकर अव्यवहित अनुमान मे हम एक सत्य के बल पर आगे बढकर दूसरे सत्य पर पहुँचते

है - अर्थात् निगमन समर्थक-निर्णय-वाक्य (Premise Proposition) की सत्यता से हम निष्कर्ष (Conclusion) की सत्यता पर पहुँचते हैं।

इसके अतिरिक्त अव्यवहित अनुमान मे हम एक वाक्य से प्रारम्भ करते हैं जबकि प्रतिपक्षिता मे दो वाक्यो की आवश्यकता पडती है। अव्यवहित अनुमान मे हम दिये हुए निर्णय-वाक्य के आधार से एक दूसरे निर्णय-वाक्य पर पहुँचते हैं। जैसे, "सभी मनुष्य मर्त्य हैं" एक दिया हुआ वाक्य है। इसके आधार पर हम यह निष्कर्ष प्राप्त करते है कि "कुछ मनुष्य मर्त्य हैं"। यह सामान्य रूप मे अव्यवहित अनुमान है। प्रतिपक्षिता मे हमको एक साथ दो वाक्यो को लेना पडता है। ये दोनो वाक्य एक ही उद्देश्य और विधेय रखते हैं किन्तु गुण या परिमाण या दोनो मे भिन्न होते हैं। जैसे, "सभी मनुष्य मर्त्य हैं", "कोई मनुष्य मर्त्य नही है" दो निर्णय-वाक्य हैं। इनमे पहला A निर्णय-वाक्य है और दूसरा E, ये दोनो एक ही उद्देश्य और विधेय रखते हैं और विपरीत निर्णय-वाक्य कहे जाते हैं।

अनुमान में एक निर्णय-वाक्य दिया हुआ रहता है। प्रतिपक्षिता में दो।

अब इन दो विपरीत निर्णय-वाक्यो मे यदि एक सत्य होता है तो दूसरा असत्य। परन्तु यहाँ पर न तो 'A' न 'E' ही सत्यनिर्दिष्ट है। इसलिए इन दोनो के सम्बन्ध में अब तक जो कहा गया है उससे कोई अनुमान नही निकलता।

प्रतिपक्षिता अनुमान नहीं कही जा सकती।

यह अवश्य सभव है कि जहाँ केवल 'A' या 'E' सत्य हो वहाँ अनुमान निकाला जा सकता है। पर वह अनुमान अव्यवहित अनुमान न होगा। यह ऐसा अनुमान होगा जो साधारण न्याय न होकर एक गुम्फित न्याय होगा। मान लिया कि उपर्युक्त वाक्य 'A' सत्य है। इससे हम निम्न अनुमान निकालेंगे।

यदि एक विपरीत वाक्य सत्य है तो दूसरा असत्य होगा।

A (विपरीत मे से एक) सत्य है।

∴ E (विपरीत में से दूसरा) असत्य है।

यह अनुमान जरा गुम्फित है। कम-से-कम यह अव्यवहित नही है। निगमन दो समर्थक-वाक्यो पर आधारित है। यह केवल विपरीत प्रतिपक्षियो

के लिए ही घटित नही होता, बल्कि सभी प्रतिपक्षियो के लिए घटित होता है। इसलिए हम इस परिणाम पर पहुँचते है कि प्रतिपक्षिता (Opposition) से कोई अनुमान (Inference) प्राप्त नही हो सकता।

कुछ लोग कह सकते है कि हम A से I और E से O निर्णय-वाक्यो को निष्कर्ष रूप मे प्राप्त कर सकते है। यह सच है कि "सब मनुष्य मर्त्य है" से हम "कुछ मनुष्य मर्त्य है" निगमन रूप मे प्राप्त कर सकते है, किन्तु इसे प्रतिपक्षिता का अनुमान नही कह सकते। यदि हम इस पर विचार करे कि A और I तथा E और O किस प्रकार के प्रतिपक्षी है तो यह बात स्पष्ट हो जाती है। स्पष्ट है कि A की सत्यता से I की भी सत्यता प्रमाणित हो जाती है, उसी प्रकार E यदि सत्य है तो O भी सत्य होता है। यदि कहा जाय कि "सब मनुष्य मर्त्य है" सत्य है। तो "कुछ मनुष्य मर्त्य है" भी सत्य माना जाता है। इसी प्रकार यदि कहा जाय कि "कोई मनुष्य पूर्ण नही है" सत्य है तो "कुछ मनुष्य पूर्ण नही है" भी सत्य माना जायगा। इसलिए जाहिरा तौर पर A और I तथा E और O आपस मे प्रतिपक्षी प्रतीत नही होते। यह ठीक है फिर भी ऐसा नही कहा जा सकता कि A और I मे तथा E और O मे प्रतिपक्षिता नही है। जब A असत्य होता है तब I हर हालत मे असत्य नही कहा जा सकता और जब I सत्य होता है तब हर हालत में A भी सत्य नही होता है। यदि "सब मनुष्य मर्त्य है" सत्य है, तो "कुछ मनुष्य मर्त्य है" भी अवश्य सत्य है पर यदि "सब मनुष्य पूर्ण है" असत्य है तो "कुछ मनुष्य पूर्ण है" भी हर हालत में असत्य नही हो सकता। वह सत्य हो सकता है और असत्य भी। और यदि "कुछ लोग पूर्ण है" सत्य है

A से I तथा E से O की गति अनुमान नहीं कही जा सकती।

A में I का और E में O का समाहार होता है। इसलिये वे परस्पर प्रतिपक्षी नहीं हो सकते।

A जब असत्य होता है, पर I की असत्यता का भी समाहार नही करता, तब वह I का प्रतिपक्षी होता है।

I जब सत्य होता है, पर A की सत्यता नहीं बता सकता, तब वह A का पतिपक्षी होता है।

तो यह आवश्यक नही होता कि "सब लोग पूर्ण हैं" भी सत्य है। यह असत्य हो सकता है। इससे प्रकट हो जाता है कि, A और I (कुछ अंश में) एक दूसरे के प्रतिपक्षी हैं। वे A की असत्यता तथा I की सत्यता की दृष्टि से एक दूसरे के प्रतिपक्षी हैं। इसी प्रकार E और O भी परस्पर प्रतिपक्षी प्रमाणित किये जा सकते हैं। E के असत्य होने पर O सत्य हो सकता है और O के सत्य होने पर E असत्य हो सकता है।

E जब असत्य हो, पर O की असत्यता का समाहार न करे, तब वह O का प्रतिपक्षी होता है।

O जब सत्य हो, पर E को सत्य न बता सके, तब वह E का प्रतिपक्षी होता है।

किन्तु कठिनाई यह है कि इन प्रतिपक्षिताओ से जिन्हे उपविरोधी (Subalternation) कहते हैं हम उस प्रकार कोई अनुमान नही निकाल सकते जिस प्रकार अन्य प्रतिपक्षिताओ से कर सकते हैं? इनसे जो अनुमान निकलेगा, वह गुम्फित और व्यवहित होगा। उसकी प्रस्तावना दो समर्थक वाक्यो की बनी हुई होगी। ऐसे अनुमान का आकार नीचे लिखे अनुसार होगा —

(१) यदि A असत्य है तो I सत्य हो सकता है।
A असत्य है।
∴ I सत्य हो सकता है।

(२) यदि I सत्य है तो A असत्य हो सकता है।
I सत्य है।
∴ A असत्य हो सकता है।

(३) यदि E असत्य है तो O सत्य हो सकता है।
E असत्य है।
∴ O सत्य हो सकता है।

(४) यदि O सत्य है तो E असत्य हो सकता है।
O सत्य है।
∴ E असत्य हो सकता है।

परन्तु इनमें से कोई भी अव्यवहित अनुमान नही कहा जा सकता, क्योंकि

इनमें से हम किसी मे एक वाक्य से चलकर दूसरे वाक्य पर नही पहुँचते। यह अवश्य कहा जा सकता है कि हम निगमन रूप एक A वाक्य से एक I वाक्य अथवा एक E से O वाक्य अवश्य प्राप्त कर लेते है। परन्तु A या E से जो अनुमान निकलता है वह निगमन द्वारा न कि प्रतिपक्षिता द्वारा। अव्यवहित अनुमान मे हम एक दिए हुए वाक्य से चलकर एक दूसरे वाक्य पर पहुँचते है, जो एक नया वाक्य होता है। इस क्रिया में हम दिए हुए वाक्य को परिवर्तित नही करते।

परिवर्त्तन-सह-सकुचन (Eduction)

परिवर्त्तन-सह-सकुचन-अनुमान वह अव्यवहित अनुमान कहा जाता है जिसमे निष्कर्ष निगमन-समर्थक-वाक्य (Premise) से उद्देश्य या विधेय अथवा दोनो से भिन्न होता है। इस प्रकार के अनुमान मे दिये हुए निर्णय-वाक्य के अर्थ की व्याख्या करके निष्कर्ष को प्राप्त किया जात है।

परिवर्त्तन-सह-संकुचन के भेद (Kinds of Eduction)

इस अनुमान के चार भेद होते है, जो स्थानान्तरकरण या परिवर्त्तन (Conversion) अस्ति-नास्तिकरण या प्रतिवर्त्तन (Obversion) स्थिति-निषेध-स्थानान्तरकरण (Contraposition) और व्यतिक्रमकरण (Inversion) कहलाते हैं।

स्थानान्तरकरण (Conversion)

स्थानान्तरकरण अनुमान का वह रूप माना जाता है, जिसमे एक दिये हुए वाक्य के उद्देश्य और विधेय को स्थानान्तरित करके निष्कर्ष निकाला जाता है।

स्थानान्तरकरण का लक्षण

इसमे मूल वाक्य का उद्देश्य निष्कर्ष का विधेय बन जाता है और मूल का विधेय निष्कर्ष का उद्देश्य। दिया हुआ वाक्य परिवर्त्य (Convertend) कहा जाता है और उसका निष्कर्ष परिवर्तित (Converse) वाक्य कहा जाता है। सुभीते के लिये इस प्रक्रिया को परिवर्तन कहा जायगा। इस प्रक्रिया के कुछ नियम है, जो नीचे दिए जाते है।

(अ) स्थानान्तरकरण की क्रिया में परिवर्त्यं (Convertend) का

गुण नही बदलता अर्थात् यदि परिवर्त्य विधिवाचक है तो परिवर्तित (Converse) विधिवाचक होगा अथवा जब परिवर्त्य निषेधवाचक है, तब परिववर्तित भी निषेधवाचक होगा।

(ब) जो पद परिवर्त्य में पूर्ण-व्याप्ति नही रखते वे परिवर्तित में भी अपूर्ण-व्याप्तिवाले होते हैं।

स्थानान्तरकरण के दो प्रकार (Two Kinds of Conversion)

स्थानान्तरकरण (Conversion) के दो प्रकार होते है। पहला साधारण स्थानान्तरकरण कहा जाता है और दूसरा सकोचात्मक स्थानान्तरकरण (Conversion by limitation or per accidens) कहा जाता है। साधारण स्थानान्तरकरण परिवर्त्तन का वह रूप है, जिसमें परिवर्त्य का परिमाण नही बदलता, अर्थात् परिवर्त्य वाक्य सर्व-व्याप्तिवाचक ((universal) है तो परिवर्तित वाक्य भी सर्व-व्याप्तिवाचक होगा और अगर परिवर्त्य वाक्य अल्प-व्याप्तिवाचक (Particular) है तो परिवर्तित वाक्य भी अल्प-व्याप्तिवाचक होगा। सकोचात्मक स्थानान्तरकरण परिवर्तन का वह रूप है, जिसमे परिवर्तित वाक्य का निष्कर्ष परिमाण मे परिवर्त्य से भिन्न होता है, अर्थात् यदि परिवर्त्य सर्वव्याप्तिवाचक है तो परिवर्तित अल्प-व्याप्तिवाचक वाक्य होगा।

वाक्य A का स्थानान्तरकरण I वाक्य से होता है, यह प्रक्रिया संकोचात्मक परिवर्तन से होती है। अस्तु A का स्थानान्तर I है

सब S है P ... ... A (परिवर्त्य)

∴ कुछ P है S ... . I (परिवर्तित)

यहाँ पर जैसा कि स्थानान्तर परिवर्तन मे होना चाहिए वाक्य "सब S है P" के उद्देश्य और विधेय स्थानान्तरित हो जाते हैं। नये वाक्य मे P उद्देश्य बन जाता है और S विधेय। पहले नियम के अनुसार परिवर्त्य का गुण (Quality) नही बदलता। "सब S है P" विधिवाचक वाक्य है और इसी प्रकार नया वाक्य "कुछ P है S" भी विधिवाचक है। दूसरे नियम के अनुसार P जो कि परिवर्त्य मे पूर्ण व्याप्ति नही रखता, वह परिवर्तित मे भी अपूर्ण-व्याप्ति

(undistributed) ही रखता है। इस प्रकार A को स्थानान्तरित करने से हम I पाते है।

मूर्त्त उदाहरण

सब मनुष्य मर्त्य है ... ... A (परिवर्त्य)

∴ कुछ मर्त्य व्यक्ति मनुष्य है .... I (परिवर्तित)

A का सामान्यत साधारणस्थानान्तरकरण नही होता।

यदि A का साधारणस्थानान्तर किया जाय, तब परिवर्तित वाक्य का उद्देश्य पूर्ण-व्याप्तिमय (Distributed) हो जायगा जो परिवर्त्य वाक्य मे अपूर्ण-व्याप्तिमय (Undistributed) है। इससे प्रथम नियम भग होता है। A के साधारण स्थानान्तरकरण से हमें विडम्बना में पड जाना पडता है। ऊपर के उदाहरण मे यदि हम "सब मनुष्य मर्त्य है" से यह निष्कर्ष निकालें कि "सर्व मर्त्य व्यक्ति मनुष्य है" तो यह मिथ्या कथन होगा। मनुष्य के अतिरिक्त अन्य जीव भी है जो मर्त्य है। इसलिए ऐसा कहना कि "सब मर्त्य व्यक्ति मनुष्य है" नितान्त असगत होगा।

A का सरल स्थानान्तरकरण दूसरे नियम को भंग करता है।

कुछ विशेष प्रकार के A वाक्य स्थानान्तरकरण द्वारा परिवर्तित किये जा सकते है

जिन A वाक्यो में उद्देश्य और विधेय एक ही नाम-व्याप्ति रखते है अर्थात् जिन A वाक्यो मे उद्देश्य और विधेय एक ही व्यक्ति या व्यक्ति-समूह होते है वे साधारणस्थानान्तरकरण से परिवर्तित किये जा सकते है। जैसे—"दिल्ली भारत की राजधानी है" या "जवाहरलाल नेहरू भारत के सर्वप्रथम प्रधान-मत्री है" मे उद्देश्य और विधेय से एक वस्तु या व्यक्ति का बोध होता है और "सब मनुष्य विवेकशील प्राणी है" या "मनुष्य, घोडे और खच्चर पित्त-रहित जीव है" में उद्देश्य और विधेय की नाम-व्याप्ति समतुल्य है। इन वाक्यो मे उद्देश्य विधेय के स्थानान्तर में परिमाण में कोई अन्तर नही आता।

जब उद्देश्य और विधेय की नाम-व्याप्ति समतुल्य हो तब A वाक्य साधारण स्थानान्तर से परिवर्तित हो सकता है।

इसलिए इन वाक्यो को साधारण स्थानान्तर से परिवर्तित किया जा सकता है। इन परिवर्त्य-वाक्यो मे उद्देश्य और विधेय समतुल्य हैं। स्थानान्तरित होने पर भी ये समतुल्य ही रहते है इसलिए परिवर्तित वाक्य भी परिवर्त्य वाक्य की भाँति A वाक्य रहता है। अस्तु, स्थानान्तर होने पर भी परिमाण में कोई अन्तर नही आता। हम ऊपर लिखित वाक्यो को निम्नाकित विधि से स्थानान्तरित कर सकते हैं —

(१) A दिल्ली भारत की राजधानी है . . परिवर्त्य।
A ∴ भारत की राजधानी दिल्ली है. . . . . परिवर्तित।
A जवाहरलाल नेहरू भारत के सर्वप्रथम प्रधान मन्त्री हैं परिवर्त्य।
A ∴ भारत के सर्वप्रथम प्रधान मन्त्री जवाहरलाल नेहरू हैं परिवर्तित।

(२) A "सब मनुष्य विवेकशील प्राणी हैं . . . . परिवर्त्य।
A ∴ सब विवेकशील प्राणी मनुष्य हैं . . . . परिवर्तित।
A मनुष्य, घोडे और खच्चर पित्तरहित जीव हैं परिवर्त्य।
A ∴ सब पित्तरहित जीव मनुष्य, घोडे और खच्चर हैं परिवर्तित

E और I साधारण स्थानान्तर से परिवर्तित होते हैं। E का परिवर्तित रूप E और I का I होता है।

उदाहरण

साकेतिक उदाहरण E कोई S नही है P . . . . परिवर्त्य।
E ∴ कोई P नही है S . . . . परिवर्तित।
I कुछ S है P . . . . परिवर्त्य।
I ∴ कुछ P है S . . . . परिवर्तित।

मूर्त उदाहरण E कोई लाल फूल सुगन्धित नही होता परिवर्त्य।
E ∴ कोई सुगन्धित फूल लाल नही होता परिवर्तित।
I कुछ मनुष्य पुण्यात्मा होते हैं . . . . परिवर्त्य।
I ∴ कुछ पुण्यात्मा मनुष्य होते हैं . . परिवर्तित।

यहाँ पर E के परिवर्तन मे परिवर्त्य के उद्देश्य और विधेय स्थानान्तरित किये जाते हैं और परिवर्तित में परिवर्त्य का गुण बना रह जाता है। परिवर्त्य

वाक्य सर्व-व्याप्तिवाचक और निषेधवाचक दोनो ही है। इसलिए इसके उद्देश्य और विधेय दोनो पूर्ण-व्याप्तिमय (Distributed)) है। परिवर्तित में ये स्थान वदल देते हैं। अर्थात् उद्देश्य बनता है विधेय और विधेय बनता है उद्देश्य। परिवर्तित भी सर्व-व्याप्तिवाचक और निषेधवाचक है। और स्थाना-न्तरकरण के दूसरे नियम के अनुसार इसके उद्देश्य और विधेय पूर्ण-व्याप्तिमय (Distributed) हैं। इस प्रकार E का परिवर्तित रूप E होता है। इसमें परिवर्त्य और परिवर्तित का परिमाण समतुल्य रहता है इसलिए इस प्रक्रिया को साधारण स्थानान्तरकरण कहा जाता है।

I वाक्य अल्प व्याप्तिमय विधिवाचक वाक्य होता है। अल्प व्याप्तिमय होने के कारण यह अपने उद्देश्य को अपूर्ण व्याप्तिमय (Undistributed) रखता है और विधिवाचक होने के नाते यह अपने विधेय को भी अपूर्ण रखता है। वाक्य मे मूल विधेय परिवर्तित वाक्य का उद्देश्य बनता है। चूँकि परिवर्त्य का विधेय अपूर्ण व्याप्ति रखता है, इसलिए जब वह परिवर्तित का उद्देश्य बनता है, तब भी अपूर्ण व्याप्तिमय रह जाता है। फिर अल्पव्याप्तिवाचक होने के कारण I परिवर्त्य का उद्देश्य अपूर्ण व्याप्तिमय (Undistributed) रहता है। जब वह परिवर्तित वाक्य का विधेय बनता है तब भी अपूर्ण व्याप्तिमय ही रहता है, क्योकि पहले नियम के अनुसार परिवर्तित का वही गुण होना चाहिए जो परिवर्त्य का है। इसलिए परिवर्तित भी विधिवाचक ही होगा। परन्तु जब वह विधिवाचक होगा तब अपने विधेय को पूर्ण व्याप्तिमय नही रख सकता। इसलिए I का परिवर्तित वाक्य I ही होगा। यह साधारण स्थानान्तर-करण का दूसरा उदाहरण है।

O का परिवर्त्तन नही होता

"कुछ S नही है P" यह एक O वाक्य है। यदि हम इसका निरीक्षण करते है तो पाते है कि इसको परिवर्तित नही किया जा सकता। यदि "कुछ S नही है P" का परिवर्त्तन करते है तो परिवर्तित में 'S' विधेय बनता है और 'P' उद्देश्य। परिवर्त्तन के प्रथम नियम के अनुसार परिवर्त्य और परिवर्तित का गुण अभिन्न होना चाहिए। "कुछ S नही है P" एक निषेधवाचक वाक्य

है। इसलिए इसका परिवर्तित भी निषेधवाचक होना चाहिए। यदि परिवर्तित निषेधवाचक होता है तो इसका विधेय S (जो मूल वाक्य मे उद्देश्य है) पूर्ण व्याप्तिमय हो जाता है किन्तु मूल वाक्य मे S अपूर्ण-व्याप्तिमय है। यह परिवर्तन के दूसरे नियम का उल्लघन करता है। अस्तु, O परिवर्तित नही किया जा सकता।

नास्तिकरण (Negation) से O_I के परिवर्त्तन की चेष्टा

कुछ नैयायिक O को पहले I मे रूपान्तरित करते है और फिर I को परिवर्तित करते हैं। किन्तु यह प्रक्रिया सगत नही है। इसमे केवल आकृति का ध्यान रक्खा जाता है अर्थ का नही। "कुछ S नही है P" एक O वाक्य है। इसको "कुछ S है नही-P" के रूप मे रखकर I वाक्य बनाने की चेष्टा की जाती है। फिर भी यह अर्थ मे O ही रहता है। दूसरी बात यह है कि यदि इसको "कुछ नही-P है S" मे परिवर्तित भी किया जाय तो यह मूल O का परिवर्तित रूप नही होगा और न वह दिये हुए वाक्य से अव्यवहित अनुमान ही हो सकता है

अस्ति-नास्तिकरण या प्रतिवर्तन (Obversion)

अस्ति-नास्तिकरण अव्यवहित अनुमान का वह रूप है जिसमे निष्कर्ष दिये हुए वाक्य के निषेध का निषेध करके प्राप्त किया जाता है। दिये हुए वाक्य को प्रतिवर्त्य (Obvertend) और निष्कर्ष को प्रतिवर्तित वाक्य कहते है। सुभीते के लिए इसे प्रतिवर्तन कहा जायगा। अस्ति-नास्तिकरण के नियम नीचे दिये जाते है:—

(१) प्रतिवर्त्य का उद्देश्य प्रतिवर्तित का भी उद्देश्य होता है और विधेय का विरोधी (Contradictory) प्रतिवर्तित का विधेय बनता है।

(२) प्रतिवर्त्य का गुण प्रतिवर्तित मे बदल जाता है।

(३) प्रतिवर्तित का वही परिमाण होता है जो प्रतिवर्त्य का रहता है।

इस तरह A का प्रतिवर्तित E है

E का प्रतिवर्तित A है

I का प्रतिवर्तित O है
और O का प्रतिवर्तित I है

उदाहरण

A सब S है P .. .. A प्रतिवर्त्य।
∴ कोई S नही है P .. .. E प्रतिवर्तित।
सब मनुष्य मर्त्य है .. .. A प्रतिवर्त्य।
∴ कोई मनुष्य अमर्त्य (अमर) नही है . . . . . E प्रतिवर्तित।

E कोई S नही है P . . . . E प्रतिवर्त्य।
∴ सब S है नही-P . . . . A प्रतिवर्तित।
कोई हब्शी गोरा नही है . . . . E प्रतिवर्त्य।
सब हब्शी है नही-गोरे . . , ... A प्रतिवर्तित।

I कुछ S है P . . . . I प्रतिवर्त्य।
∴ कुछ S नही है P . . . . O प्रतिवर्तित।
कुछ लोग ईमानदार है . . . . I प्रतिवर्त्य
कुछ लोग नही है नही-ईमानदार (बेईमान)... O प्रतिवर्तित।

O कुछ S नही है P . . . . O प्रतिवर्त्य।
कुछ S है नही-P . . . . I प्रतिवर्तित।
कुछ लोग बुद्धिवृत्ति नही है . . . . . O प्रतिवर्त्य।
कुछ लोग है नही-बुद्धिवृत्ति . . . . I प्रतिवर्तित।

प्रतिवर्तित में प्रतिवर्त्य का अर्थ अक्षुण्ण रहता है। पर भिन्न शब्दों में रहता है।

अस्ति-नास्तिकरण (प्रतिवर्तन) व्याघातक और दुहरे निषेध के सिद्धान्त पर आधारित है। व्याघातक का तात्पर्य यह है कि दो परस्पर विरोधी एक साथ सत्य नही होते। एक की उपस्थिति से दूसरे की अनुपस्थिति सूचित होती है। प्रतिवर्तन में हम एक वाक्य के निषेध का निषेध करके निष्कर्ष निकालते है। जब हम 'सब S है P' को प्रतिवर्तित करते है, तब हम P के निषेध का निषेध कर देते है। यह निषेध का

निषेध बराबर होता है समर्थन के। इसलिए प्रतिवर्त्य और प्रतिवर्तित के अर्थ मे समतुल्यता रहती है।

वास्तविक प्रतिवर्तन (Material Obversion)

बेन (Bain) वास्तविक प्रतिवर्तन की चर्चा करता है। उसका कहना है कि अनुभूति के आधार पर हमको प्रतिवर्त्य से प्रतिवर्तित वाक्य को प्राप्त करना चाहिए। जैसे अनुभव से हम जानते हैं कि "शीत अप्रिय है" और "गर्मी प्रिय है" इसलिए 'शीत अप्रिय है" का "गर्मी प्रिय है" प्रतिवर्तित वाक्य है। किन्तु यह मत भ्रामक है। यह प्रतिवर्तन नियमानुकूल नही निकाला जा सकता। यह अनुभव पर आधारित है न कि अनुमान पर। इसलिये वास्तविक प्रतिवर्तन जैसी कोई वस्तु नही हो सकती।

स्थिति-निषेध-स्थानान्तरकरण (Contraposition)

अव्यवहित अनुमान की इस प्रक्रिया मे पहले दिये हुए वाक्य के उद्देश्य और विधेय, दोनो का व्याघातक (Contradictory) रूप लिया जाता है। फिर उन पदो का स्थानान्तर किया जाता है। इस प्रकार निष्कर्ष रूप जो वाक्य प्राप्त होता है उसमे मूलवाक्य का गुण अथवा गुण और परिमाण दोनो परिवर्तित रहते है। सुभीते के लिए इसे निषेधात्मक परिवर्तन कहा जायगा। इसके नियम नितान्त सरल है। ये नीचे दिये जाते हैं।

निषेधात्मक परिवर्तन (Contraposition) मे पहले अस्ति-नास्ति-करण होता है। फिर स्थानान्तर किया जाता है। मूलवाक्य को कोई विशेष नाम नही दिया जाता। चूंकि निषेधात्मक परिवर्तित (Contrapositive) वाक्य प्रतिवर्तित वाक्य का स्थानान्तरित रूप है, इसलिए उक्त सरल नियम से अनुगत नीचे कुछ विस्तारपूर्वक नियम दिये जाते है —

(अ) निषेधात्मक परिवर्तन मे दिये हुए वाक्य का गुण परिवर्तित हो जाता है। अर्थात् यदि दिया हुआ वाक्य विधिवाचक है तो परिवर्तित वाक्य निषेधवाचक हो जाता है और यदि मूलवाक्य निषेधवाचक है तो परिवर्तित वाक्य विधिवाचक हो जाता है। ऐसा इसलिए होता है कि प्रतिवर्तित वाक्य

(Obverse) में मूल वाक्य का गुण बदल जाता है, किन्तु परिवर्तित (Converse) मे परिवर्त्य (Convertend) का गुण नही बदलता।

(ब) निषेध से परिवर्तित (Contrapositive) वाक्य में किसी ऐसे पद की व्याप्ति विस्तृत होकर पूर्ण न हो जाय जिसकी व्याप्ति मूलवाक्य मे अपूर्ण है। ऐसा इसलिए होना चाहिए कि परिवर्तन (Conversion) मे जो पद मूल वाक्य मे व्याप्ति मे अपूर्ण है, वह निष्कर्ष मे व्याप्ति को विस्तृत करके पूर्णव्याप्तिमय नही हो सकता।

चूँकि निषेधात्मक परिवर्तन (Contraposition) की प्रक्रिया प्रतिवर्तन (Obversion) और स्थानान्तर (Conversion) की प्रक्रियाओ का योग है, इसलिए ऊपर कथित नियम निषेधात्मक परिवर्तन (Contraposition) के लिए आधारभूत माने गये हैं।

A का स्थिति-निषेध-स्थानान्तरकरण

उदाहरण

	सब S है P	A दिया हुआ वाक्य।
A का स्थिति-निषिद्ध-	∴ कोई S नही है नही-P	E प्रतिवर्तित।
स्थानान्तरित E है।	∴ कोई नही-P है S......	E प्रतिवर्तित-परिवर्तित। =स्थिति-निषिद्ध-स्थानान्तरित।

E का स्थिति-निषेध-स्थानान्तरकरण

	कोई S नही है P	...E दिया हुआ वाक्य।
E का स्थिति-निषिद्ध-	∴ सब S है नही-P.	..A प्रतिवर्तित।
स्थानान्तरित I है।	∴ कुछ नही-P है S	I प्रतिवर्तित-परिवर्तित। =स्थिति-निषिद्ध-स्थानान्तरित।

I का स्थिति-निषेध-स्थानान्तरकरण नही हो सकता

कुछ S है P..... .I दिया हुआ वाक्य।

∴ कुछ S है नही-P . . . O प्रतिवर्तित।
किन्तु O स्थानान्तरित नही किया जा सकता।
इसलिए I का स्थिति-निषेध-स्थानान्तरकरण नही हो सकता।

O का स्थिति-निषेध-स्थानान्तरकरण

	कुछ S नही है P.	O दिया हुआ वाक्य।
O का स्थिति-निषिद्ध-स्थानान्तरित है I	∴ कुछ S है नही-P . .	I प्रतिवर्तित।
	∴ कुछ नही-P है S .	I प्रतिवर्तित परिवर्तित। =स्थिति-निषिद्ध-स्थानान्तरित।

यह परिवर्तन निषेधात्मक परिवर्तन (Conversion by Negation) है, जिसे हम पहले देख चुके है कि सगत नही होता।

स्थिति-निषेध-स्थानान्तर की प्रत्यक्ष-प्रक्रिया (Direct Process)

कुछ नैयायिक कहते है, कि प्रत्यक्ष प्रक्रिया से स्थिति-निषेध स्थानान्तर किया जा सकता है। उनके अनुसार दिया हुआ वाक्य, "सब S है P" सीधे ही बदला जा सकता है। पहले P का विरोधी अर्थात् "नही-P" निष्कर्ष के उद्देश्य के रूप में लिया जाय, और S को विधेय के। फिर "सब S है P" के गुण को बदल कर अर्थात् निष्कर्ष को निषेधात्मक (Negative) बनाकर हम निषेधात्मक परिवर्तन कर सकते है। किन्तु कठिनाई यह है कि निषेधात्मक रूप से परिवर्तित वाक्य का उद्देश्य मूल वाक्य के विधेय का विरोधी (Contradictory) होता है। इसलिए यह जानने के लिए कि, निषेधात्मक रूप से परिवर्तित वाक्य का उद्देश्य पूर्ण-व्याप्ति में रक्खा जाय या अपूर्ण-व्याप्ति मे, हमे प्रतिवर्तित वाक्य का निरीक्षण करना पडता है। मान लिया कि "सब S है P" का निषेधात्मक परिवर्तित वाक्य है, "कोई नही-P नहीं है S"। तब पद "नही-P" मूल वाक्य "सब S है P" में नहीं पाया जाता। इसलिए हम "सब S है P" से यह नही जान सकते कि पद "नही-P" निष्कर्ष मे पूर्णव्याप्तिमय

या अपूर्ण-व्याप्तिमय होगा। इसलिए निष्कर्ष के परिमाण के लिये हमें मूलवाक्य के प्रतिवर्तित वाक्य (Obverse) का निरीक्षण करना पडेगा। "सब S है P" को प्रतिवर्तित करके हम प्राप्त करते है "कोई S नही है नही-P" और तब हम जानते है कि "नही-P" परिवर्तित मे पूर्ण व्याप्तिमय है। इसकी पहली प्रक्रिया होगी प्रतिवर्तन और अन्तिम स्थानान्तर। इससे स्पष्ट है कि स्थिति निषेध स्थानान्तर एक व्यवहित प्रक्रिया है क्योकि इसमें दो प्रक्रियाओ का समाहार मिलता है। ये प्रक्रिया प्रतिवर्तन और स्थानान्तर करण है। इसलिए स्थिति-निषेध-स्थानान्तर वस्तुत अव्यवहित अनुमान नही कहा जा सकता। इसमे मूलवाक्य से निष्कर्ष पर हम सीधे नही पहुँचते।

क्या स्थिति-निषेध-स्थानान्तर बराबर है निषेध से स्थानान्तर के ? :—

स्थिति-निषेध-स्थानान्तर (Contraposition) की प्रक्रिया अस्ति-नास्ति (Obversion) और स्थानान्तर (Conversion) की प्रक्रियाओ का यौगिक रूप है और चूँकि अस्ति-नास्ति की क्रिया द्विगुण निषेध से की जाती है, इसलिए निषेध से स्थानान्तर और द्विगुण निषेध से स्थानान्तर एक ही क्रिया नही हो सकती।* "कोई नही-P नही है S" एक स्थिति-निषिद्ध-स्थानान्तरित (Contrapositive) वाक्य है। इसे हम "कोई S नही है नही-P" को स्थानान्तरित करके प्राप्त करते है जो कि P द्वारा S के निषेध का निषेध है।

व्यति-क्रमकरण (Inversion)

व्यति-क्रमकरण (Inversion) अव्यवहित अनुमान का वह रूप है जिसमें हम दिए हुए वाक्य से निष्कर्ष रूप एक दूसरा वाक्य प्राप्त करते है जिसका उद्देश्य मूल वाक्य के उद्देश्य का विरोधी (Contradictory) होता है। मूल वाक्य व्यति-क्रम्य (Invertend) और निष्कर्ष रूप प्राप्त वाक्य व्यति-क्रमित (Inverse) कहे जाते है। व्यति-क्रम-करण पूर्ण या अपूर्ण होता है। पूर्ण व्यतिक्रम-करण मे व्यतिक्रमित का

व्यति-क्रमकरण पूर्ण या अपूर्ण होता है।

* Mellone, P. 91.

विधेय व्यति-क्रम्य के विधेय का विरोधी होता है और अपूर्ण व्यति-क्रमकरण मे व्यति-क्रमित का विधेय वही होता है, जो व्यति-क्रम्य का होता है।

व्यति-क्रमकरण के दो मुख्य नियम हैं

(१) व्यति-क्रम्य (Invertend) और व्यति-क्रमित (Inverse) परिमाण मे भिन्न होते हैं। व्यति-क्रम्य वाक्य पूर्ण-व्याप्तिवाचक (Universal) होता है और व्यति-क्रमित वाक्य (Particular) होता है। इस नियम मे यह अन्तर्निहित है कि केवल पूर्ण व्याप्तिवाचक वाक्य ही व्यति-क्रमित किये जा सकते हैं।

(२) पूर्ण व्यति-क्रम करण मे व्यति-क्रमित और व्यति-क्रम्य गुण मे अभिन्न होते हैं। परन्तु इसके विपरीत अपूर्ण व्यति-क्रमकरण मे व्यति-क्रम्य और व्यति-क्रमित गुण मे भिन्न होते हैं।

व्यति-क्रमकरण की प्रक्रिया सीधी नही होती

व्यति-क्रमकरण मे हम व्यतिक्रम्य से व्यति-क्रमित पर तत्क्षण नही पहुँच जाते।

व्यति-क्रमकरण की प्रक्रिया अधिक उलझी हुई है। यह स्थानान्तर और प्रतिवर्तन का संश्लिष्ट रूप है।

व्यति-क्रमकरण की प्रक्रिया कुछ गुम्फित है और स्थिति-निषेध-स्थानान्तर (Contraposition) की प्रक्रिया से कही अधिक उलझी हुई है। स्थिति-निषेध-स्थानान्तरकरण मे हम पहले प्रतिवर्तित (Obvert) करते हैं। फिर स्थानान्तरित करके अभीष्ट निष्कर्ष प्राप्त कर लेते हैं किन्तु व्यति-क्रमकरण मे हम स्थानान्तरकरण या प्रतिवर्तनकरण से प्रारम्भ करते हैं और इन प्रक्रियाओ को तब तक जारी रखते हैं जब तक व्यति-क्रमित (Inverse) वाक्य मिल नही जाता।

A का व्यति-क्रमकरण

A	सब S हैं P	(१) व्यति-क्रम्य।
I ∴	कुछ P हैं S .	(२) स्थानान्तर से।
O	कुछ P नही है नही-S .	(३) प्रतिवर्तन से।

किन्तु हम इसके आगे नहीं जा सकते क्योंकि O का स्थानान्तर नही किया जा सकता। हमको अब यही रुक जाना पडेगा यद्यपि अभी "सब S है P" का व्यति-क्रमित (Inverse) नही मिल सका है। इसलिए दिये हुए वाक्य के प्रतिवर्तन से प्रारम्भ करके देखा जाय —

A सब S है बराबर P . (१) व्यति-क्रम्य।
E कोई S नही है P . . (२) पहले के प्रतिवर्तन से।
E कोई नही-P नही है S (३) दूसरे के स्थानान्तर से।
A ∴ सब नही-P है नही-S (४) तीसरे के प्रतिवर्तन से।
I ∴ कुछ नही-S है नही-P (५) चौथे के स्थानान्तर से। (पूर्ण व्यति-क्रम)
O ∴ कुछ नही-S है नही P . (६) पाँचवे के प्रतिवर्तन से। (अपूर्ण व्यति-क्रम)

A का पूर्ण व्यति-क्रमित I और अपूर्ण O है।

इस प्रकार पूर्ण व्यति-क्रम से हम A से I को पाते है और आशिक व्यति-क्रम से हम A से O को प्राप्त करते है।

E का व्यति-क्रमकरण

दिये हुए वाक्य के प्रतिवर्तन से प्रारम्भ किया जाता है।

E कोई S नही है P . (१) व्यति-क्रम्य।
A ∴ सब S है नही-P .. . (२) पहले के प्रतिवर्तन से।
I ∴ कुछ नही-P है S . . . .. (३) दूसरे के स्थानान्तर से।
O ∴ कुछ नही-P है नही S .... (४) तीसरे के प्रतिवर्तन से।

किन्तु O का स्थानान्तर नही किया जा सकता इसलिए यद्यपि अभी व्यति-क्रमित नही मिला है फिर भी हम आगे नही बढ सकते।

अब मूलवाक्य के स्थानान्तरकरण से प्रारम्भ किया जाय।

E कोई S नही है P .. (१) व्यति-क्रम्य।
E ∴ कोई P नही है S . . (२) पहले के स्थानान्तरकरण से।

A ∴ सब P है नहीं-S . . (३) दूसरे के प्रतिवर्तन से।

I ∴ कुछ नहीं-S है P ... (४) तीसरे के स्थानान्तर से।
(आंशिक व्यति-क्रमकरण)

O ∴ कुछ P नहीं है नहीं-S . (५) चौथे के प्रतिवर्तन से।
(पूर्ण व्यति-क्रमकरण)

E से निष्कर्ष रूप I अपूर्ण व्यति-क्रमित और O पूर्ण व्यति-क्रमित प्राप्त होते हैं।

I का व्यति-क्रमकरण नही हो सकता

I कुछ S है P .. (१) व्यति-क्रम्य।

I ∴ कुछ P है S ... . (२) पहले के स्थानान्तर से।

O ∴ कुछ P नहीं है नहीं-S . . (३) दूसरे के प्रतिवर्तन से।

अब हम इसके आगे नही जा सकते। क्योंकि O का स्थानान्तर नही हो सकता। इसलिए प्रतिवर्तन से प्रारम्भ किया जाय।

I कुछ S है P . . . . (१) व्यति-क्रम्य।

O कुछ S नही है नही-P . . (२) पहले के प्रतिवर्तन से।

किन्तु O का स्थानान्तरकरण नही हो सकता। इसलिए यह प्रक्रिया आगे नही बढाई जा सकती। इससे स्पष्ट हो जाता है कि I का व्यति-क्रमकरण नही हो सकता।

O का व्यति-क्रमकरण नही हो सकता

O कुछ S नही है P .. (१) व्यति-क्रम्य।

I ∴ कुछ S है नही-P .. . (२) पहले के प्रतिवर्तन से।

I ∴ कुछ नही-P है S . . (३) दूसरे के स्थानान्तर से।

O ∴ कुछ नही-P नही है नही-S (४) तीसरे के प्रतिवर्तन से।

किन्तु O का स्थानान्तर नहीं हो सकता, इसलिए आगे नहीं बढ सकते। इससे स्पष्ट हो जाता है कि O का व्यति-क्रमकरण नही हो सकता।

व्यति-क्रमकरण (Inversion) की प्रक्रिया मे इतना तूल-तवील है कि यह भी स्थिति-निषेध-स्थानान्तर-करण (Contraposition) की

तरह अव्यवहित अनुमान नही कहा जा सकता। इन दोनो मे हम दिये हुए वाक्य से सीधे निष्कर्ष नही निकाल सकते। इसलिए यह एक अजीव बात है कि इन दोनो प्रक्रियाओ को अव्यवहित अनुमान का दो पृथक रूप माना जाता है। जो हो, जब कुछ नैयायिक परिवर्तन-सह-सकुचन (Eduction) के चार भिन्न-भिन्न रूप मानते है तो उनका विवरण देना ही पडता है।

व्यति - क्रमकरण की प्रक्रिया बड़ी तूल की प्रक्रिया है। इसलिये इसे अव्यवहित अनु-मान नहीं कह सकते।

मूलवाक्य	स्थानान्तरित	प्रतिवर्तित	स्थिति निषेध-स्थानान्तरित	व्यति-क्रमित
A	I (कभी-कभी A)	E	E	I या O
E	E	A	I	O या I
I	I	O	×	× ×
O	×	I	I	× ×

A का पूर्ण व्यति-क्रमित I है।
A का अपूर्ण व्यति-क्रमित O है।
E का पूर्ण व्यति-क्रमित O है।
E का अपूर्ण व्यतिक्रमित I है।

हो सकता है		नही हो सकता है	
स्थानान्तरित	A, E, I	स्थानान्तरित	O
प्रतिवर्तित	A, E, I, O	प्रतिवर्तित	×
स्थिति-निषेध-स्थानान्तरित	A, E, O	स्थिति-निषेध-स्थानान्तरित	I
व्यति-क्रमित	A, E	व्यति-क्रमित	I, O

अनुमानाश्रित (Hypothetical) और वैकल्पिक (Disjunctive) वाक्यो के लिये परिवर्तन-सह-सकुचन (Eduction) की प्रक्रिया घटित नही होती। क्योकि उक्त वाक्यो मे उद्देश्य और विधेय निश्चित रूप से निर्णीत नही रहते और जब उद्देश्य और विधेय ही निर्णीत नही रहेगे तब किसका स्थानान्तर और किसका प्रतिवर्तन किया जायगा। फिर भी बहुत से नैयायिको ने इन वाक्यो को भी परिवर्तन की तराश पर चढाना चाहा है परन्तु यह मिथ्या प्रयास के सिवा और कुछ नही कहा जा सकता।

वाक्य का अनुमानाश्रित रूप होता है, "यदि A है B तो C है D"। यह वाक्य "S है P" के रूप में नही है। विना इस आकृति के S की तरह स्पष्ट उद्देश्य और P की तरह स्पष्ट विधेय नही मिल सकते। जब ऐसी बात है, तब हम "यदि A है B तो C है D" को कैसे स्थानान्तरित कर सकते है। स्थानान्तरकरण में उद्देश्य विधेय का स्थान लेता है और विधेय उद्देश्य का। परन्तु "A है B" और "C है D" मूल वाक्य के उद्देश्य और विधेय नही है। इसलिये परिवर्तन का प्रश्न ही नही उठता। फिर "A है B" और "C है D" पूरे वाक्य "यदि A है B, तो C है D" के दो तत्व मात्र है। इसलिये जब वे सम्पूर्ण वाक्य से अलग किये जाते है, तब वे अपना मूल अर्थ और सम्बन्ध खो बैठते है। इसलिये अनुमानाश्रित वाक्यो का ऐसा परिवर्तन नही हो सकता जो सगत हो।

वैकल्पिक वाक्यो के उद्देश्य और विधेय पृथक् किये जा सकते है किन्तु वैकल्पिक वाक्यो में विधेय गुम्फित होता है। इसलिये स्थानान्तर किसी तरह हो भी जाता है परन्तु प्रतिवर्तन की प्रक्रिया मे अर्थ का अनर्थ हो सकता है। स्थानान्तर और प्रतिवर्तन, ये दोनो परिवर्तन के मूल रूप है। जब ये ही नही घटित होते तो इनके यौगिक रूप स्थिति-निषेध-स्थानान्तर और व्यति-क्रम कैसे घटित हो सकते है।

(३) ग्रन्थि-बोध से अनुमान
(Inference by Complex Conception)

ग्रथि-बोध से अनुमान वह अनुमान है, जिसमे ग्रथिभावना से निष्कर्ष निकाला

जाता है। इस अनुमान मे उद्देश्य और विधेय परस्पर सम्बन्ध नही बदलते। उनकी ग्रन्थि भावना केवल विस्तृत होती है। यदि उद्देश्य और विधेय मूल में ही गुम्फित है, तो और अधिक गुम्फित हो जाते है।

उदाहरण —

(अ) मोर एक पक्षी है .... मूलवाक्य।
∴ मोर की शिखा एक पक्षी की शिखा है .... निष्कर्ष।
(ब) कुत्ता एक जानवर है .... मूलवाक्य।
∴ कुत्ते की दुम एक जानवर की दुम है . निष्कर्ष।

पहले उदाहरण में 'मोर' मूल उद्देश्य, 'मोर की शिखा' का एक अश है और 'पक्षी' मूल विधेय, "पक्षी की शिखा" का एक अश है। दोनो मे सम्बन्ध भेद नही हुआ है। इसी प्रकार दूहरे उदाहरण में 'कुत्ते की दुम' और 'जानवर की दुम' दो गुम्फित-बोध है, जिनमे पहले मे मूल उद्देश्य 'कुत्ता' एक अश है और दूसरे में मूल विधेय 'जानवर' एक अश है।

(४) निर्धारक विशेषता से अनुमान
(Inference by added Determinants)

इस अनुमान मे एक ही रीति से उद्देश्य और विधेय की विशेषता बताकर हम मूलवाक्य से निष्कर्ष रूप एक नया वाक्य प्राप्त करते है।

उदाहरण .

हब्शी एक मनुष्य है .. .... दिया हुआ वाक्य।
एक शिक्षित हब्शी एक शिक्षित मनुष्य है ... निष्कर्ष।

यहाँ पर उद्देश्य और विधेय मे एक ही निर्धारक अर्थात् "शिक्षित" जोडकर निष्कर्ष निकाला गया है।

कुछ नैयायिक कहते है कि ग्रन्थि-बोध से अनुमान और विशेषता निर्धारक से अनुमान मे कोई अन्तर नही है। परन्तु बात ऐसी नही है। ग्रन्थि-बोध में हम उद्देश्य और विधेय मे एक-सा कोई तत्व जोडते है और विशेषता-निर्धारक मे एक विशेषण दोनो मे जोड़ते है। पहले मे हम दो अनुरूप भावनायें प्राप्त करते है, परन्तु दूसरे मे हम दी हुई भावनाओ को ही विस्तृत करते है। इतना

होते हुए भी यह कहा जा सकता है कि वस्तुत इनमे से कोई अव्यवहित अनुमान नही है क्योकि इनमे हम निगमन निकाल कर कोई नया वाक्य नही प्राप्त करते। हम केवल दिये हुए वाक्य के उद्देश्य और विधेय मे कुछ जोड कर उन्हें बढा देते है। पर यह अनुमान नही हो सकता।

(५) सम्बन्ध-भेद से अनुमान
(Inference by Change of relation)

यह अव्यवहित अनुमान का वह रूप है, जिसमे हम निष्कर्ष रूप, सापेक्ष (Hypothetical) वाक्य से निरपेक्ष (Categorical) और निरपेक्ष से सापेक्ष तथा सापेक्ष से वैकल्पिक और वैकल्पिक से सापेक्ष वाक्य प्राप्त कर सकते है।

उदाहरण :—

	(अ) सब मनुष्य मर्त्य है।	निरपेक्ष।
निरपेक्ष से सापेक्ष	∴ यदि कोई व्यक्ति मनुष्य है तो वह मर्त्य है।	सापेक्ष।
सापेक्ष से निरपेक्ष	(ब) यदि वर्षा होती है तो सडके गीली हो जाती है।	सापेक्ष।
	∴ वर्षा होने की सब दशाये सडको के गीली होने की दशाये है।	निरपेक्ष।

परन्तु इनमे से किसी को अव्यवहित अनुमान नही कह सकते। इसमे जिसे निगमन कहा जाता है वह मूल वाक्य का केवल मौखिक हेर-फेर मात्र है।

(स) A है B या C — वैकल्पिक।

∴ यदि A है B तो A नही है C
या
यदि A है C तो A नही है B
या
यदि A नही है B तो A है C
या
यदि A नही है C तो A है B

} सापेक्ष।

ध्यान देने की बात है, केवल एक सापेक्ष (Hypothetical) वाक्य से हम कोई वैकल्पिक वाक्य नही निकाल सकते। वैकल्पिक वाक्य मे दो विकल्प होते हैं, जो चार सापेक्ष के बराबर होते है। इसलिये एक वैकल्पिक वाक्य से हम एक सापेक्ष वाक्य निकाल सकते है। किन्तु एक सापेक्ष वाक्य से एक वैकल्पिक वाक्य नही निकाल सकते। एक वैकल्पिक वाक्य के लिये चार सापेक्ष वाक्यो की आवश्यकता पडती है। अर्थात् यदि ये वाक्य·

"यदि A है B तो A नही है C"
"यदि A है C तो A नही है B"
"यदि A नही है B तो A है C"
"यदि A नही है C तो A है B"

सब मिला दिये जायँ और उस योग से निष्कर्ष निकाला जाय तब वैकल्पिक वाक्य "A है B या C" प्राप्त होगा किन्तु तब यह प्रक्रिया अव्यवहित नही रह जायगी। ऐसे अनुमान जो चार मूल वाक्यों द्वारा निकाले जायँ अव्यवहित अनुमान. नही कहे जा सकते।

(६) रूप-परिमाण से अनुमान
(Inference by Model Consequences)

रूप-परिणाम से अनुमान वह अनुमान कहा जाता है, जिसमें दिये हुए निश्चयात्मक (Necessory) वाक्य से हम निर्देशात्मक (Assertory) या सम्भाव्य (Problematic) वाक्य निकालते है तथा निर्देशात्मक वाक्य से सम्भाव्य वाक्य निकालते हैं।

उदाहरण :			
	(अ)	S अवश्य है P	निश्चयात्मक।
		∴ S है P	निर्देशात्मक।
	(ब)	S अवश्य है P	निश्चयात्मक।
		S हो सकता है P	सम्भाव्य।
	(स)	S है P	निर्देशात्मक।
		∴ S हो सकता है P	सम्भाव्य।

यहाँ कठिनाई यह है कि प्रत्येक दशा मे हम मूलवाक्य से तथाकथित निष्कर्ष पर नही पहुँचते। यदि वाक्य "S अवश्य है P" सत्य है, तो "S है P" और "C होगा P" कहने से क्या लाभ। इनसे कोई नया वाक्य तो मिलता नही, इसलिये ऐसे अनुमान मिथ्या प्रयास हैं।

(७) सम्वन्धान्तर से अनुमान
(Inference by Converse Relation)

यह अनुमान का वह रूप है, जिसमे मूलवाक्य के उद्देश्य और विधेय मे सम्वन्धान्तर करके निष्कर्ष निकाला जाता है।

उदाहरण —

(अ) कस्तूरवा महात्मा गाधी की धर्मपत्नी थी .. मूलवाक्य।
∴ महात्मा गाधी कस्तूरवा के पति थे निष्कर्ष।

(व) A पिता है B का . मूलवाक्य।
B पुत्र है A का . निष्कर्ष।

सम्वन्ध मे पति पत्नी का और पुत्र पिता का विपरीत है, इसलिये (अ) और (व) मे सम्वन्धान्तर से निष्कर्ष निकाला गया है।

क्या अव्यवहित अनुमान वस्तुत अनुमान है ?

एक वात और विचारणीय है। क्या अव्यवहित अनुमान वस्तुत अनुमान है ? जैसा कि हम पहले देख चुके है, अनुमान ज्ञान का वह रूप है जिसमे हम ज्ञात से अज्ञात की ओर वढते है। इसलिये यह आवश्यक है कि निष्कर्ष मे कोई नई वात हो। किन्तु अव्यवहित अनुमान मे ऐसा नही होता। निष्कर्ष मे मूलवाक्य की व्याख्या से प्राप्त कोई अश या तत्व रहता है। जैसे, "सव मनुष्य मर्त्य है" से स्थानान्तर द्वारा हम यह निष्कर्ष निकालते है, कि "कुछ मर्त्य मनुष्य है" तो इसमे हम कोई नया ज्ञान प्राप्त नही करते, वल्कि मूलवाक्य के अर्थ को ही कुछ हेर-फेर के साथ फिर सामने लाते है। या जव हम सम्वन्धान्तर से "A पिता है B का" से यह निष्कर्ष निकालते है कि "B पुत्र है A का" तो कोई नई वात नही वताते। पिता पुत्र दोनो सापेक्ष पद है। एक का अर्थ विना दूसरे के पूरा नही होता।

इसलिये इन दोनो वाक्यो के अर्थ मे कोई अन्तर नही है । हम चाहे कहे "A पिता है B का" या "B पुत्र है A का" दोनो एक ही बात है । इसमे केवल शब्दो का मौखिक हेरफेर है और कुछ नही । इसलिये हम इस निष्कर्ष पर पहुचते है, कि तथाकथित अव्यवहित अनुमान वास्तव मे अनुमान नही है ।

अध्याय १४ का सारांश

ऊपर की व्याख्या से यह स्पष्ट हो गया होगा कि परम्परित तर्कशास्त्र मे अव्यवहित अनुमान के जितने रूप माने गये है वास्तव मे वे सब अव्यवहित अनुमान नही है । उनमे कई तो ऐसे है, जिनमे अनुमान की आकृति भी नही है । विरोध से अनुमान (Inference by Opposition), स्थिति निषेध स्थानान्तर से अनुमान (Inference by Contra position) और व्यति-क्रमण से अनुमान (Inference by Inversion) ऐसे ही अनुमान है । सापेक्ष से वैकल्पिक वाक्यो के अनुमानो की भी यही दशा है । ग्रन्थि-बोध से अनुमान (Inference by Complex Conception), निर्धारक विशेषता से अनुमान (Inference by Added Determinants), सम्बन्ध-भेद से अनुमान (Inference by Change of Relations) और रूप-परिणाम से अनुमान (Inference by Model Consequences) व्यर्थ ही अनुमान कहे जाते है । इनको निकाल देने से निम्नाकित अनुमान शेष बचते है, जो सगत है—

(१) स्थानान्तरकरण (Conversion), (२) प्रतिवर्तन (Obversion), (३) वैकल्पिक से सापेक्ष वाक्य निकालना और (४) सम्बन्धान्तर से अनुमान (Inference by converse Relation) ।

परन्तु ये सब तथाकथित अव्यवहित अनुमान वस्तुत अनुमान नही है ।

अध्याय १४ : अनुशीलन

(१) कौन-कौन से अव्यवहित अनुमान सामान्यत मान्य है ?

(२) नीचे दिये हुए वाक्यो से तुम कौन से निगमन निकाल सकते हो ?

A, E, I, O } = सत्य   I, E } = असत्य

(३) विरोध द्वारा अनुमान कैसा अनुमान है ? अव्यवहित या व्यवहित।

(४) परिवर्तन-सह-संकुचन (Eduction) क्या है ? इसके भेद बताओ।

(५) स्थानान्तरकरण (Conversion) की परिभाषा बताओ और उसके नियमो की व्याख्या करो।

(६) स्थानान्तरकरण के भिन्न-भिन्न रूपों का वर्णन करो।

(७) क्या कोई A वाक्य सरल रीति से स्थानान्तरित किया जा सकता है ? सोदाहरण समझाओ।

(८) क्या तुम O वाक्य को स्थानान्तरित कर सकते हो ? क्या निषेध से स्थानान्तरकरण संगत प्रक्रिया है ?

(९) वास्तविक प्रतिवर्तन (Material Obversion) किसे कहते है ? क्या इसे भी अनुमान कह सकते है ?

(१०) स्थिति-निषेध-स्थानान्तरकरण (Contraposition) के सरल नियम, अर्थात् पहले प्रतिवर्तन करो फिर स्थानान्तर, को किन दो नियमो मे विभाजित किया जा सकता है।

(११) क्या स्थिति-निषेध-स्थानान्तरकरण (Contraposition) और व्यति-क्रमकरण दो तरह के अव्यवहित अनुमान हैं ?

(१२) A, E, I, O के स्थानान्तरित, प्रतिवर्तित, स्थिति-निषिद्ध-स्थानान्तरित और व्यति-क्रमित रूप, यदि संगत हों तो दो।

(१३) निम्नांकित वाक्यो को स्थानान्तरित, प्रतिवर्तित, स्थिति-निषिद्ध स्थानान्तरित और व्यति-क्रमित करो —

(अ) कोई मनुष्य पूर्ण नही है।

(ब) सब मनुष्य विवेकशील हैं।

(स) कुछ मनुष्य पुण्यात्मा हैं।

(द) दिल्ली भारत की राजधानी है।

(१४) निम्नांकित पर संक्षिप्त-टिप्पणी लिखो :—

(अ) परिवर्त्य (Convertend)

(ब) प्रतिवर्तित (Obverse)

(स) स्थिति-निषिद्ध स्थानान्तरित (Contrapositive)

(द) व्यति-क्रम्य (Invertend)

(१५) ग्रन्थि-बोध से अनुमान (Inference by Complex Conceptions) और निर्धारक विशेषता से अनुमान (Inference by Added Determinants) की व्याख्या करो। क्या ये दोनो वास्तव मे अनुमान है ?

(१६) सम्बन्धान्तर से अनुमान की व्याख्या करो। क्या यह सचमुच कोई अनुमान है ?

(१७) "तथाकथित अव्यवहित अनुमान वास्तव में अनुमान नही है। क्या तुम इस कथन से सहमत हो ?

(१८) A है B या C.

∴ यदि A है B, A नही है C, इस अनुमान की प्रक्रिया की व्याख्या करो। क्या यह अनुमान संगत है ?

(१९) S अवश्य है P

∴ S हो सकता है P क्या यह अनुमान की कोई प्रक्रिया है ?

(२०) निम्नांकित वाक्यो को स्थानान्तरित करो और फिर प्रतिवर्तित करो—

(अ) यदि A है B, C है D.

(ब) यदि कोई S है M, तो वह S सदैव M होता है।

अध्याय १५

न्याय (Syllogism)

न्याय वह व्यवहित अनुमान है जिसमे तीन निर्णय-वाक्य (Propositions) होते हैं—दो मूलवाक्य (Premises) और तीसरा निष्कर्ष (Conclusion) और केवल तीन ही पद होते हैं।

तथाकथित अव्यवहित अनुमान में केवल एक मूलवाक्य रहता है, परन्तु न्याय मे दो। न्याय में हम दोनो दिये हुए वाक्यो से निष्कर्ष निकालते है किसी एक से नही। दोनो दिये हुए वाक्यो मे हम दो दिये हुए पदों की एक तीसरे पद से (जो दोनो मे उभयनिष्ठ रहता है) तुलना करते है और फिर एक ऐसे निर्णय-वाक्य पर पहुँचते है जो उक्त दोनो तुलना किये गये पदो के मध्य उद्देश्य और विधेय का सम्बन्ध व्यक्त करता है। यह वाक्य निष्कर्ष या निगमन कहा जाता है। ये तीनो वाक्य मिलकर एक न्याय (Syllogism) बनाते है।

सब M है P;
सब S है M;
∴सब S है P;

निष्कर्ष दोनों मूल-वाक्यों पर आधारित रहता है।

यहाँ पर M पद दोनो मूल-वाक्यो मे उभयनिष्ठ है। फिर S और P की M के माध्यम से तुलना की गई है। मूलवाक्यो में तीन पद है, जो प्रत्यक्ष है। इन पदो के नाम है S, P, और M। हम S और P का निष्ठ पद M से सतुलन या माप करते हैं और तब हमें एक नया निर्णय-वाक्य मिलता है। इसमे दोनो मूल वाक्यो से एक सगत निष्कर्ष प्राप्त हो जाता है। दोनो मूलवाक्यो में एव निष्कर्ष में विधेय अपने उद्देश्य को प्रतिपादित करता है। मूलवाक्यो में जो पद उभयनिष्ठ है, वह हेतु या मध्यम पद (Middle Term) कहलाता

है। निष्कर्ष का विधेय साध्यपद या गुरुपद (Major Term) और निष्कर्ष का उद्देश्य पक्ष-पद या लघुपद (Minor Term) कहा जाता है।

साध्य, हेतु और पक्ष पद एवं साध्य वाक्य और पक्ष वाक्य।

जिस मूलवाक्य मे साध्य पद रहता है, वह साध्य-वाक्य (Major Premise) और जिसमें पक्ष पद रहता है वह पक्ष-वाक्य (Minor Premise) कहा जाता है। ऊपर के उदाहरण मे M हेतुपद है, S पक्षपद है और P साध्यपद। इसी प्रकार सब 'M है P' साध्य वाक्य है; 'सब S है M' पक्षवाक्य है। साध्यपद और पक्षपद दोनो को बहिरस्थ (Extremes) कहते है।

न्याय की आधारभित्ति

न्याय की आधारभित्ति है 'डिक्टम डि ऑमनी एट नलो' (Dictum de omni et nullo) अर्थात् जो कथन—चाहे वह विधिवाचक हो, चाहे निषेधवाचक—पूर्णवर्ग के लिये कहा जा सकता है, वह उसके अन्तर्गत व्यक्तियो या वर्गो के लिये भी कहा जा सकता है—"Whatever is predicated (affirmed or denied) universally of a class can be predicated in like manner (affirmed or denied) of anything that belongs to the class"

यह सिद्धान्त-वाक्य (Dictum) अरिस्तू का कहा हुआ है और इससे न्याय का आकार और उसकी प्रकृति स्थिर होती है। वे सब विशेषताये

न्याय का आकार डिक्टम का अनुगमन करता है।

जो न्याय की आधार भित्ति मानी जाती है, इसी सिद्धान्त वाक्य का अनुगमन करती है। अर्थात् न्याय मे हम पहले एक सर्वव्याप्तिवाचक वाक्य कहते है और फिर अल्प व्याप्तिवाचक वाक्य कहते है और फिर दोनों के आधार पर एक निष्कर्ष या निगमन निकालते है। इसमे सर्वव्याप्तिवाचक वाक्य सिद्धान्त वाक्य (Dictum) के पहले अश (जो कथन—चाहे वह विधिवाचक हो या निषेधवाचक—सम्पूर्ण वर्ग के लिये कहा जाता है) का और अल्प-व्याप्ति

वाचक वाक्य अन्तिम अश (वह उसके अन्तर्गत व्यक्तियो या वर्गों के लिये भी कहा जा सकता है) का अनुगमन करता है। 'कहा जा सकता है' से ध्वनित होता है कि दोनो वाक्यो के आधार पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है। इससे स्पष्ट है कि न्याय (Syllogism) मे तीन निर्णय-वाक्य (Propositions) होते है, उनमे दो मूलवाक्य (Premises) होते है और तीसरा निगमन या निष्कर्ष होता है।

(१) तीन वाक्य

फिर सूत्र (Dictum) सूचित करता है कि पहले हम वर्ग के लिये कुछ प्रतिपादित करते है, और तव कहते है कि उक्त वर्ग के अन्तर्गत कुछ-(व्यक्ति या वर्ग) है। इसलिये यह स्पष्ट है कि वर्ग का नाम मूल-वाक्यो मे उभयनिष्ठ है। किन्तु उस तथ्य का नाम जो वर्ग के लिये प्रतिपादित है और उस तथ्य का नाम जो उक्त वर्ग के अन्तर्गत (व्यक्ति या वर्ग) के लिये प्रतिपादित है, दो भिन्न नाम है। जो कथन वर्ग के लिये प्रतिपादित होता है वह वर्ग के अन्तर्गत (व्यक्ति या वर्ग के) लिये भी प्रतिपादित किया जा सकता है। इस कथन से निष्कर्ष ध्वनित होता है। अस्तु निष्कर्ष के उद्देश्य और विधेय ऐसे पद होते है, जो मूल वाक्यो मे कथित रहते है। इसलिये न्याय मे केवल तीन पद होते है। न्याय मे हम दो पदो का किसी एक पद से नाप तोल करके उनमे सम्वन्ध स्थापित करते है। फिर सूत्र के प्रथम अश का तात्पर्य यह होता है कि हम कोई तथ्य वर्ग भर के लिये प्रतिपादित करते है। इसका यह मतलव होता है कि न्याय मे कम से कम एक मूल-वाक्य सर्व व्याप्ति वाचक है। इसके विपरीत हम यह भी कहते है कि वर्ग के अन्तर्गत (व्यक्ति या वर्ग) कुछ है। यह वाक्य विधिवाचक है। इसलिये न्याय में कम से कम एक वाक्य विधिवाचक होता है।' न्याय के भिन्न-भिन्न तत्व नीचे दिये जाते है—

(२) तीन पद

(३) कम-से-कम एक वाक्य सर्व-व्याप्तिवाचक होता है।

(अ) सव जो वर्ग भर के लिये प्रतिपादित है।

(ब) कुछ जो वर्ग के अन्तर्गत है ।

(स) प्रतिपादित है उसके लिये जो वर्ग के अन्तर्गत है ।

साकेतिक :—

(अ) सब M है P,
(ब) सब S है M,
(स) सब S है P.

इस न्याय में P पद S के लिये प्रमाणित होता है और यह साध्यपद (Major Term) है और वाक्य, "सब M है P" जिसमे P विधेय है, साध्य वाक्य (Major Premise) है। इसमें हम कहते है कि P सब M के लिये है। इसलिये साध्य वाक्य सर्वव्याप्तिवाचक वाक्य है। वाक्य, "सब S है M" जिसमे पक्ष पद (Minor Term) S है वह पक्ष-वाक्य (Minor Premise) कहा जाता है। यह सर्वव्याप्तिवाचक (Universal) या अल्प-व्याप्तिवाचक (Particular) दोनो हो सकता है। पक्षपद पक्षवाक्य का उद्देश्य होता है। यदि वह पक्षवाक्य में पूर्ण-व्याप्ति मय (Distributed) है, तब वह पक्ष वाक्य सर्व-व्याप्तिवाचक होता है, नही तो अल्प-व्याप्तिवाचक होता है। साध्यवाक्य (Major Premise) सदैव सर्व-व्याप्तिवाचक (Universal) होता है, क्योकि इसमें विधेय किसी वर्ग भर के लिये कोई तथ्य प्रतिपादित या प्रतिवादित करता है।

(४) पक्ष वाक्य सदैव विधिवाचक होता है। पक्ष वाक्य मे हम कहते है कि कोई व्यक्ति या वर्ग उक्त वर्ग के अन्तर्गत है। इसलिये पक्ष-वाक्य सदैव विधिवाचक होता है।

अन्त मे "जो कुछ सम्पूर्ण वर्ग के लिये प्रतिपादित या प्रतिवादित होता है, वह उक्त वर्ग के अन्तर्गत (व्यक्ति या वर्ग) के लिये भी प्रतिपादित या प्रतिवादित होता है।" इसका तात्पर्य यह है कि यदि हम कोई कथन एक वर्ग के लिये प्रतिपादित करते है, तो हम उस कथन को उन सभी व्यक्तियो

ा वर्गों के लिये प्रतिपादित कर सकते है, जो उस वर्ग के अन्तर्गत है और यदि हम कोई वात वर्ग के लिये प्रतिवादित करते हैं, तो वह वात उस वर्ग के सभी व्यक्तियो और वर्गों के लिये प्रतिवादित कर सकते हैं। सक्षेप में सिद्धान्त सूत्र का अर्थ यह है कि यदि साध्य-वाक्य विधिवाचक है, तो निष्कर्ष भी विधिवाचक है और यदि साध्यवाक्य निषेधवाचक है तो निष्कर्ष भी निषेधवाचक है। सिद्धान्त-सूत्र (Dictum) के अनुसरण से न्याय की आधारभित्ति रूप जो विशेषतायें प्राप्त होती है, वे नीचे दी जाती है :—

(५) यदि साध्यवाक्य विधिवाचक है तो निष्कर्ष भी विधिवाचक होता है और यदि साध्यवाक्य निषेधवाचक है तो निष्कर्ष भी निषेधवाचक होता है।

(१) न्याय में तीन, केवल तीन, निर्णय-वाक्य होते है।
(२) न्याय में केवल तीन पद होते है।
(३) साध्य वाक्य सर्वव्याप्तिवाचक होता है।
(४) पक्ष-वाक्य विधिवाचक होता है।
(५) यदि साध्यवाक्य विधिवाचक है, तो निष्कर्ष भी विधिवाचक होता है और यदि साध्य-वाक्य निषेधवाचक है तो निष्कर्ष भी निषेधवाचक होता है।

न्याय के नियम (Rules of Syllogism)

न्याय के वहुत से नियम है। कुछ लोग नियमो को न्याय की आकृति के अनुसार श्रेणीवद्ध करते है, या अवयव-रूप (Component) निर्णय-वाक्यो के गुण और परिमाण के अनुसार नियमो को श्रेणीवद्ध करते है या किसी मूलभूत नियम से उप-नियम के रूप मे कुछ नियम निकाल लेते है।* किन्तु विचारने की वात यह है, कि हम न्याय की आकृति और उसके अवयव-रूप निर्णय-वाक्यो के गुण एवं परिमाण मे कोई अन्तर नही वता सकते। इसलिये सव से अच्छा यह है, कि नियमो को

* Mellone, P 165

भिन्न-भिन्न श्रेणियो में विभाजित न करके एक साथ लिया जाय। अस्तु न्याय के नियम निम्नलिखित है :—

(१) प्रत्येक न्याय (Syllogism) मे तीन पद और केवल तीन पद रहते है ।

(२) प्रत्येक न्याय (Syllogism) मे केवल तीन निर्णय-वाक्य रहते हैं।

(३) हेतु (मध्यपद) मूल वाक्यो मे कम से कम एक बार अवश्य पूर्ण-व्याप्तिमय होता है।

(४) जो पद मूल वाक्यो मे पूर्ण व्याप्तिमय नही है, वह निगमन मे भी पूर्ण-व्याप्तिमय नही होगा।

(५) दो निषेध-वाचक मूल-वाक्यो से निगमन नही निकल सकता।

(६) अगर एक भी मूल वाक्य निषेधवाचक है, तो निगमन अवश्य निषेध-वाचक होगा।

(७) अगर दोनो मूलवाक्य विधिवाचक है, तो निगमन भी विधिवाचक होगा।

(८) दो अल्पव्याप्तिमय (Particular) मूल-वाक्यो से निगमन नही निकल सकता।

(९) अगर एक मूल-वाक्य अल्प-व्याप्तिमय है, तो निगमन अल्प-व्याप्ति-मय होगा।

(१०) अल्प व्याप्तिमय साध्य वाक्य और निषेधवाचक पक्ष-वाक्य से निगमन नही निकल सकता।

नियमो की प्रामाणिकता

(१) प्रत्येक न्याय मे केवल तीन पद होने चाहिए।

अगर हम न्याय के मूलभूत सिद्धान्त पर दृष्टि डाले तो देखेगे, कि न्याय केवल तीन पद रख सकता है। मूलभूत सिद्धान्त है, "जो कुछ एक वर्गभर के लिये प्रतिपादित है वह वर्ग के अन्तर्गत जितने व्यक्ति या वर्ग है, उन सबके लिये भी प्रतिपादित है।" इसके अनुसार एक पद प्रतिपादित वर्ग के लिये होना चाहिये, एक पद प्रतिपादन के लिये होना चाहिये और एक पद

जो अन्तर्गत है उसके लिये होना चाहिये। इस प्रकार सब मिलाकर तीन पद होने चाहिये। न्याय मे हम दो पदो का तीसरे पद से नाप-तोल करके निरीक्षण करते है और तब निगमन निकालते है। जिन पदो का निरीक्षण किया जाता है, उनमे से प्रमुख पद को साध्य पद कहते है और दूसरे पद को पक्ष पद। जिस पद के माध्यम से निरीक्षण किया जाता है, उसे हेतु या मध्य-पद कहते है। इस नियम के उल्लघन से चार पदो का तर्काभास उपस्थित होता है।

चार पदो की भ्रान्ति (Fallacy)	चार पदो से कोई निगमन नही निकलता क्योकि उनमें कोई सर्वनिष्ठ नही रहता।	सब M है P सब S है P निगमनशून्य

(२) न्याय मे केवल तीन निर्णय-वाक्य होते है।

यह नियम भी डिक्टम डि ऑमनी एट नलो (Dictum de omni et nullo) का सीधा अनुसरण करता है। सूत्र के अनुसार पहले वर्ग के लिये कुछ कहा जाता है, फिर यह मान लिया जाता है कि वर्ग के अन्तर्गत कुछ व्यक्ति या वर्ग है, तब जो वर्ग के लिये कथित है वह अन्तस्थ के लिये भी कथित समझा जाता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि न्याय मे तीन वाक्य होते है; दो मूलवाक्य और एक निगमन।

मूलवाक्य (Premises)	सब M है P; सब S है M;
निगमन	∴ सब S है P

(३) मूल वाक्यो मे हेतु (मध्य पद) कम से कम एक बार अवश्य पूर्ण विस्तृत (Distributed) होना चाहिये।

न्याय में साध्यपद (Major Term) और पक्षपद (Minor Term) के बीच हेतु (मध्यपद) से तुलनात्मक निरीक्षण द्वारा सम्बन्ध जोडा जाता है। साध्य-वाक्य मे साध्यपद से और पक्ष-वाक्य मे पक्षपद से हेतु (मध्यपद) का तुलनात्मक निरीक्षण होता है। इसलिये इसे कम-से-कम एक मूल-

वाक्य मे पूर्ण विस्तार पाना चाहिये। अगर मध्यपद दोनो मूलवाक्यो में अपूर्ण-व्याप्ति मे ही रहा तो यह हो सकता है कि साध्यवाक्य मे साध्यपद की मध्यपद के एक अश से तुलना की गई हो और पक्ष-वाक्य मे पक्ष-पद की उसके दूसरे अश से तुलना की गई हो। इस परिस्थिति मे मध्यपद की तुलना से साध्य पद और पक्षपद के बीच कोई सम्वन्ध स्थिर नही किया जा सकता क्योंकि तव हमें तीन के वदले चार पद मिलते है और जैसा कि पहले दिखाया जा चुका है चार पद से कोई निगमन नही निकल सकता। इस नियम के उल्लघन से हेतु-अव्याप्ति का तर्काभास (Fallacy) उपस्थित होता है।

हेतु-अव्याप्ति की भ्रान्ति (Fallacy) — कुछ M=M के कुछ अश के

कुछ M है P
सब S है M
निगमनशून्य

सव "S है M" में M विधिवाचक का विधेय है। इसलिये अपूर्ण व्याप्ति-मय हुआ।

(४) जो पद मूलवाक्यो में पूर्ण-व्याप्तिमय (Distributed) नही है वह निगमन में भी अपूर्ण व्याप्तिमय होगा।

न्याय में निगमन मूल वाक्यो से अधिक व्यापक नही हो सकता। उक्त नियम इसी सिद्धान्त वाक्य का अनुसरण करता है। न्याय मे हम निगमन मे वही ले सकते है, जो हमे मूलवाक्यो से मिल सकता है, अधिक नही। इस नियम के उल्लघन से तर्क मे असगत प्रक्रिया (Illicit Process) का दोष आता है। यह दो तरह का होता है। पहला असगतसाध्यपद (Illicit Major) और दूसरा असगतपक्षपद (Illicit Minor) कहा जाता है।

असंगत प्रक्रिया

जब साध्यपद साध्यवाक्य में अपूर्ण व्याप्तिमय होने पर भी निगमन मे पूर्ण व्याप्तिमय हो जाता है, तव असगत साध्य का दोष उपस्थित होता है। इसके विपरीत

असंगत साध्य

जव पक्षपद पक्षवाक्य मे अपूर्ण व्याप्तिमय रहने पर भी निगमन मे पूर्ण व्याप्तिमय होता है, तव असगत पक्षपद का दोष उपस्थित होता है।

असगत पक्ष

असगतसाध्य : सब M है P,
कोई S नही है M
∴ कोई S नही है P

P साध्यवाक्य का साध्यपद है जो विधिवाचक वाक्य का विधेय होने के कारण अपूर्ण व्याप्तिमय है। किन्तु निगमन मे निषेधवाचक का विधेय होने के कारण पूर्ण व्याप्तिमय हो गया है। इसलिये असगत साध्य का दोष आ गया।

असगत पक्ष : सब M है P
कुछ S है M
∴ सब S है P

पक्षपद S पक्षवाक्य का उद्देश्य है जो अल्पव्याप्ति वाचक है इसलिये अपूर्ण व्याप्तिमय हुआ। परन्तु निगमन में यह पूर्ण व्याप्तिमय हो गया है। इस लिये असगत पक्ष का दोष आ गया।

(५) दो निषेधवाचक मूलवाक्यो से कोई निगमन नही निकलता :—

निषेधवाचक वाक्यो मे हम यह निर्देश करते है; कि उद्देश्य और विधेय में कोई सम्बन्ध नही है। इसलिये यदि साध्यवाक्य निषेधवाचक है, तो साध्य और हेतु में कोई सम्बन्ध नही हो सकता है फिर अगर पक्ष वाक्य निषेधवाचक है, तो पक्ष और हेतु में कोई सम्बन्ध नही हो सकता है। जब हेतु साध्य या पक्ष से सम्बन्धित नही है तब साध्य और पक्ष का अनुमाप नही हो सकता। कहने का तात्पर्य यह कि न्याय मे यदि दो निषेधवाचक मूल वाक्य हो तव साध्य और पक्ष में कोई सम्बन्ध स्थिर नही किया जा सकता। अत दो निषेधवाचक मूलवाक्यो से कोई निगमन नही निकाला जा सकता।

जैसे, कोई M नही है P
कोई S नही है M
निगमन शून्य

(६) यदि कोई मूलवाक्य निषेध वाचक है, तो निगमन अवश्य निषेध-वाचक होता है।

निषेधवाचक मूल वाक्य से, चाहें वह साध्य वाक्य हो, चाहे पक्ष वाक्य;

यह व्यक्त होता है कि हेतु का वहिरस्थो (Extremes) मे से एक से कोई सम्बन्ध नही है। असम्बन्धित वहिरस्थ चाहे साध्य हो, चाहे पक्ष जब वह हेतु से असम्वन्धित होता है, तब वह दूसरे वहिरस्थ से भी असम्वन्धित हो जाता है। किन्तु न्याय के निगमन मे हम साध्य और पक्ष मे किसी सम्बन्ध का निर्देश करते है। हेतु से अनुमाप करने के वाद जब हम साध्य और पक्ष में कोई सम्वन्ध नही पाते, तब हम निगमन मे यह निर्देश करते है कि उनमे कोई सम्बन्ध नही है। इसलिये निगमन निषेधवाचक होता है।

∴ कोई S नही है P

(७) अगर दोनो मूल-वाक्य विधिवाचक है, तो निगमन भी विधिवाचक होता है।

यह नियम बहुत ही सरल है। विधिवाचक वाक्य में उद्देश्य और विधेय के मध्य सम्वन्ध वताया जाता है। अव यदि साध्य वाक्य और पक्ष वाक्य दोनो विधिवाचक है, तो साध्य और पक्ष दोनो पद हेतु से सम्वन्धित है, इसलिये परस्पर भी सम्बन्धित हुये। यही हम निगमन मे वताते है। इसलिये निगमन साध्य और पक्ष मे एक सम्वन्ध स्थिर करने के कारण विधिवाचक कहा जाता है।

सब M है P
सब S है M
सब S है P

(८) दो अल्प-व्याप्तिवाचक (Particular) मूलवाक्यो से कोई निगमन नही निकल सकता।

इस नियम को हम पूर्वोक्त नियम की सहायता से प्रमाणित कर सकते है। I और O अल्प-व्याप्तिवाचक (Particular) वाक्य है। उनमे से प्रत्येक

को यदि हम साध्यवाक्य और पक्ष-वाक्य के रूप में लें तो चार जोड़े वना सकते हैं। जैसे—II, IO, OI और OO। OO दो निषेधवाचक वाक्य हैं इसलिये नियम (५) के अनुसार इनसे कोई निगमन नहीं निकल सकता।

OI मे O साध्यवाक्य है और I पक्षवाक्य। I मे न तो उद्देश्य ही न विधेय ही पूर्ण विस्तृत होता है। इसलिये पक्षवाक्य मे न हेतु ही और न पक्ष-पद ही पूर्ण विस्तृत है। O केवल विधेय को पूर्ण विस्तृत करता है क्योंकि अल्प-व्याप्तिवाचक है, इसलिये उद्देश्य को अपूर्ण व्याप्तिमय ही रखता है। न्याय मे मध्य पद को कम-से-कम एक वार अवश्य पूर्ण विस्तार पाना चाहिये (नियम ३)। मान लिया कि O मे पूर्ण विस्तृत पद जो है, वह मध्य पद या हेतु है। परन्तु जब एक मूलवाक्य निषेधवाचक होता है, तब निगमन भी निषेधवाचक होता है (नियम ६)। इसलिये साध्य-पद पूर्ण-व्याप्तिमय होना चाहिये। किन्तु मूलवाक्य मे उसका विस्तारपूर्ण नही है। इसलिये यहाँ पर असगत साध्य (Illicit Major) का दोष आ जाता है (नियम ४)। यदि O मे पूर्ण-व्याप्तिमय पद को साध्यपद बनावे, तब हेतु एक वार भी पूर्ण विस्तार नही पाता, तव न तो वह साध्यवाक्य मे और न पक्षवाक्य में पूर्ण विस्तार पाता है। इसलिये इस प्रक्रिया मे हेतु-अव्याप्ति का दोष (Fallacy of undistributed Middle) आ जाता है। इससे स्पष्ट हो जाता है, कि OI से कोई निगमन नही निकल सकता।

IO मे केवल एक पद पूर्ण व्याप्तिमय होता है। यदि वह हेतु है, तब न तो साध्य पद न पक्ष पद पूर्ण विस्तार पाता है। इनमे से एक मूलवाक्य निषेधवाचक है इसलिए निगमन भी निषेधवाचक होगा (नियम ६)। तव साध्य पद पूर्ण विस्तार पा जायगा, परन्तु मूलवाक्य मे उसका विस्तार अपूर्ण ही है। इसलिये इस स्थिति मे भी असगत साध्य का दोष आ जाता है (नियम ४)। इसलिए IO से कोई निगमन नही निकल सकता।

II का युग्म तो विडम्बना मात्र है। दोनो मूलवाक्य अल्प-व्याप्ति-वाचक है इसलिये उनमे कोई पद पूर्ण-विस्तार नही पाता। इससे हेतु अव्याप्ति का दोष आ जाता है। अस्तु II से कोई निगमन नही निकाला जा सकता।

इसलिए दो अल्प-व्याप्तिवाचक वाक्यों से कोई निगमन नही निकाला जा सकता।

९. यदि मूलवाक्यो में कोई अल्प व्याप्तिवाचक हुआ तो निगमन अल्प-व्याप्तिवाचक होता है।

I और O अल्प-व्याप्तिवाचक (Particular) वाक्य है, और A और E सर्व-व्याप्तिवाचक (Universal) वाक्य है। अब दो मूलवाक्यो मे से यदि एक अल्प-व्याप्तिवाचक हो तो हमे मूल वाक्यो के आठ जोड़े मिलेगे। ये है, AI, IA, AO, OA, EI, IE, EO, OE। AI में A और I विधिवाचक है, इसलिए निगमन भी विधि-वाचक होगा। विधिवाचक निगमन मे साध्यपद विधेय होता है और वह पूर्ण विस्तार नही पाता, A केवल अपने उद्देश्य को पूर्ण विस्तार देता है। इसलिए यह हेतु होगा, क्योकि हेतु को मूलवाक्यो मे एक बार पूर्ण व्याप्ति अवश्य मिलनी चाहिए। I न तो उद्देश्य को न विधेय को पूर्ण विस्तार देता है। इसलिए मूलवाक्यो मे केवल हेतु पूर्ण व्याप्ति पाता है। साध्य और पक्ष दोनो अपूर्ण व्याप्तिमय ही रहते है। जब ये मूलवाक्यो मे पूर्ण-विस्तृत नही है, तो निगमन में भी अपूर्ण व्याप्तिमय रहते है। इसलिए निगमन अल्प-व्याप्तिमय होता है। इसी प्रकार IA का निगमन भी अल्प-व्याप्तिमय दिखाया जा सकता है।

AO और OA में दो पद पूर्ण विस्तृत है—A का उद्देश्य और O का विधेय। किसी एक मूलवाक्य के निषेधवाचक होने पर निगमन निषेधवाचक होता है (नियम ६) और निषेधवाचक निगमन में साध्यपद, विधेय पूर्ण-विस्तृत होता है, इसलिए मूलवाक्यो मे दो पद साध्य और हेतु पूर्ण विस्तृत होते है। स्पष्टत पक्ष वाक्य मे पक्ष पद पूर्ण विस्तृत नही है इसलिए निगमन मे भी इसे पूर्ण विस्तृत नही होना चाहिए। निगमन मे पक्षपद उद्देश्य है। अस्तु, अपूर्ण विस्तृत उद्देश्य का निगमन अल्प-व्याप्तिवाचक हुआ। EI और IE में केवल दो पद पूर्ण विस्तृत हैं—E के उद्देश्य और विधेय। ये ही दो पद मूलवाक्यो मे पूर्ण विस्तृत हो सकते है, अत ये ही हेतु और साध्यपद हो सकते है। जब निगमन निषेधवाचक होता है, निगमन मे साध्य पद पूर्ण विकसित होता है क्योकि एक मूल वाक्य के निषेधवाचक होने से निगमन को भी निषेधवाचक होना पड़ता है

(नियम ६); इसलिए साध्यवाक्य में साध्यपद को अवश्य ही पूर्ण विकसित होना चाहिए। अब दो पद हेतु और साध्य पूर्ण विस्तृत है परन्तु पक्षपद मूल में पूर्ण विकसित नही है इसलिए निगमन मे भी पक्षपद पूर्ण विकसित नही होना चाहिए अत निगमन अल्प-व्याप्तिवाचक होगा। वास्तव में IE से कोई निगमन नही निकलता। EO और OE युग्म से कोई निगमन नही निकलता (नियम ५)। क्योकि दो निषेधवाचक वाक्यो से कोई निगमन नही निकलता। शेष अन्य सभी युग्मो मे मूलवाक्यो मे एक के अल्प-व्याप्तिवाचक होने के कारण निगमन अल्प-व्याप्तिवाचक होता है।

(१०) अल्प-व्याप्तिवाचक साध्य वाक्य और निषेधवाचक पक्ष वाक्य से कोई निगमन नही निकल सकता। यदि साध्य वाक्य अल्प-व्याप्तिवाचक है तो हमे मूलवाक्यो के चार युग्म मिलते है। ये है IO, OO, IE और OE। OO और OE नियम ५ से त्याज्य है। IO मे केवल एक पद पूर्ण विस्तृत है इसलिए वह अवश्य हेतु होगा (नियम ३), लेकिन इसमें एक मूलवाक्य निषेधवाचक है, इसलिए निगमन निषेधवाचक होना चाहिए। तब साध्य पद को जो निगमन का विधेय है पूर्ण विस्तृत होना चाहिए। परन्तु मूलवाक्य मे ऐसा नही है इसलिए ऐसे न्याय मे असगत साध्य का दोष आ जाता है।

IE मे दो पद पूर्ण विस्तृत है, उनमें से एक हेतु है और दूसरा पक्ष पद जो कि E का उद्देश्य है, किन्तु निगमन निषेधवाचक होगा (नियम ६), इसलिए उसका विधेय भी पूर्ण विस्तृत होना चाहिए। परन्तु मूलवाक्य मे ऐसा नही है इसलिए यहाँ भी असगत साध्य का दोष आ जाता है। अस्तु अल्प-व्याप्तिवाचक साध्य वाक्य और निषेधवाचक पक्षवाक्य से कोई निगमन नही निकल सकता।

४ न्याय के आकार (Figures of Syllogism)

आकार न्याय की उन आकृतियो को कहते है जो मूलवाक्यो मे हेतु के स्थान से निश्चित होती है। आकार चार है —

पहला आकार	दूसरा आकार	तीसरा आकार	चौथा आकार
M P	P M	M P	P M
S M	S M	M S	M S

पहले आकार मे साध्यवाक्य मे हेतु उद्देश्य है और पक्षवाक्य मे हेतु विधेय है। दूसरे आकार मे हेतु दोनो मूलवाक्यो मे विधेय है। तीसरे आकार मे हेतु दोनो मूलवाक्यो मे उद्देश्य है। चौथे आकार मे हेतु साध्यवाक्य मे विधेय और पक्ष-वाक्य मे उद्देश्य है।

५ सन्धियाँ (Moods)

सन्धियाँ उन वर्गो को कहते है जिनमे न्याय (Syllogism) मूलवाक्यो या आवयविक निर्णय-वाक्यो के गुण और परिमाण के अनुसार विभाजित किया जाता है। "न्याय की सन्धियाँ" (Moods of Syllogism), यह वाक्याश तीन विभिन्न अर्थो में लिया जाता है। एक मत के अनुसार सन्धि (Mood) न्याय की ऐसी आकृति है जो मूलवाक्यो के गुण और परिमाण से निश्चित की जाती है। दूसरे मत के अनुसार सन्धि न्याय की वह आकृति है जो मूल वाक्यो और निगमन के गुण और परिमाण से निश्चित की जाती है। तीसरे मत के अनुसार सन्धि न्याय की प्रामाणिक आकृति है।

हम पहले देख चुके है कि निर्णय-वाक्यो (Propositions) के चार मूलभूत रूप होते है। वे है, पहले मत के अनुसार, A I E और O इसलिए, प्रत्येक आकार में मूलवाक्यो की निम्नलिखित सम्भावित सन्धियाँ होगी

AA	EA	IA	OA
AE	EE	IE	OE
AI	EI	II	OI
AO	EO	IO	OO

इस प्रकार चारो आकारो में सब मिलाकर हम (१६×४=) ६४ आकृतियाँ पाते हैं। यदि हम दूसरे मत के अनुसार (मूलवाक्यो+निगमन के) गुण और परिमाण को लेते हैं तो सन्धियो की सख्या चार गुना और अधिक हो जाती है। जैसा कि ऊपर AA आदि का योग दिखाया

गया है, वैसा ही हम मलवाक्यो और निगमन के चार योग पायेंगे :–

A	A	A
A	A	E
A	A	I
A	A	O

पहले दिखलाया जा चुका है कि मूलभूत निर्णय-वाक्यो की सन्धियां ६४ होती हैं। इनमें चार निगमन की सन्वियो का गुणा करने से सब सन्धियां (६४×४)=२५६ होगी। इसलिए दूसरे मत के अनुसार सब सन्धियाँ २५६ हुई।

तीसरे मत के अनुसार सन्वियाँ न्याय की प्रामाणिक आकृतियाँ हैं। यदि हम केवल मूलवाक्यो पर विचार करे तो पायेगे कि चारो आकारो में १९ प्रामाणिक सन्धियाँ है और यदि मूलवाक्यो और निगमन को एक साथ लेते है तो २४ प्रामाणिक सन्धियाँ पाते हैं।

६ प्रामाणिक सन्धियो का निर्दिष्टीकरण
(Determination of the Valid moods)

हम ऊपर देख चुके हैं कि यदि हम सन्धि का अर्थ न्याय का वह आकार मानते हैं जिसमें वह मूल वाक्यो के गुण और परिमाण से निर्दिष्ट किया जाता है तो प्रत्येक आकार मे (मूल वाक्यो की) १६ सन्धियाँ मिलती हैं। वे निम्नलिखित है :

AA	EA	IA	OA
AE	EE	IE	OE
AI	EI	II	OI
AO	EO	IO	OO

अब हम नियमो की सहायता से जाँच सकते है कि न्याय की कौन-कौन सी सन्धिया प्रामाणिक हैं। EE, OO, EO और OE पाचवे नियम के अनुसार वहिष्कृत की जा सकती है, एव OI, IO और II आठवें नियम से अलग की

जा सकती है और IE दसवें नियम से छोड़ी जा सकती है। इसलिए शेष बची :—

AA	EA	IA	OA
AE			
AI	EI		
AO			

इस प्रकार १६ सन्धियो मे केवल ८ सन्धियाँ शेष बची। अब हमें देखना है कि चारो आकारों मे इनमें से कौन-कौन निगमन तक प्रामाणिक ठहरती है।

१ पहले आकार की प्रामाणिक सन्धियाँ (Valid Moods of the First Figure)

प्रथम आकार मे हेतु साध्यवाक्य में उद्देश्य होता है और पक्ष वाक्य में विधेय। इसलिए सन्धियाँ इस प्रकार दिखाई जा सकती ह :—

(अ) AA			आकार १
‖	A		सब M है P
AAA	A		सब S है M
बारबारा (Barbara)	A	∴	सब S है P

यहाँ साध्यवाक्य और पक्षवाक्य विधिवाचक है इसलिए निगमन भी विधिवाचक होगा। साध्य पद साध्यवाक्य मे पूर्ण विस्तृत नही है, इसलिए निगमन में भी वह पूर्ण विस्तार नही पाता। पक्ष पद निगमन और पक्ष वाक्य दोनों में पूर्ण विस्तृत है। हेतु साध्य वाक्य मे A का उद्देश्य होने के कारण पूर्ण विस्तृत है। इसलिए यहाँ AA वाक्यो से A का निगमन निकालने में कोई दोष नही आता। अस्तु पहले आकार में AA प्रामाणिक सन्धि सिद्ध होती है यह सन्धि बारबारा (Barbara) कही जाती है।

(ब) AE	A		सब M है P
‖	E		कोई S नही है M
निगमनशून्य		∴	निगमनशून्य

यहाँ एक मूल वाक्य निषेधवाचक है इसलिए निगमन भी निषेधवाचक होना चाहिए। साध्य पद निगमन में विधेय ही होता है। इसलिए उसे मूलवाक्य में पूर्ण विस्तृत होना चाहिए किन्तु साध्यवाक्य मे साध्य पद पूर्ण विस्तृत नही है। इसलिए निगमन मे असगत साध्य का दोष आ जायगा। अस्तु पहले आकार में AE प्रामाणिक सन्धि नही सिद्ध होती।

	(स) AI	A	सब M है P
	‖	I	कुछ S है M
डेरिआई (Darii)	AII	I ∴	कुछ S है P

यहाँ दोनो मूल्यवाक्य विधिवाचक है इसलिए निगमन भी विधिवाचक है। हेतु साध्यवाक्य में पूर्ण विस्तृत है। साध्यपद और पक्षपद न तो मूलवाक्यो में न निगमन में पूर्ण विस्तृत हैं।

इसलिए निगमन सगत है और यह AI या AII की सन्धि प्रामाणिक सिद्ध होती है। इसका नाम डेरिआई (Darii) है।

(द) AO	A	सब M हैं P
‖	O	कुछ S नही है M
×		निगमनशून्य

यहाँ एक मूलवाक्य निषेधवाचक है इसलिए निगमन भी निषेधवाचक होगा और अपने विधेय को पूर्ण विस्तृत करेगा। परन्तु साध्यवाक्य विधिवाचक है इसलिए साध्यपद मूलवाक्य में पूर्ण विस्तृत नही है, पर निगमन में वह पूर्ण विस्तृत हो जाता है। इसलिए असगत साध्य का दोष आ जाता है। अस्तु AO की सन्धि प्रामाणिक सिद्ध नही होती।

	(य) EA	E	कोई M नही है
	‖	A	सब S है M
सिलारेन्ट (Celarent)	EAA	E ∴	कोई S नही है

यहाँ हेतु साध्य वाक्य मे पूर्ण विस्तृत है। साध्यपद और पक्षपद निगमन और मूलवाक्यो, दोनो में पूर्ण विस्तृत हैं। केवल एक मूल वाक्य निषेधवाचक

है इसलिए निगमन सगत है। अस्तु EA या EAE प्रामाणिक सिद्ध होती है। यह सिलारेन्ट (Celarent) कही जाती है।

(फ) EI — E कोई M नही है P
‖ — I कुछ S है M
फेरियो (Ferio) Ferio — O ∴ कुछ S नही है P

यहाँ साध्यवाक्य में हेतु पूर्ण-विस्तृत है। पक्ष पद न तो पक्षवाक्य में पूर्ण विस्तृत है न निगमन मे। साध्य पद निगमन और साध्यवाक्य दोनो में पूर्ण विस्तृत है। मूलवाक्यो मे एक मूलवाक्य निषेधवाचक है इससे निगमन भी निषेधवाचक है। यहाँ EI से सगत निगमन निकलता है इसलिए यह सन्धि प्रामाणिक है। इसका नाम फेरिओ (Ferio) है।

(ग) IA — I कुछ M है P
‖ — A सब S है M
× — निगमनशून्य

इस सन्धि मे हेतु एक बार भी पूर्ण विस्तृत नही हो पाता। साध्यवाक्य अल्प व्याप्तिवाचक है और पक्षवाक्य विधिवाचक है। इसलिए प्रथम आकार में IA प्रामाणिक सन्धि नही हो सकती।

(ह) OA — O कुछ M नही है P
‖ — A सब S है M
× — निगमनशून्य

इसमें भी हेतु मूलवाक्यों में एक बार भी पूर्ण विस्तार नही पाता। साध्य वाक्य अल्प व्याप्तिवाचक है और पक्षवाक्य विधिवाचक। इसलिए इस सन्धि से भी कोई निगमन नही निकल सकता। अतः OA भी प्रामाणिक सन्धि नही है।

उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट हो जाता है कि आठ सन्धियो में, जो बहिष्कार से शेष बचती हैं, प्रथम आकार में केवल चार प्रामाणिक है। वे हैं बारबारा, सिलारेन्ट, डेरिआई और फेरिओ।

पहले आकार के विशेष नियम
(The Special Rules of the First Figure)

हम देखते हैं कि पहले आकार की चारो प्रामाणिक सन्धियो में साध्यवाक्य सर्व व्याप्तिवाचक होता है और पक्षवाक्य विधिवाचक। इसलिए पहले आकार के लिए हम दो विशेष नियम बना सकते हैं। वे हैं :—

(१) साध्यवाक्य अवश्य सर्व व्याप्तिवाचक होगा।

(२) पक्षवाक्य अवश्य विधिवाचक होगा।

ये दोनो नियम सिद्धान्तसूत्र डिक्टम डि आमनी (Dictum De Omini) का सीधा अनुसरण करते हैं। डिक्टम से व्यक्त होता है कि न्याय में पहले कोई तथ्य किसी वर्ग भर के लिए प्रतिपादित या प्रतिवादित किया जाता है। यह कथन एक सर्व व्याप्तिवाचक वाक्य द्वारा व्यक्त किया जाता है। तब बतलाया जाता है कि उसके अन्तर्गत कुछ व्यक्ति या वर्ग हैं। यह सम्बन्ध निर्देश एक विधि-वाचक वाक्य द्वारा किया जाता है। इसलिए न्याय में (जो डिक्टम पर आधारित है) एक सर्व व्याप्तिवाचक साध्यवाक्य होता है और एक विधिवाचक पक्षवाक्य। चूंकि प्रथम आकार सिद्धान्तसूत्र (डिक्टम) को आधार बनाता है इसलिए प्रथम आकार के विशेष नियम सिद्धान्त सूत्र का सीधा अनुगमन करते हैं।

किन्तु यदि हम चाहे तो इन नियमो को सिद्धान्तसूत्र का सहारा लिये बिना स्वतन्त्र रूप से निम्नांकित ढंग से प्रमाणित कर सकते हैं :—

नियम १

यदि प्रथम आकार में साध्यवाक्य सर्व व्याप्तिवाचक नही है तो वह अल्प व्याप्तिवाचक होगा। प्रथम आकार में साध्यवाक्य मे हेतु उद्देश्य होता है और पक्षवाक्य में विधेय। अब साध्य वाक्य यदि अल्प व्याप्तिवाचक है तो अपने उद्देश्य को (जो कि हेतु है) पूर्ण विस्तृत नही करता इसलिए पक्ष वाक्य मे, जहाँ हेतु विधेय है, उसे अवश्य पूर्ण विस्तृत होना चाहिए और पक्ष वाक्य को अपने विधेय को पूर्ण विस्तृत करने के लिए निषेधवाचक होना चाहिए। तब निर्गमन भी निषेध वाचक होगा। उस दशा मे साध्य पद पूर्ण विस्तृत हो जाता है। इससे न्याय में

असंगत साध्य का दोष आ जाता है। अस्तु प्रथम आकार में साध्यवाक्य अवश्य सर्व-व्याप्तिवाचक (Universal) होता है।

नियम २

यदि प्रथम आकार में पक्षवाक्य विधिवाचक नही है तो वह निषेध वाचक होगा। अब यदि पक्ष वाक्य निषेधवाचक है तो निगमन भी निषेधवाचक होगा और साध्यवाक्य विधिवाचक होगा। निषेधवाचक निगमन साध्यपद को (जो कि उसका विधेय है) पूर्ण विस्तृत करता है। लेकिन विधिवाचक साध्यवाक्य में साध्य पद (विधेय) पूर्ण विस्तृत नही होता। इसलिए यहाँ असंगत साध्य का दोष आ जाता है। इसलिए प्रथम आकार मे पक्षवाक्य अवश्य ही विधि वाचक होता है।

प्रथम आकार की मूलभूत विशेषताएँ
(Fundamental Features of the First Figure)

(१) जैसा कि हम पहले देख चुके है, प्रथम आकार सिद्धान्तसूत्र (Dictum) को अपनी आधारभित्ति बनाता है। इसलिए पूर्ण आकार कहा जाता है। इसके विशेष नियम सीधे सिद्धान्त-सूत्र से निकाले गये है।

(२) चारो प्रकार के सब मूलभूत निर्णयवाक्य अर्थात् A, E I और O प्रथम आकार में ही प्रमाणित किये जा सकते है।

(३) निगमन का उद्देश्य मूलवाक्य मे उद्देश्य ही रहता है और निगमन का विधेय मूलवाक्य में विधेय ही होता है।

दूसरे आकार की प्रामाणिक सन्धियाँ
(Valid Moods of the Second Figure)

दूसरे आकार में हेतु साध्यवाक्य (Major Premise) और पक्षवाक्य (Minor Premise) दोनो में विधेय होता है। अब हमे यह निश्चित करना है कि पूर्व कथित आठो सन्धियो (Moods) में कौन-कौन प्रामाणिक है।

आकार २

(अ) AA — A सब P है M — PM
‖ — A सब S है M — SM
× — निगमनशून्य

यहाँ दोनो मूलवाक्य विधिवाचक है। हेतु दोनों में विधेय है। इसलिए एक बार भी पूर्ण विस्तृत (Distributed) नही है। अस्तु यहाँ पर हेतु अव्याप्ति का दोष (Fallacy of Undistributed Middle) आ जाता है। इस कारण कोई सगत निगमन नहीं निकाला जा सकता। अस्तु AA दूसरे आकार में प्रामाणिक सन्धि नही है।

(ब) AE — A सब P है M
‖ केमेस्ट्रीज — E कोई S नही है M
AEE (Camestres) — ∴ कोई S नही है P

यहाँ पक्षवाक्य सर्व व्याप्तिवाचक निषेधवाचक है। इस कारण उद्देश्य (पक्ष पद) और विधेय (हेतु) दोनो पूर्ण विस्तृत हैं। एक मूलवाक्य (Premise) निषेधवाचक है इसलिए निगमन भी निषेधवाचक होगा। तब निगमन का विधेय (साध्य पद) पूर्ण विस्तृत होगा। यह साध्यवाक्य में सर्व व्याप्तिवाचक विधिवाचक का उद्देश्य होने के कारण पूर्ण विस्तृत है। इसलिए AE से सगत निगमन निकाला जा सकता है। अस्तु AE या AEE प्रामाणिक सन्धि है और केमेस्ट्रीज (Camestres) कही जाती है।

(स) AI — A सब P हैं M
‖ — I कुछ S हैं M
× — ∴ निगमनशून्य

इस सन्धि में हेतु दोनो मूलवाक्यो मे विधिवाचक वाक्यो का विधेय है इसलिए एक बार भी पूर्ण विस्तृत नही होता। इसलिए यहाँ हेतु-अव्याप्ति का दोष आ जाता है। अस्तु दूसरे आकार में AI की सन्धि प्रामाणिक नही है।

(द) AO	A	सब P है M
‖	O	कुछ S नही है M
AOO	O ∴	कुछ S नही है P

बारोको (Baroco)

इस न्याय मे हेतु निषेधवाचक पक्षवाक्य का विधेय होने के कारण एक बार पूर्ण विस्तृत है। एक मूलवाक्य निषेधवाचक है इसलिए निगमन भी निषेधवाचक है और अपने विधेय (साध्यपद) को पूर्ण विस्तृत करता है जो साध्यवाक्य में सर्व-व्याप्तिवाचक विधिवाचक का विधेय होनेके कारण पूर्ण विस्तृत है। पक्षपद न तो पक्षवाक्य मे न निगमन में पूर्ण विस्तृत है। इसलिए AO से सगत निगमन निकलता है। अस्तु AO या AOO की सन्धि प्रामाणिक है और बारोको (Baroco) कही जाती है।

(य) EA	E	कोई P नही है M
‖	A	सब S है M
EAE	E	कोई S नही है P

सीजारी (Cesare)

EAE मे हेतु साध्यवाक्य मे पूर्ण विस्तृत होता है। साध्य और पक्ष पद निगमन और मूलवाक्यो मे पूर्ण विस्तृत होते है। एक मूलवाक्य निषेधवाचक होता है। इसलिए निगमन भी निषेधवाचक होता है। इसलिए दूसरे आकार मे EA या EAE की सन्धि प्रामाणिक है और सीजारी कही जाती है।

(फ) EI	E	कोई P नही है M
‖	I	कुछ S है M
EIO	O ∴	कुछ S नही हैं M

फेस्टिनो (Festino)

EIO में हेतु साध्यवाक्य मे पूर्ण विस्तृत है और साध्य पद निगमन तथा साध्यवाक्य दोनो मे पूर्ण विस्तृत है। पक्ष पद न निगमन मे न पक्षवाक्य मे पूर्ण विस्तृत है। एक मूलवाक्य निषेधवाचक है इसलिए निगमन भी निषेधवाचक है।

अस्तु EI या EIO की सन्धि दूसरे आकार में प्रामाणिक सिद्ध होती है और फेस्टिनो (Festino) कही जाती है।

(ग) IA I कुछ P है M
‖ A सब S है M
× निगमनशून्य

यहाँ दोनो मूलवाक्य विधिवाचक हैं इसलिए हेतु एक बार भी पूर्ण विस्तार नही पाता। IA इसलिए दूसरे आकार मे प्रामाणिक सन्धि नही है।

(ह) OA O कुछ P नही है M
‖ A सब S है M
× निगमनशून्य

ऊपर के न्याय मे एक मूलवाक्य निषेधवाचक है, इसलिए निगमन भी निषेध वाचक होगा तब साध्य पद पूर्ण विस्तृत होगा। परन्तु मूलवाक्य मे साध्य पद पूर्ण विस्तृत नही है। इसलिए यहाँ असगत साध्य का दोष आ जाता है। अस्तु दूसरे आकार मे OA प्रामाणिक नही सिद्ध होती। इस प्रकार दूसरे आकार में चार प्रामाणिक सन्धियाँ मिलती है। वे है—केमेस्ट्रीज (Camestres), बारोको (Baroco), सीजारी (Cesare) और फेस्टिनो (Festino).

इन सन्धियो को ध्यानपूर्वक देखने से प्रकट होता है कि इनमे से प्रत्येक में साध्यवाक्य सर्वव्याप्तिवाचक है और एक मूलवाक्य निषेधवाचक है। इसलिए दूसरे आकार के लिए निम्नलिखित नियम बनाये जा सकते हैं:—

(१) साध्यवाक्य अवश्य सर्वव्याप्तिवाचक होगा।

(२) मूलवाक्यो मे से एक अवश्य निषेधवाचक होगा।

प्रमाण. आकार २
P M
S M

नियम १

यदि साध्यवाक्य सर्व व्याप्तिवाचक नही है तो अल्प व्याप्तिवाचक होगा। अब यदि यह अल्प व्याप्तिवाचक है तो साध्यपद साध्यवाक्य में पूर्ण विस्तृत

नही होगा। इसलिए निगमन में भी उसे पूर्ण विस्तृत नही होना चाहिए। साध्यपद निगमन का विधेय होता है। इसलिए जब वह साध्यवाक्य में पूर्ण विस्तृत नही है तो उसे निगमन मे भी पूर्ण विस्तृत नही होना चाहिए और तब निगमन को विधिवाचक होना चाहिए। इस अवस्था में दोनों मूलवाक्यों को विधिवाचक होना चाहिए। उस दशा मे हेतु, जो दोनो वाक्यो मे विधेय होता है, एक वार भी पूर्ण विस्तार नही पा सकेगा। इसलिए हेतु-अव्याप्ति का दोष आ जाता है। अस्तु यह नियम निकलता है कि दूसरे आकार मे साध्यवाक्य सर्व व्याप्तिवाचक होगा।

नियम २

यदि न्याय में एक मूलवाक्य निषेधवाचक नही है तो दोनो विधिवाचक होंगे। तव हेतु जो दूसरे आकार मे दोनो मूलवाक्यो मे विधेय होता है, एक वार भी पूर्ण विस्तार नही पायेगा। इसलिए हेतु-अव्याप्ति का दोष उत्पन्न होगा। अत दूसरे आकार में सगत अनुमान के लिए एक मूलवाक्य निषेधवाचक होना चाहिए।

प्रमुख विशेपता

दूसरा आकार केवल निषेधवाचक निगमन प्रमाणित करता है।

तीसरे आकार की प्रामाणिक सन्धियाँ
(Valid Moods of the Third Figure)

आकार ३

M P

M S

तीसरे आकार में हेतु दोनो मूल वाक्यो में उद्देश्य होता है।

(अ)	AA	A सव M है P
	‖	A सत्र M है S
	AAI	I ∴ कुछ S है P

दरप्ती (Darapti)

उपर्युक्त न्याय (Syllogism) में दोनो मूलवाक्यो में हेतु पूर्ण विस्तृत है और साध्यपद एव पक्षपद निगमन तथा मूल वाक्यो में पूर्ण-विस्तृत नही है, इसलिए AA या AAI तीसरे आकार मे प्रामाणिक सन्धि है और दरप्ती (Darapti) कही जाती है।

(ब) AE — A सब M है P
‖ — E कोई M नही है S
× — × निगमनशून्य

यहाँ दोनो मूलवाक्यो में हेतु पूर्ण विस्तृत हैं। साध्य विधिवाचक साध्यवाक्य का विधेय होने के कारण पूर्ण विस्तृत नही है। किन्तु एक मूल्य वाक्य निषेधवाचक है, इसलिए निगमन भी निषेधवाचक होगा जो अपने विधेय (साध्यपद) को पूर्ण विस्तृत करेगा। इसलिए यहाँ पर असगत साध्य का दोष आ जाता है। इसलिए तीसरे आकार में AE प्रामाणिक नही है।

(स) AI — A सब M है P
‖ — I कुछ M है S
AII — I ∴ कुछ M है S

दतीसी (Datisi)

यहाँ साध्यवाक्य में हेतु पूर्ण विस्तृत है और साध्यपद तथा पक्षपद न तो मूल वाक्यो में न निगमन मे पूर्ण विस्तृत है। इसलिए तीसरे आकार में AI या AII की सन्धि प्रामाणिक है और दतीसी (Datisi) कही जाती है।

(द) AO — A सब M है P
‖ — O कुछ M नही है S
× निगमनशून्य

उपर्युक्त सधि में साध्य विधिवाचक मूलवाक्य का विधेय है इसलिए पूर्ण विस्तृत नही है। किन्तु एक मूलवाक्य के निषेधवाचक होने के कारण निगमन निषेधवाचक होता है जो अपने विधेय (साध्य) को पूर्ण विस्तृत करता है। इसलिये यहाँ असगत साध्य का दोष आ जाता है। इसलिए तीसरे आकार में AO की सन्धि प्रामाणिक नही है।

(य) EA — E कोई M नही है P

|| — A सब M है S

EAO — O ∴ कुछ S नही है P

फेलाप्टन (Felapton)

ऊपर की सन्धि मे हेतु दोनों मूल वाक्यो मे पूर्ण विस्तृत है। साध्य पद साध्य वाक्य और निगमन दोनो में पूर्ण विस्तृत है। पक्ष पद नतो निगमन मे न मूलवाक्य मे पूर्ण विस्तृत है। इसलिए EA या EAO की सन्धि प्रामाणिक है और फेलाप्टन (Felapton) कही जाती है।

(फ) EI — E कोई M नही है P

|| — I कुछ M है S

EIO — O · कुछ S नही है P

फेरिसन (Ferison)

ऊपर की सन्धि मे हेतु साध्यवाक्य मे पूर्ण विस्तृत है। एक मूलवाक्य निषेधवाचक है इसलिए निगमन भी निषेधवाचक है जो अपने विधेय को (साध्य पद को जो साध्य वाक्य मे पूर्ण विस्तृत है) पूर्ण विस्तृत करता है। पक्ष पद न तो निगमन न पक्ष वाक्य में पूर्ण विस्तृत है। इसलिए तीसरे आकार मे EI या EIO प्रामाणिक सन्धि है और फेरिसन (Ferison) कही जाती है।

(ग) IA — I कुछ M है P

|| — A सब M है S

IAI — I ∴ कुछ S है P

डिसामिस (Disamis)

इस सन्धि मे हेतु पक्षवाक्य मे पूर्ण विस्तृत है। साध्यपद और पक्षपद न तो निगमन और न मूलवाक्यो मे पूर्ण विस्तृत है। दोनो मूलवाक्य विधिवाचक है। इसलिए निगमन भी विधिवाचक है। अतः IA या IAI की सन्धि तीसरे आकार मे प्रामाणिक सिद्ध होती है और डिसामिस (Disamis) कही जाती है।

(ह)	OA	O	कुछ M नही है P
	‖	A	सब M है S
	OAO	O	∴ कुछ S नही है P

वोकार्डे (Bocardo)

इस सन्धि में हेतु पक्षवाक्य में पूर्ण विस्तृत है और पक्ष पद न तो निगमन में न पक्षवाक्य में पूर्ण विस्तृत है। एक मूलवाक्य निषेधवाचक है इसलिए निगमन भी निषेधवाचक है और अपने विधेय को (साध्य पद को जो साध्यवाक्य में पूर्ण विस्तृत है) पूर्ण विस्तृत करता है। इसलिए OA या OAO की सन्धि तीसरे आकार में प्रामाणिक है और वोकार्डो (Bocardo) कही जाती है। इस प्रकार तीसरे आकार मे कुल छः सन्धियाँ प्रामाणिक सिद्ध हुई। उनके नाम है— दरप्ती (Darapti), दतीसी (Datisi), डिसामिस (Disamis), फेलाप्टन (Felapton), फेरिसन (Ferison) और वोकार्डो (Bocardo)।

तीसरे आकार के विशेष नियम

तीसरे आकार की सन्धियो का निगमन अल्पव्याप्तिवाचक होता है और पक्षवाक्य प्रत्येक सन्धि में विधिवाचक होता है। इसलिए हम निम्नाकित शब्दो में तीसरे आकार के विशेष नियमो का कथन कर सकते है :—

१. पक्षवाक्य अवश्य विधिवाचक होता है।

२. निगमन-अवश्य-अल्पव्याप्तिवाचक होता है।

प्रमाण : नियम १

यदि पक्षवाक्य विधिवाचक नही है तो वह निषेधवाचक होगा। अब यदि पक्षवाक्य निषेधवाचक है तो साध्यवाक्य विधिवाचक होगा और निगमन निषेधवाचक। निषेधवाचक निगमन अपने विधेय को (साध्य पद को जो साध्यवाक्य में पूर्ण विस्तृत नही है) पूर्ण विस्तृत करता है। इससे असगत साध्य (Illicit Major) का दोष आ जाता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि तीसरे आकार में पक्षवाक्य अवश्य विधिवाचक होगा।

नियम २

तीसरे आकार में यदि निगमन अल्पव्याप्तिवाचक नही है तो सर्वव्याप्तिवाचक होगा। अब प्रथम विशेष नियम के अनुसार, जो कि ऊपर प्रमाणित किया जा चुका है, तीसरे आकार मे पक्षवाक्य अवश्य विधिवाचक होता है; इसलिए पक्षपद जो पक्षवाक्य में विधेय है, पूर्ण विस्तृत नही होता। अब यदि निगमन सर्वव्याप्तिवाचक हुआ तो पक्ष पद मूलवाक्य मे बिना पूर्ण विस्तृत हुए निगमन में पूर्ण विस्तृत हो जाता है। इसलिए असगत पक्ष (Illicit Minor) का दोष आ जाता है। अत. तीसरे आकार में निगमन अवश्य अल्प व्याप्तिवाचक (Particular) होगा।

चौथे आकार की प्रामाणिक सन्धियाँ
(Valid Moods of the Fourth Figure)

आकार ४

P M

M S

चौथे आकार में हेतु साध्यवाक्य में विधेय होता है और पक्षवाक्य में उद्देश्य। अब देखना है कि चौथे आकार मे आठ सन्धियो मे कौन-कौन सी प्रामाणिक हैं।

(अ)	AA	A	सब P है M
	‖	A	सब M है S
	AAI	I ∴	कुछ S है P

ब्रामान्टिप (Bramantip)

इस सन्धि में हेतु पक्षवाक्य में पूर्ण विस्तृत है और साध्य पद साध्यवाक्य में। पक्षपद न तो निगमन में न पक्षवाक्य में पूर्ण विस्तृत है। दोनो मूलवाक्य विधिवाचक है इसलिए निगमन भी विधिवाचक है। इसलिए AA या AAI की सन्धि चौथे आकार में प्रामाणिक सिद्ध होती है और ब्रामान्टिप (Bramantip) कही जाती है।

(ब) AE सब P है M
|| कोई M नही है P
AEE कोई S नही है P

कैमनीज (Camenes)

इस सन्धि में हेतु पुक्षवाक्य में पूर्ण विस्तृत है और साध्य पद साध्यवाक्य में पूर्ण विस्तृत है। पक्षपद पक्षवाक्त्र मे और निगमन दोनो मे पूर्ण विस्तृत है। एक मूलवाक्य निषेधवाचक है इससे निगमन भी निषेववाचक है और विधेय को (साध्य पद को, जो साध्य वाक्य में पूर्ण विस्तृत है) पूर्ण विस्तृत करता है। इसलिए चौथे आकार में AE या AEE की सन्धि प्रामाणिक है और कैमनीज (Camenes) कही जाती है।

(स) AI A सब P है M
|| I कुछ M है S
×

इस सन्धि मे मध्य पद एक वार भी पूर्ण विस्तृत नही है। इसलिए हेतु अव्याप्ति (Undistributed Middle) का दोप आ जाता है। अत: AI चौथे आकार में प्रामाणिक नही है।

(द) AO A सब P है M
|| O कुछ M नही है S
× × निगमनशून्य

इस सन्धि मे भी हेतु एक वार भी पूर्ण विस्तृत नही होता। इसलिए AO चौथे आकार में प्रामाणिक नही है।

(य) EA E कोई P नही है M
|| A सब M है S
EAO O ∴ कुछ S है P

फेसापो (Fesapo)

इस सन्धि मे हेतु दोनो मूलवाक्यो में पूर्ण विस्तृत है। पक्षपद न निगमन में न पक्षवाक्य म पूर्ण विस्तृत है। एक मूलवाक्य निषेधवाचक है इसलिए निगमन भी

निषेधवाचक है और अपने विधेय को (साध्य पद को जो साध्यवाक्य में पूर्ण विस्तृत है) पूर्ण विस्तृत करता है। इसलिए EA या EAO की सन्धि चौथे आकार मे प्रामाणिक है और फेसापो (Fesapo) कही जाती है।

(फ)	EI	E	कोई P नही है M
	‖	I	कुछ M है P
	EIO	O	कुछ S नही है P

फ्रेसिसन (Fresison)

इस सन्धि मे हेतु साध्यवाक्य मे पूर्ण विस्तृत है। पक्षपद न तो निगमन में न पक्षवाक्य मे पूर्ण विस्तृत है। एक मूलवाक्य निषेधवाचक है इसलिए निगमन भी निषेधवाचक है जो अपने विधेय को (साध्य पद को, जो साध्य वाक्य मे पूर्ण विस्तृत है) पूर्ण विस्तृत करता है। इसलिए चौथे आकार में EI या EIO की सन्धि प्रामाणिक है और फ्रेसिसन (Fresison) कही जाती है।

(ग)	IA	I	कुछ P है M
	‖	A	सब M है S
	डिमारिस (Dimaris)	I	∴ कुछ S है P

इस सन्धि मे हेतु पक्षवाक्य मे पूर्ण विस्तृत है। दोनो मूलवाक्य विधिवाचक हैं इससे निगमन भी विधिवाचक है। साध्य पद और पक्ष पद न तो निगमन में न मूलवाक्यो में पूर्ण विस्तृत हैं। इसलिए IA या IAI की सन्धि चौथे आकार में प्रामाणिक है और डिमारिस (Dimaris) कही जाती है।

(ह)	OA	O	कुछ P नही है M
	‖	A	सब M है S
	×	×	निगमनशून्य

इस सन्धि में हेतु दोनों मूलवाक्यो मे पूर्ण विस्तृत है। एक मूल्य वाक्य निषेधवाचक है इसलिए निगमन भी निषेधवाचक होगा। निषेधवाचक निगमन अपने विधेय को, जो साध्य पद होता है, पूर्ण विस्तृत करता है। पर साध्यवाक्य में साध्य पद पूर्ण विस्तृत नही है इसलिए असगत साध्य का दोष आ जाता है। OA इसलिए चौथे आकार मे प्रामाणिक नही है। अतः चौथे आकार मे पाँच

प्रामाणिक सन्धियाँ सिद्ध होती हैं। वे हैं—ब्रामान्टिप (Bramantip), कैमेनीज (Camenes), डिमारिस (Dimaris), फेसापो (Fesapo) और फ्रेसिसन (Fresison)।

चौथे आकार के लिए विशेष नियम निम्नांकित है—

(१) यदि साध्यवाक्य विधिवाचक है तो पक्षवाक्य अवश्य सर्वव्याप्ति वाचक होगा।

(२) यदि पक्षवाक्य विधिवाचक है तो निगमन अवश्य अल्पव्याप्ति-वाचक होगा।

(३) यदि कोई मूलवाक्य निषेधवाचक है तो साध्यवाक्य अवश्य सर्व-व्याप्तिवाचक होगा।

नियम १

प्रमाण : यदि हम चौथे आकार का निरीक्षण करते हैं तो पाते हैं कि इसके तीनों नियम मूलवाक्यो मे हेतु, पक्ष और साध्य की सापेक्ष स्थिति का अनुसरण करते हैं। जैसे, यदि साध्यवाक्य विधिवाचक है तब हेतु जो कि साध्यवाक्य में विधेय है अपूर्ण विस्तृत रह जाता है। इसलिए उसे पक्षवाक्य मे अवश्य पूर्ण विस्तृत होना चाहिए। पक्षवाक्य मे हेतु उद्देश्य होता है। इसलिये यदि हेतु को पूर्ण विस्तृत करना है तो पक्षवाक्य को अवश्य सर्वव्याप्तिवाचक होना पड़ेगा।

नियम २

यदि पक्ष वाक्य विधिवाचक है तो पक्षपद पूर्ण विस्तार नही पाता। यह निगमन में उद्देश्य होता है इसलिए यह वहाँ भी पूर्ण विस्तार नही पायेगा। अतः निगमन को अल्पव्याप्तिवाचक होना पड़ेगा।

नियम ३

यदि कोई मूलवाक्य निषेधवाचक है तो निगमन भी निषेधवाचक होगा। इसलिए साध्यपद निगमन में पूर्ण विस्तार पायेगा। इसलिए इसे साध्यवाक्य में भी पूर्ण विस्तार पाना चाहिए। यदि साध्यवाक्य मे साध्यपद पूर्ण विस्तृत है तब वह वाक्य अवश्य सर्वव्याप्तिवाचक होगा।

उपर्युक्त व्याख्या से हम देखते है कि चारो आकारो की ६४ सन्धियों मे केवल १९ प्रामाणिक सिद्ध होती है। पहले आकार मे ४, दूसरे मे ४, तीसरे मे ६ और चौथे मे ५ सन्धियाँ प्रामाणिक है। इस प्रकार सब मिलाकर प्रामाणिक सन्धियो की सख्या १९ हुई। उनके नाम है :—

बारबारा (Barbara), सिलारेन्ट (Celarent), डेरियाई (Darii), फेरिओ (Ferio,), कैमेस्ट्रीज (Camestres), बारोको (Baroco), सिजारी (Cesare), फेस्टिनो (Festino), दरप्ती (Darapti), डिसामिस (Disamis), फेलाप्टन (Felapton), बोकार्डो (Bocardo), फेरिसन (Ferison), ब्रामान्टिप (Bramantip), कैमेनीज (Camenes), डिमारिस (Dimaris), फेसापो (Fesapo) और फ्रेसीसन (Fresison)।

चौथा आकार बाद मे जोडा गया

अरस्तू ने चौथे आकार को प्रामाणिक नही माना था। यह अरस्तू के आकारो की सूची मे बाद मे जोड दिया गया। कहा जाता है कि यह काम गैलिनस (Galenus) ने किया था। इसलिए इसे गैलीनियन आकार कहते है।

चारो आकारो की तुलना

यदि चारो आकारो की तुलना की जाय तो A निगमन केवल प्रथम आकार के बारबारा सन्धि मे पाया जाता है। चारो मूलभूत वाक्य अर्थात् A, E, I और O निगमन रूप केवल प्रथम आकार मे ही मिलते है। दूसरे आकार का निगमन सदैव निषेधवाचक होता है और तीसरे आकार का निगमन सदैव अल्प-व्याप्तिवाचक होता है। चौथे आकार मे तीन प्रकार के वाक्य निगमन मे प्रमाणित होते है। वे है—E, I और O।

प्रामाणिक सन्धियों के मूर्त्त उदाहरण

आकार १

बारबारा (Barbara) A सभी मनुष्य मर्त्य है।
A सभी हब्शी मनुष्य है।
A ∴ सभी हब्शी मर्त्य है।

सिलारेन्ट (Celarent)	E	कोई मनुष्य पूर्ण नहीं है।
	A	सभी योरोपियन मनुष्य है।
	E ∴	कोई योरोपियन पूर्ण नहीं है।
डेरिआई (Darii)	A	सभी भारतीय एशियन है।
	I	कुछ असभ्य जातियाँ भारतीय है।
	I ∴	कुछ असभ्य जातियाँ एशियन है।
फेरियो (Ferio)	E	कोई मनुष्य मोटे चमड़े का नही है।
	I	कुछ जीवित प्राणी मनुष्य है।
	O ∴	कुछ जीवित प्राणी मोटे चमड़े के नहीं है।

आकार २

केमेस्ट्रीज (Camestres)	A	सभी जानवर चेतन प्राणी है।
	E	कोई पौधा चेतन प्राणी नहीं है।
	E ∴	कोई पौधा जानवर नही है।
सीजारी (Cesare)	E	कोई देवता मनुष्य नही है।
	A	सभी बौद्धिक प्राणी मनुष्य है।
	E ∴	कोई बौद्धिक प्राणी देवता नही है।
बारोको (Baroco)	A	सभी हब्शी काले है।
	O	कुछ मनुष्य काले नही है।
	O ∴	कुछ मनुष्य हब्शी नही है।
फेस्टिनो (Festino)	E	कोई मनुष्य अभ्रान्त नही है।
	I	कुछ प्राणी अभ्रान्त है।
	O ∴	कुछ प्राणी मनुष्य नही है।

आकार ३

दरप्ती (Darapti)	A	सभी मनुष्य बौद्धिक है।
	A	सभी मनुष्य चेतन प्राणी है।
	I ∴	कुछ चेतन प्राणी बौद्धिक है।

दतीसी (Datisi) A सभी गाए चोपाये हैं।
I कुछ गाये लाभदायक जानवर हैं।
I ∴ कुछ लाभदायक जानवर चौपाये हैं।

डिसामिस (Disamis) I कुछ जानवर द्विपद हैं।
A सभी जानवर चलने-फिरने के योग्य हैं।
I ∴ कुछ जो चलने-फिरने के योग्य हैं द्विपद हैं।

फेलाप्टन (Felapton) E मछलियाँ गर्म खून की नही होतीं।
A सभी मछलिया जानवर हैं।
O ∴ कुछ जानवर गर्म खून के नही होते।

बोकार्डो (Bocardo) O कुछ धातुये कीमती नही है।
A सभी धातुए पदार्थ हैं।
O ∴ कुछ पदार्थ कीमती नही हैं।

फेरिसन (Ferison) E १८ वर्ष से कम का नाबालिग मत देने का अधिकारी नही है।
I कुछ नाबालिग १८ वर्ष के भीतर तीव्र बुद्धि वाले हैं।
O ∴ कुछ तीव्र बुद्धि वाले मत देने के अधिकारी नही हैं।

आकार ४

ब्रामान्टिप (Bramantip) A सभी बौद्धिक प्राणी मनुष्य है।
A सभी मनष्य दोष के उत्तरदायी हैं।
I ∴ कुछ दोष के उत्तरदायी प्राणी बौद्धिक हैं।

कैमेनीज (Camenes)	A	सभी मनुष्य मर्त्य है।
	E	कोई मर्त्य सर्वज्ञानी नही है।
	E	∴ कोई सर्वज्ञानी प्राणी मनुष्य नहीं है।
डिमारिस (Dimaris)	I	कुछ चौपाये घोडे है।
	A	सभी घोडे वलिष्ट जानवर हैं।
	I	∴ कुछ वलिष्ट जानवर चौपाये हैं।
फेरापो (Ferapo)	E	शेर पालतू जानवर नही है।
	A	सभी पालतू जानवर लाभप्रद है।
	O	∴ कुछ लाभप्रद जानवर शेर नहीं हैं।
फ्रेसीसन (Fresison)	E	कोई मनुष्य पूर्ण नही है।
	I	कुछ पूर्ण प्राणी वुद्धिमान है।
	O	∴ कुछ वुद्धिमान प्राणी मनुष्य नही हैं।

७. मूलभूत, अमूलभूत, सशक्त और निःशक्त न्याय

कुछ नैयायिक न्याय (Syllogism) के ऐसे प्रकार वताते हैं जैसे मूलभूत या अमूलभूत, सशक्त या नि शक्त न्याय।

(१) **मूलभूत और अमूलभूत न्याय** (Fundamental & non-fundamental Syllogism) :—मूलभूत न्याय वह है जिसमे न तो साध्य और न पक्षपद मूलवाक्यो में अनावश्यक पूर्ण विस्तृत हैं। हेतु केवल एक वार पूर्ण विस्तृत है। जैसा कि हम पहले देख चुके है हेतु प्रामाणिक न्याय में कम से कम एक वार अवश्य पूर्ण विस्तार पाता है और वहिरस्थ यदि मूलवाक्यो मे पूर्ण विस्तृत नही है तो निगमन में भी पूर्ण विस्तृत नही होते। एक प्रामाणिक न्याय के तीनो पदो की यह कम से कम योग्यता होनी चाहिए। अस्तु वह न्याय मूलभूत है जिसमें हेतु केवल एक वार पूर्ण विस्तृत हो और जिसमें साध्य और पक्ष पद न तो निगमन न मूलवाक्यो मे अनावश्यक पूर्ण विस्तृत हो। सक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मूलभूत न्याय वह अनुमान

है जिसमें मूल्य वाक्य आवश्यकता से अधिक सशक्त नही है। उनमे केवल उतनी ही शक्ति है जिससे निगमन सगत सिद्ध होता है।

यदि हम दरप्ती, फेलाप्टन की तीसरे आकार मे और ब्रामान्टिप और फेसापो की चौथे आकार मे जाँच करते हैं तो पाते हैं कि तीन सन्धियो में हेतु दो वार पूर्ण विस्तृत है। अर्थात् हेतु दोनो मूलवाक्यो मे पूर्ण विस्तृत है। ये सन्धियाँ है, दरप्ती, फेलाप्टन और फेसापो हैं। ब्रामान्टिप मे साध्य अनावश्यक पूर्ण विस्तृत है। न्याय के तीसरे नियम के अनुसार हेतु कम से कम एक वार पूर्णविस्तार मे लिया जाना चाहिए। एक वार यदि हेतु पूर्ण विस्तार पा जाता है तो संगत न्याय के लिए पर्याप्त होता है। फिर चौथे नियम के अनुसार साध्य या पक्ष यदि निगमन मे पूर्ण विस्तृत है तो उन्हें मूलवाक्यो मे भी पूर्ण विस्तृत होना चाहिए। ब्रामान्टिप मे निगमन अल्प व्याप्तिवाचक है जिसमे साध्य पद P पूर्ण विस्तृत नही है। इसलिए साध्यवाक्य में साध्य पद के पूर्ण विस्तृत होने की कोई आवश्यकता नही है। फिर भी साध्यवाक्य मे साध्य पद पूर्ण विस्तृत है। साध्यवाक्य बेकार ही सर्व-व्याप्तिवाचक है और इसलिए यह आवश्यकता से अधिक सशक्त है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि चार सन्धियाँ अर्थात् दरप्ती (Darapti), फेलाप्टन (Felapton), फेसापो (Fesapo) और ब्रामान्टिप (Bramantip) मूलभूत न्याय की श्रेणी में नही आती। इन चारो को यदि निकाल दिया जाय तो बाकी १५ सन्धियाँ मूलभूत न्याय (Syllogism) की श्रेणी में आती है।

Darapti

A सब M है P
A सब M है S
I ∴ कुछ S है P

Felapton

E कोई M नहीं है P
A सब M है S
O ∴ कुछ S नहीं P

Fesapo

E कोई P नहीं है M
A सब M है S
O कुछ S नहीं है P

Bramantip

A सब P है M
A सब M है S
I ∴ कुछ S है P

१९ में से १५ संधियाँ मूलभूत है।

न्यायसंगत सर्वव्याप्ति-वाचक-की जगह अल्प व्याप्तिवाचक निगमन

(२) नि:शक्त न्याय और विपरीत-नि शक्त (Weakened & Non-Weakened Syllogism)·—यह नि.शक्त न्याय जो उपविरोधी सन्धि (Subaltern Mood) भी कहा जाता है बड़ी आसानी से समझा जा सकता है। यह ऐसा न्याय है कि जिसमे सर्वव्याप्ति वाचक निगमन की प्रामाणिकता के लिए पर्याप्त साधन रहने पर भी अल्प व्याप्तिवाचक निगमन निकाला जाता है १९ सन्धियो मे से ५ सन्धियाँ ऐसी हैं जिनमे निगमन सर्वव्याप्तिवाचक है । ये सन्धियाँ है—बारबारा, सिलारेन्ट, कैमेस्ट्रीज, सीजारी और कैमनीज। इन पाँचो मे हम सर्वव्याप्ति वाचक की जगह अल्प व्याप्तिवाचक निष्कर्ष भी निकाल सकते है। उपर्युक्त सन्धियो के अनुरूप हम निम्नाकित सन्धियाँ प्राप्त कर सकते है —

मूलसन्धि	उपविरोधी सन्धि
बारबारा (Barbara)	बारबारी (Barbari)
सीलारेन्ट (Celarent)	सीलारोन्ट (Celaront)
सीजारी (Cesarı)	सीजारो (Cesaro)
कैमेस्ट्रीज (Camestres)	कैमेस्ट्रोज (Camestros)
कमेनीज (Camenes)	कमेनोज (Camenos)

इन सब में हम सर्वव्याप्ति वाचक की जगह अल्पव्याप्तिवाचक निगमन ग्रहण कर सकते है। यह इस सिद्धान्त पर आधारित है कि हम सगत निगमन से कम ले सकते हैं किन्तु अधिक नही। इस प्रकार ऊपर निर्दिष्ट पाँच नि शक्त न्याय पाये जाते है।

(३) सशक्त न्याय और विपरीप-सशक्त न्याय (Strengthened & Non-Strengthened Syllogism)·—जब मूलवाक्यो मे से कोई एक मूलवाक्य आवश्यकता से अधिक सशक्त होता है तब न्याय (Syllogism) सशक्त कहा जाता है। ऐसे न्याय में जहाँ हम अल्प व्याप्तिवाचक मूलवाक्यों से सगत निगमन निकाल सकते है वहाँ सर्व व्याप्तिवाचक मूलवाक्यो का व्यवहार

करते हैं। सशक्त न्याय में या तो वहिरस्थो मे से कोई या हेतु अनावश्यक पूर्ण विस्तृत होता है। ऐसा न्याय अमूलभूत न्याय (Non-Fundamental Syllogism) की श्रेणी मे आता है। हम खड (१) मे देख चुके हैं कि दरप्ती, फेलाप्टन, फेसापो और ब्रामान्टिप आदि अमूलभूत न्याय की सन्धियाँ है। अब उपर्युक्त ५ सन्धियो का अर्थात् बारबारी, सीलारोन्ट, सीजारो, केमेस्ट्रोस और केमनोज का निरीक्षण करना है —

जब मूलवाक्य अनावश्यक सर्व-व्याप्ति वाचक होता है तब निगमन सशक्त कहा जाता है।

आकार १

बारबारी (Barbari) A सब M है P
A सब S है M
I ∴ कुछ S है P.

यहाँ पर पक्षपद निगमन मे पूर्ण विस्तृत नही है इसलिए पक्ष वाक्य मे उसको पूर्ण विस्तार पाने की आवश्यकता नही है, फिर भी पक्ष पद पक्षवाक्य मे पूर्ण विस्तृत है, इसीलिए कहा जाता है कि पक्षवाक्य आवश्यकता से अधिक सशक्त है।

सीलारोन्ट (Celaront) E कोई M नही है P
A सब S है M
O ∴ कुछ S नही है P

पक्षवाक्य मे पक्षपद अनावश्यक पूर्ण विस्तृत है क्योकि निगमन मे पक्ष पद पूर्ण विस्तृत नही है। इसलिए पक्षवाक्य आश्यकता से अधिक सशक्त है।

आकार २

सीजारो (Cesaro) E कोई P नही है M
A सब S है M
O ∴ कुछ S नही है P

निगमन मे पक्षपद पूर्ण विस्तृत नही है परन्तु पक्षवाक्य मे वह पूर्ण विस्तृत है। इसलिए पक्षवाक्य अनावश्यक सर्वव्याप्तिवाचक है।

कैमेस्ट्रोस (Camestros) A सब P है M
E कोई S नही है M
O कुछ S नही है P

पक्ष पद निगमन मे पूर्ण विस्तृत नही है इसलिए पक्षवाक्य में उसका पूर्ण विस्तृत होना आवश्यक है।

आकार ४

कैमनोस (Camenos) A सब P है M
E कोई M नही है S
O. कुछ P नहीं है S

यहाँ पर निगमन में पक्ष पूर्ण विस्तृत नही है इसलिए ऐसा ज्ञात होता है कि पक्षवाक्य मे वह अनावश्यक ही पूर्ण विस्तृत है। पर ऐसा नही है। O निगमन के लिए AE मूलवाक्यो का होना आवश्यक है। यदि हम पक्षवाक्य E की जगह O या I रखते है तो हेतु-अव्याप्ति का दोष लाते है और दो विधिवाचक मूलवाक्यो से एक निषेधवाचक निगमन निकालते है। इसलिए कैमोनोस (Camenos) को नियम का अपवाद मानना पडेगा। इसे सशक्त न्याय नहीं कहा जा सकता। अत. कैमोनोस को छोड देने से हमें आठ ऐसे न्याय मिलते है जो सशक्त न्याय कहे जाते। वे हैं—दरप्ती, फेलाप्टन, फेसापो, ब्रामान्टिप, वारवारी, सीलारोन्ट, सीजारी और कैमेस्ट्रोस।

८. रूपान्तर (Reducton)

हम पहले देख चुके है कि सिद्धान्त-सूत्र (Dictum) केवल प्रथम आकार पर आरूढ होता है, या यो कहें कि पहला ही ऐसा आकार है जो सीधा सिद्धान्तसूत्र (Dictum) से निष्कर्ष रूप प्राप्त होता है, इसलिए प्रथम आकार पूर्ण आकार माना जाता है। द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ आकार सीधे सिद्धान्तसूत्र (Dictum) से नहीं निकाले जा सकते। ये आकार केवल हेतु की स्थिति से निश्चित किये जाते है, इसलिए अपूर्ण आकार माने जाते है। चूंकि

अपूर्ण आकार की सन्धियोको पूर्ण आकार की सन्धियों में बदलने की प्रक्रिया को रूपान्तर कहते है।

'डिक्टम डि आमनी एटनलो' न्याय का मूलभूत सिद्धांत है और चूँकि द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ आकार पर यह डिक्टम लागू नही होता, इसलिए इन आकारों की प्रामाणिकता प्रथम आकार के द्वारा निश्चित की जाती है, क्योंकि वही पूर्ण आकार है। रूपान्तर (Reduction) वह प्रक्रिया है जिसमें अपूर्ण आकार (Imperfect Figure) की सन्धियाँ प्रथम आकार की सन्धियो मे परिवर्तित की जाती है।

रूपान्तर दो तरह का होता है--सरल (Direct) या वक्र (Indirect)--- रूपान्तर सरल और वक्र दो तरह का होता है। (१) सरल (Direct) रूपान्तर मे स्थानान्तर (Conversion) या प्रतिवर्तन (Obversion) द्वारा या मूलवाक्यों के उलटफेर द्वारा अपूर्ण आकार की सन्धि को पूर्ण आकार की सन्धि मे परिवर्तित किया जाता है और तब दिए हुए न्याय की सगतता प्रमाणित की जाती है।

(२) वक्र (Indirect) रूपान्तर में प्रथम आकार की सहायता से यह दिखलाया जाता है कि दिये हुए न्याय का विरोधी (Contradictory) असत्य है। एक विरोधी के असत्य होने पर दूसरा अवश्य सत्य होता है। इस तरह वक्र गति से दिये हुए न्याय की सत्यता या सगतता प्रमाणित की जाती है। इसलिए इस रूपान्तर को वक्र (Indirect) रूपान्तर कहते है।

(१) **अपूर्ण सन्धियों का सरल रूपान्तर** (Direct Reduction of the Imperfect Moods)---जब हम द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ आकारो की सन्धियो को प्रथम आकार की सन्धियो मे सरल रीति से रूपान्तरित करते हैं तब परिवर्त्य सन्धि के नाम के उन अक्षरो से सहायता लेते है जो साभिप्राय प्रारम्भ में रक्खे गये है। जैसे द्वितीय आकार मे (Camestres) सन्धि है। इसका C यह सूचित करता है कि इसे प्रथम आकार की (Celarent) सन्धि मे परिवर्तित किया जाय। इसी प्रकार (Festino) का F यह बतलाता है कि इसे Ferio मे परिवर्तित किया जाय। तीसरे आकार Datisi का D सकेत करता है कि इसे Darii मे बदला जाय।

M से सकेत मिलता है कि दी हुई सन्धि के मूलवाक्यों मे उलट-फेर होना चाहिए अर्थात् साध्यवाक्य को पक्षवाक्य बनाया जाय और पक्षवाक्य को साध्यवाक्य का स्थान दिया जाय।

S से यह सकेत मिलता कि इसके पहले का स्वर जिस निर्णयवाक्य के लिए व्यवहृत हुआ है वह स्थानान्तर से सरल रीति से परिवर्तित किया जाय।

P से यह यह सकेत मिलता है कि इसके पहले का स्वर जिस निर्णय वाक्य के लिए व्यवहृत हुआ है वह औपाधिक गुण के द्वारा परिवर्तित किया जाय।

जब S या P तीसरे स्वर के बाद आये तब यदि S हो तो यह समझना चाहिए कि दिये हुए न्याय का निगमन सरल रीति से परिवर्तित होगा और यदि P हो तब औपाधिक गुण के द्वारा परिवर्तित होगा।

Bocardo और Baroco कुछ अजीब सन्धियाँ है। इनमें निगमन O है इसलिए ये सरल रूपान्तर में नही आ सकती। इन दोनो मे प्रारम्भिक अक्षर B है जो यह सूचित करता है कि ये सन्धियाँ Barbara में रूपान्तरित की जाँय। किन्तु O के कारण ऐसा हो नही सकता। इसलिए इन दोनो को नियम का अपवाद मानना पडता है। इनमें C है जो यह बतलाता है कि इनको वक्र रीति से रूपान्तरित किया जाय। इनको दूसरा नाम देकर ऊपर की कठिनाई दूर करने की भी चेष्टा की गई है और इस प्रकार Baroco का नया नाम Faksoko और Bocardo का नया नाम Doksamosh रक्खा गया है। प्रारम्भिक अक्षर सकेत करते है कि इन्हे इन सन्धियो मे परिवर्तित करना चाहिए।

K से सकेत मिलता है कि पूर्वगामी स्वर से जो निर्णयवाक्य व्यक्त होता है वह प्रतिवर्तन (Obversion) द्वारा परिवर्तित किया जाय।

S से सकेत मिलता है कि पूर्वगामी स्वर से व्यक्त होनेवाले निर्णय-वाक्य का स्थानान्तर द्वारा सरल परिवर्तन किया जाय।

Ks से सकेत मिलता है कि पूर्वगामी निर्णय-वाक्य पहले प्रतिवर्त्तित किया जाय फिर स्थानान्तरित और Sk में विपरीत क्रम रक्खा जाय।

Sk जब तीसरे स्वर के बाद आता है तब इसका यह मतलब होता है कि

निगमन पहले स्थानान्तरित किया जाय फिर प्रतिवर्तित। शेष अक्षर रूपान्तर के लिए कोई महत्व नही रखते।

(१) दूसरे आकार की सन्धियाँ

मूल सन्धि		रूपान्तरित सन्धि
१ Camestres		Celarent
A	सब P है M	कोई M नही है S; E
E	कोई S नही है M	∴ सब P है M; A
E ∴	कोई S नही है P	∴ कोई P नही है S;
		∴ कोई S नही है P, E

पहले हम दिये हुए पक्षवाक्य को स्थानान्तरित करते है और "कोई M नही है S" को प्राप्त करते है। फिर मूलवाक्यो के उलट-फेर से अर्थात् "कोई M नही है P" को साध्यवाक्य और मूल साध्यवाक्य को पक्षवाक्य बनाकर, "कोई P नही है S" निगमन निकालते है। फिर "कोई P नही है S" को स्थानान्तरित करते है और तब हमको "कोई S नही है P" दिये हुए न्याय का निगमन मिलता है। इस प्रकार हम Camestres को Celarent मे परिवर्तित करते है।

मूल सन्धि		रूपान्तरित सन्धि
२ Cesare		Celarent
F	कोई P नही है M	कोई M नही है P E
A	सब S है M	सब S है M A
∴ E	कोई S नही है P	∴ कोई S नही है P E

यहाँ पर मूल साध्य वाक्य का सरल स्थानान्तर कर देने से Cesare का Celarent मे परिवर्तन हो गया है।

मूल सन्धि		रूपान्तरित सन्धि
३ Baroco (Faksoko)		Ferio
A	सब P है M	कोई नही-M नही है P E
O	कुछ S नही है M	कुछ S है नही-M I
O ∴	कुछ S नही है P	∴ कुछ S नही है P O

साध्यवाक्य, "सब P है M" पहले प्रतिवर्तित किया गया फिर स्थानान्तरित। पक्षवाक्य प्रतिवर्तित किया गया।

	मूल सन्धि	रूपान्तरित सन्धि	
४ Festino			Ferio
E	कोई P नही है M	कोई M नही है P	E
I	कुछ S है M	कुछ S है M	I
O	∴ कुछ S नही है P	∴ कुछ S नही है P	O

(२) तीसरे आकार की सन्धियाँ

	मूल सन्धि	रूपान्तरित सन्धि	
१ Darapti			Darii
A	सब M है P	सब M है P	A.
A	सब M है S	कुछ S है M	I
I	∴ कुछ S है P	∴ कुछ S है P	I

मूल साध्य वाक्य अपरिवर्तित है और पक्षवाक्य औपाधिक गुण द्वारा परिवर्तित किया गया है।

	मूल सन्धि	रूपान्तरित सन्धि	
२ Disamis			Darii
I	कुछ M है P	सब M है S	A
A	सब M है S	कुछ P है M	I
I	∴ कुछ S है P	∴ कुछ P है S	
		∴ कुछ S है P	I

यहाँ पर पहले मूलवाक्यो में उलट-फेर किया गया है। साध्यवाक्य को पक्षवाक्य बनाया गया है और पक्षवाक्य को साध्यवाक्य। फिर नये पक्षवाक्य, "कुछ M है P" को स्थानान्तरित किया गया है। फिर नये न्याय के निगमन को स्थानान्तरित किया गया है।

	मूल सन्धि	रूपान्तरित सन्धि	
३ Datisi			Darii
A	सब M है P	सब M है P	A
I	कुछ M है S	कुछ S है M	I
I	∴ कुछ S है P	∴ कुछ S है P	I

पक्षवाक्य को स्थानान्तरित करने से Datisi परिवर्तित हो गई है Darii मे।

	मूल सन्धि	रूपान्तरित सन्धि	
४ Bocardo			Darii
O	कुछ M नही है P	सब M है S	A
A	सब M है S	कुछ नही-P है M	I
O	∴ कुछ S नही है P	∴ कुछ नही-P है S	
		∴ कुछ S है नही-P	I

मूल पक्षवाक्य नये न्याय का साध्य वाक्य बनता है। मूल साध्य वाक्य "कुछ M नही है P" पहले प्रतिवर्तित किया गया फिर स्थानान्तरित। फिर नये न्याय का पक्षवाक्य बनाय गया। फिर, "कुछ नही-P है M" को स्थानान्तरित करके प्रतिवर्तित किया गया।

	मूल सन्धि	रूपान्तरित सन्धि	
५ Felapton			Ferio
E	कोई M नही है P	कोई M नही है P	E
A	सब M है S	कुछ S है M	I
O	∴ कुछ S नही है P	∴ कुछ S नही है P	O

मूल पक्षवाक्य औपाधिक धर्म द्वारा स्थानान्तरित किया गया है।

	मूल सन्धि	रूपान्तरित सन्धि	
६ Ferison			Ferio
E	कोई M नही है P	कोई M नही है P	E
I	कुछ M है S	कुछ S है M	I
O	∴ कुछ S नही है P	∴ कुछ S नही है P	I

केवल मूलपक्षवाक्य स्थानान्तरित किया गया है।

(३) चतुर्थ आकार की सन्धियाँ

	मूल सन्धि		रूपान्तरित सन्धि	
१ Bramantip				Barbara
	A	सव P है M	सव M है S	A
	A	सव M है S	सव P है M	A
	I	∴ कुछ S है P	∴ सव P है S	A
			∴ कुछ S है P	I

पहले मूलवाक्यो मे उलट-फेर किया गया। इससे प्रथम आकार के Barbara सन्धि मे निगमन प्राप्त हुआ। फिर इसको स्थानान्तरित करने से मूल निगमन मिला जो नये न्याय का निगमन वना।

	मूल सन्धि		रूपान्तरित सन्धि	
२ Camenes				Celarent
	A	सव P है M	कोई M नही है S	E
	E	कोई M नही है P	सव P है M	A
	E	∴ कोई S नही है P	∴ कोई P नही है S	E
			∴ कोई S नही है P	

पहले मूल वाक्यो मे उलटफेर किया गया। फिर नये न्याय के निगमन को स्थानान्तरित करके मूलनिगमन प्राप्त किया गया।

	मूल सन्धि		रूपान्तरित सन्धि	
३ Dimaris				Datii
	I	कुछ P है M	सव M है S	A
	A	सव M है S	कुछ P है M	I
	I	∴ कुछ P है S	कुछ P है S	I
			∴ कुछ S है P	

पहले मूलवाक्यो में उलट-फेर किया गया। फिर नये न्याय के निगमन को स्थानान्तरित करके मूलनिगमन प्राप्त किया गया।

	मूल सन्धि	रूपान्तरित सन्धि
४ Fesapo		Ferio
E	कोई P नही है M	कोई M नही है P E
A	सब M है S	कुछ S है M I
O	∴ कुछ S नही है P	∴ कुछ S नही है P O

इसमे साध्यवाक्य और पक्षवाक्य दोनो स्थानान्तरित किये गये है।

	मूल सन्धि	रूपान्तरित सन्धि
५ Fresison		Ferio
E	कोई P नही है M	कोई M नही है P E
I	कुछ M है S	कुछ S है M I
O	कुछ S नही है P	∴ कुछ S नही है P O

साध्यवाक्य और पक्षवाक्य को स्थानान्तरित कर देने से Fresison परिवर्तित होकर Ferio हो जाती है।

(२) अपूर्ण आकार की सन्धियों का वक्र रूपान्तर (Indirect Reduction)

पहले बताया जा चुका है कि वक्ररूपान्तर वह रूपान्तर है, जिसमें किसी अपूर्ण आकार का संगत न्याय लिया जाता है और उसके निगमन के विरोधी की असत्यता दिखला कर उसकी प्रामाणिकता प्रतिपादित की जाती है। यह प्रामाणिकता प्रथम आकार की सहायता से प्रतिपादित की जाती है। इस रूपान्तर को Reductio ad absurdum या Reductio per impossible कहते है। इसकी प्रक्रिया निम्नाकित है .—

	मूलसन्धि	रूपान्तरित सन्धि
१ Camestres		Darii
A	सब P है M;	सब P है M (मूल साध्यवाक्य) A
E	कोई S नही है M;	कुछ S है P (मूल निगमन का विरोधी) I
E	कोई S नही है P,	∴ कुछ S है M (नये न्याय में P हेतु बन गया है) I

यदि निगमन, "कोई S नही है P" (E) असत्य है, तो इसका विरोधी, 'कुछ S है P" (I) सत्य होगा। तब, "कुछ S है P" को पक्षवाक्य बनाकर और "सब P है M" को साध्यवाक्य बनाकर हम यह निगमन निकाल सकते है कि "कुछ S है M" (I) किन्तु यह वाक्य मूल पक्षवाक्य, "कोई A नही है M" (E) का विरोधी है। मूलवाक्य सत्य माना गया है इसलिये यह नया निष्कर्ष असत्य है। फिर नये न्याय का साध्यवाक्य मूल साध्यवाक्य है जो सत्य माना गया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि नये निगमन की असत्यता पक्षवाक्य की असत्यता के ही कारण है, जो कि मूल निगमन का विरोधी है, अर्थात् वाक्य, "कुछ S है P" (I) असत्य है और इसके असत्य होने से इसका विरोधी, "कोई S नही है P" (E) जो कि मूल निगमन है सत्य प्रमाणित होता है।

	मूल सन्धि	रूपान्तरित सन्धि		
	Cesare			Ferio
E	कोई P नही है M,	कोई P नही है M	(मूल साध्यवाक्य)	E
A	सब S है M,	कुछ S है P	(मूल निगमन का विरोधी)	I
E	कोई S नही है P,	∴ कुछ S नही है M	(नया निगमन)	O

यदि "कोई S नही है P" (E), मूल निगमन सत्य नही है तो इसका विरोधी "कुछ S है P" (I) सत्य होगा। अब यदि इस वाक्य को पक्ष-वाक्य बनाते है, और मूल साध्य को साध्य वाक्य बनाते है तो हमको Ferio आकार का न्याय मिलता है। किन्तु इस न्याय का निगमन, "कुछ S नही है M" (O) मूल पक्ष वाक्य, "सब S है M" का विरोधी है। परन्तु "सब S है M" सत्य माना गया है। इसलिये, "कुछ S नही है M" अवश्य असगत निगमन है। यह असगतता न तो साध्य वाक्य के कारण आ सकती है न तो यह Ferio के आकार के ही कारण आ सकती है। नये न्याय का साध्य वाक्य मूल साध्य वाक्य है जो सत्य स्वीकार हो चुका है और नये न्याय की सन्धि Ferio है जो प्रथम आकार की सगत सन्धि है। इसलिये निगमन की असगतता पक्ष वाक्य, "कुछ S है P" मे ही ढूँढी जा सकती है। "कुछ S है P" यह वाक्य असत्य है, इसीलिये

निगमन, "कुछ S नही है M" असगत सिद्ध हुआ। अत. "कुछ S है P" (I) का विरोधी, "कोई S नही है P" (E) अवश्य सत्य है।

	मूल सन्धि	रूपान्तरित सन्धि	
	३. Baroco	Barbara	
A	सब P है M	सब P है M (मूल साध्य वाक्य)	A
O	कुछ S नही है M	सब S है P (मूल निगमन का विरोधी)	A
O	∴ कुछ S नही है P	∴ सब S है M (नया निगमन)	A

मूल साध्य वाक्य को साध्य वाक्य और मूलनिगमन के विरोधी को पक्ष वाक्य बनाने से बारबारा मे नया न्याय मिलता है। इसका निगमन है, "सब S है M" (A) जो कि मूल पक्षवाक्य, "कुछ S नही है M" (O) का विरोधी है। किन्तु "कुछ S नही है M" सत्य स्वीकार किया जा चुका है, इसलिये "सब S है M" असत्य है। नये न्याय की असगतता न तो साध्य वाक्य के कारण है न आकार के। क्योंकि साध्यवाक्य मूल साध्य है और आकार प्रथम आकार मे Barbara सन्धि है। ये दोनो प्रामाणिक स्वीकृत है। इसलिये नये निगमन की असंगतता का कारण नया पक्ष वाक्य ही है। अब यदि "सब S है P" (A) असत्य है, तो इसका विरोधी, "कुछ S नही है P।" (O) अवश्य सत्य है।

आकार ३

	मूल सन्धि	रूपान्तरित सन्धि	
	१. Darapti	Celarent	
A	सब M है P	कोई S नही है P (निगमन का विरोधी)	E
A	सब M है S	सब M है S (मूल पक्ष वाक्य)	A
I	∴ कुछ S है P	∴ कोई M नही है P (नया निगमन)	E

S इसमे हेतु है।

मूल निगमन के विरोधी को साध्य वाक्य और मूलपक्ष वाक्य को पक्ष-वाक्य बनाने से प्रथम आकार की Celarent सन्धि में नया न्याय मिलता है। इसमें निगमन, "कोई M नही है P" (E) मूल साध्य वाक्य

का विपरीत है। किन्तु मूल साध्यवाक्य सत्य स्वीकृत है। इसीलिये इसका विपरीत, "कोई M नही है P" असत्य है। पक्ष वाक्य मूल पक्ष वाक्य है, जो सत्य स्वीकृत है। Celarent प्रामाणिक सन्धि है। इसलिये न्याय का आकार भी सगत है। अनुमान की प्रक्रिया में कोई दोष नही हो सकता। इससे नये निगमन की अप्रमाणिकता यह व्यक्त करती है कि नया साध्य वाक्य असत्य है। अब जब नया साध्य वाक्य असत्य है, तब इसका विरोधी मूल निगमन अवश्य सत्य है।

मूल सन्धि रूपान्तरित सन्धि

२. Datisi Ferio

A सब M है P कोई S नही है P (मूल निगमन का विरोधी) E
I कुछ M है S कुछ M है S (मूल पक्ष वाक्य) I
I कुछ S है P कुछ M नही है P (नया निगमन) O

इसमें भी पहले की तरह नये न्याय का साध्य वाक्य मूल निगमन का विरोधी है। मूल पक्ष वाक्य इसका भी पक्षवाक्य है। प्रथम आकार की प्रामाणिक सन्धि Ferio नये न्याय की सन्धि है। नया निगमन मूल साध्य वाक्य का विरोधी है। किन्तु मूल साध्य वाक्य सत्य स्वीकृत है। इसलिये नया निगमन असत्य सिद्ध होता है। पक्षवाक्य सत्य है। इसलिये साध्यवाक्य की असगतता ही निगमन की असत्यता का कारण है। इसलिये मूल निगमन सत्य है।

मूल सन्धि रूपान्तरित सन्धि

३. Disamis Celarent

I कुछ M है P कोई S नही है P (मूल निगमन का विरोधी) E
A सब M है S सब M है S (मूल पक्ष वाक्य) A
I कुछ S है P ∴ कोई M नही है P (नया निगमन) E

नये न्याय में मूलनिगमन का विरोधी साध्य वाक्य है और मूल पक्ष वाक्य पक्ष वाक्य है। आकार प्रथम और सन्धि Celarent है जो प्रामाणिक है। नया निगमन मूल साध्य वाक्य का विरोधी है। परन्तु मूलसाध्य वाक्य सत्य

स्वीकृत है इसलिये नया निगमन असत्य सिद्ध होता है। इसका कारण नये साध्यवाक्य की असगतता है। इसलिये इसका विरोधी मूलनिगमन अवश्य सत्य है।

मूल सन्धि		रूपान्तरित सन्धि	
४. Bocardo			Barbara
O	कुछ M नही है P	सब S है P (मूल निगमन का विरोधी)	A
A	सब M है S	सब M है S (मूल पक्ष वाक्य)	A
O	∴कुछ S नही है P	∴सब M है P (नया निगमन)	A

नये न्याय मे मूल निगमन साध्य वाक्य है, मूल पक्षवाक्य पक्षवाक्य है। सन्धि Barbara है। नया निगमन मूल साध्य का विरोधी है, पर मूल साध्य वाक्य सत्य स्वीकृत है इसलिये नया निगमन असत्य है। नये न्याय का साध्य वाक्य मूल पक्षवाक्य है जो सत्य स्वीकृत है। इसलिये नये न्याय की असगतता से प्रगट होता है कि नये न्याय का साध्य वाक्य असत्य है। इसलिये इसका विरोधी मूल निगमन अवश्य सत्य है।

मूल सन्धि		रूपान्तरित सन्धि	
५. Felapton			Barbara
E	कोई M नही है P	सब S है P (मूल निगमन का विरोधी)	A
P	सब M है S	सब M है S (मूल पक्ष वाक्य)	A
O	∴कुछ S नही है P	∴सब M है P (नया निगमन)	A

पूर्ववत् हमे वारवारा मे नया न्याय मिलता है। नया निगमन मूल साध्य वाक्य का विपरीत है। जो सत्य स्वीकृत है। इसलिये इसका विपरीत नया निगमन असत्य है, परन्तु नये निगमन मे पक्षवाक्य मूल पक्षवाक्य है, जो सत्य स्वीकृत है। आकार वारवारा सन्धि मे प्रथम आकार है जो प्रामाणिक है। इसलिये नये निगमन की असत्यता यह दिखलाती है कि साध्य वाक्य असत्य है। इसके असत्य होने से इसका विपरीत अर्थात् मूल-निगमन अवश्य सत्य है।

मूल सन्धि	रूपान्तरित सन्धि	
६. Ferison		Darii
E कोई M नही है P	सव S है P (मूल निगमन का विरोधी)	A
I कुछ M है S	कुछ M है S (मूल पक्ष वाक्य)	I
O कुछ S नही है P	∴ कुछ M है P (नया निगमन)	I

नये न्याय मे साध्य वाक्य मूल निगमन का विरोधी है। मूल पक्ष वाक्य पक्षवाक्य है और न्याय प्रथम आकार की डेरिआई सन्धि में है। नया निगमन मूल पक्षवाक्य का विरोधी है। पर मूल पक्षवाक्य सत्य स्वीकृत है। इससे नया निगमन असत्य सिद्ध होता है, जिससे व्यक्त होता है कि नये निगमन का साध्यवाक्य असत्य है। इसके असत्य होने से इसका विरोधी, मूल निगमन सत्य सिद्ध होता है।

आकार ४

मूल सन्धि	रूपान्तरित सन्धि	
१ Bramantip		Celarent
A सव P है M	कोई S नही है P (मूल निगमन का विरोधी)	E
A सव M है S	सव M है S (मूल पक्षवाक्य)	A
I ∴ कुछ S है P	∴ कोई M नही है P (नया निगमन)	E
	(S हेतु है)	
	∴ कोई P नही है M (स्थानान्तर से)	E

नये न्याय में मूल निगमन का विरोधी साध्य वाक्य है। मूल पक्षवाक्य पक्ष वाक्य है। सन्धि सीलारेन्ट है। नये निगमन का स्थानान्तरित मूल साध्य वाक्य का विपरीत है। मूल साध्यवाक्य सत्य स्वीकृत है। इसलिये नया निगमन असत्य सिद्ध होता है। पक्षवाक्य मूल-पक्षवाक्य है जो सत्य स्वीकृत है। इसलिये इस स्थिति मे निगमन के असत्य होने से साध्य वाक्य असत्य सिद्ध होता है। जब साध्य वाक्य असत्य है तव इसका विरोधी मूल निगमन अवश्य सत्य है।

	मूल सन्धि	रूपान्तरित सन्धि	
२.	Camenes		Darii
A	सब p है M	सब P है M (मूल साध्य वाक्य)	A
E	कोई M नही है S	कुछ S है P (मूल निगमन का विरोधी)	I
E	कोई S नही है P	∴ कुछ S है M (नया निगमन)	I
		(P हेतु है।)	
		∴ कुछ M है S (स्थानान्तर से)	I

यदि निगमन "कोई S नही है P" (E) सत्य नही है तो इसका विरोधी "कुछ S है P" सत्य है। अब मूल साध्य वाक्य को साध्य वाक्य और "कुछ S है P" को पक्ष वाक्य बनाने से हमे डेरिआई मे नया निगमन मिलता है और जब हम नये निगमन का स्थानान्तर करते है, तब हमें "कुछ M है S" मिलता है। किन्तु यह वाक्य मूल पक्ष वाक्य का विरोधी है। मूल पक्ष वाक्य सत्य स्वीकृत है इसलिये, "कुछ M है S" असत्य है। "कुछ M है S" स्थानान्तरित है "कुछ S है M" का जो कि नया निगमन है। इसलिये यह भी असत्य है। इसकी असत्यता नये पक्ष वाक्य की असत्यता प्रमाणित करती है। नये पक्ष वाक्य के असत्य सिद्ध होने से उसका विरोधी मूल निगमन सत्य प्रमाणित होता है।

	मूल सन्धि	रूपान्तरित सन्धि	
३.	Dimaris		Celarent
I	कुछ P है M	कोई S नही है P (मूलनिगमन का विरोधी)	E
A	सब M है S	सब M है S (मूल पक्षवाक्य)	A
I	∴ कुछ S है P	∴ कोई M नही है P (नया निगमन)	E
		(S हेतु है)	
		∴ कोई P नही है M (स्थानान्तर से)	

इस न्याय में मूल निगमन का विरोधी साध्यवाक्य है और मूल पक्ष वाक्य पक्षवाक्य है। डेरिआई सन्धि है। नये निगमन को स्थानान्तरित करने से, 'कोई P नही है M" मिलता है जो कि मूल साध्य का विरोधी है परन्तु मूल

साध्य सत्य स्वीकृत है, इसलिये "कोई P नही है M" असत्य है। इसके असत्य सिद्ध होने से नया निगमन "कोई M नही है P" भी असत्य सिद्ध होता है। इससे निर्दिष्ट होता है कि नया साध्य वाक्य भी असत्य है। जब नया साध्यवाक्य असत्य है, तब इसका विरोधी मूल निगमन अवश्य सत्य है।

	मूल सन्धि	रूपान्तरित सन्धि	
४. Fesapo			Barbara
E	कोई P नही है M	सब S है P (मूल निगमन का विरोधी)	A
A	सब M है S	सब M है S (मूलपक्ष वाक्य)	A
D	∴ कुछ S नही है P	∴ सब M है P (नया निगमन)	A
		(S हेतु है)	
		∴ कुछ P है M (स्थानान्तर से)	I

नया न्याय बारबारा सन्धि मे है। मूल निगमन का विरोधी नये न्याय मे साध्य वाक्य है और मूल पक्ष वाक्य पक्ष वाक्य है। वाक्य, "कुछ P है M", जो कि नये न्याय के निगमन का स्थानान्तरित है मूलसाध्य वाक्य का विरोधी है। मूल साध्यवाक्य सत्य स्वीकृत है, इसलिये "कुछ P है M" असत्य सिद्ध होता है। इसके असत्य सिद्ध होने से नया निगमन भी असत्य सिद्ध होता है। इसकी असत्यता का कारण नये साध्य वाक्य की असत्यता है। जब नया साध्य वाक्य, "सब S है P" असत्य है तब इसका विरोधी मूल निगमन "कुछ S नही है P" अवश्य सत्य है।

	मूल सन्धि	रूपान्तरित सन्धि	
५. Ferison			Darii
E	कोई P नही है M	सब S है P (मूल निगमन काविरोधी)	A
I	कुछ M है S	कुछ M है S (मूलपक्ष वाक्य)	I
O	∴ कुछ S नही है P	∴ कुछ M है P (नया निगमन)	I
		(S हेतु है)	
		∴ कुछ P है M (स्थानान्तर से)	I

नया न्याय डेरियाई सन्धि में है। इसमे मूल निगमन का विरोधी साध्य-वाक्य और मूल पक्षवाक्य पक्षवाक्य है। पूर्ववत् सिद्ध किया जा सकता है कि नया निगमन असत्य है। नये निगमन की असत्यता का कारण साध्यवाक्य की असत्यता मे दिखाया जा सकता है। जब साध्य वाक्य, "सब S है P" असत्य है तब इसका विरोधी मूल निगमन, "कुछ S नही है P" अवश्य सत्य प्रमाणित होता है।

Fresison को Celarent मे भी रूपान्तरित कर सकते है। उस दशा मे साध्य वाक्य मूल साध्य वाक्य ही रहेगा और निगमन का विरोधी वाक्य पक्षवाक्य बनाया जायगा। जैसे—

कोई P नही है M	(मूल साध्य वाक्य)	E
सब S है P	(मूल निगमन का विरोधी)	A
∴ कोई S नही है M	(नया निगमन)	E
(P हेतु है)		
∴ कोई M नही है S.		

नये निगमन का स्थानान्तरित, "कोई M नही है S" मूल पक्ष वाक्य का विरोधी है परन्तु मूल पक्ष वाक्य सत्य स्वीकृत है इसलिये वाक्य, "कोई M नही है S" असत्य है। इसलिये इसका स्थानान्तरित नया निगमन "कोई S नही है M" भी असत्य है। इसलिये नया पक्षवाक्य भी असत्य है। जब नया पक्ष वाक्य असत्य है, तब इसका विरोधी मूल निगमन अवश्य सत्य है।

आकारो के रूपान्तर का तुलनात्मक निरीक्षण

उपर्युक्त व्याख्या से यह स्पष्ट हो जाता है कि जब द्वितीय आकार का वक्र रूपान्तर किया जाता है, तब मूल साध्य वाक्य को साध्य वाक्य बनाकर और मूल निगमन के विरोधी को पक्ष वाक्य बनाकर प्रथम आकार मे सगत न्याय प्राप्त किया जाता है। इसके प्रतिकूल तृतीय आकार के रूपान्तर मे मूल निगमन का विरोधी साध्य-वाक्य बनाया जाता है और मूल पक्ष वाक्य पक्षवाक्य बनाया जाता है। परन्तु चतुर्थ आकार की सन्धियो के रूपान्तर मे ऐसा कोई

निर्दिष्ट नियम नही है। कुछ सन्धियों के रूपान्तर मे मूल निगमन का विरोधी साध्य वाक्य बनता है तो कुछ अन्य के रूपान्तर मे मूल निगमन का विरोधी पक्ष वाक्य बनता है। जब मूल निगमन का विरोधी साध्यवाक्य बनता है तब मूल पक्षवाक्य पक्षवाक्य बनता है और जब मूल निगमन का विरोधी पक्षवाक्य बनता है, तब मूल निगमन का साध्यवाक्य साध्यवाक्य बनता है।

क्या रूपान्तर आवश्यक है ?

अरस्तू की दृष्टि में रूपान्तर नितान्त आवश्यक है।

अब हमे विचार करना है कि रूपान्तर (Reduction) आवश्यक है या अनावश्यक। अरस्तू के अनुसार रूपान्तर नितान्त आवश्यक है। अरस्तू के अनुसार प्रथम आकार ही पूर्ण आकार है, और उसकी सब सन्धियाँ प्रामाणिक हैं, क्योकि प्रथम आकार सीधे 'डिक्टम डि ओमनी एट नलो' पर आधारित है जो कि न्याय (Syllogism) का मूल भूत सिद्धान्त है। इसलिये द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ आकार की सन्धियो की प्रामाणिकता की जाँच करने के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि उनको प्रथम आकार की सन्धियो मे रूपान्तरित किया जाय। परन्तु कुछ नैयायिक कहते है, कि रूपान्तर आजकल नितान्त आवश्यक नही है।

क्या लैम्बर्ट के मूलभूत सिद्धान्तो ने रूपान्तर को अनावश्यक सिद्ध कर दिया है ?

उनका कहना है कि अरस्तू के समय मे न्याय के सामान्य नियम और भिन्न-भिन्न आकारो के विशेष नियम भली-भाँति नही बनाये गये थे। इसलिये रूपान्तर उस समय आवश्यक था। इस समय रूपान्तर की आवश्यकता नही है क्योकि लैम्बर्ट ने हर आकार के लिये मूल सिद्धान्त बना दिया है। उसने "डिक्टम डि ऑमनी एट नलो" को प्रथम आकार का प्रामाणिक नियम स्वीकार किया है। उसके अन्य सिद्धान्त नीचे दिये जाते है—

(२) डिक्टम डि डाइवरसो (Dictum de diverso) दूसरे आकार का सिद्धान्त है। इसके अनुसार, "यदि कोई गुण किसी वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति

के लिये प्रतिपादित या प्रतिवादित किया जाता है, तब जिस किसी व्यक्ति पर वह घटित नही होता, वह व्यक्ति उस वर्ग के अन्तर्गत नही आता।"

(३) डिक्टम डि एक्जेम्प्लो (Dictum de exemplo) तीसरे आकार का सिद्धान्त है। इसके अनुसार, "जब किसी वस्तु के विषय मे कहा जाता है कि यह अमुक वर्ग की है तब यदि उसके सम्बन्ध में किन्ही गुण का होना या न होना कहा जाय तो वे गुण उसी प्रकार वर्ग के कुछ व्यक्तियो के विषय मे भी प्रतिपादित या प्रतिवादित किये जाते हैं।"

(४) डिक्टम डि रेसीप्रोको (Dictum de reciproco) चौथे आकार का सिद्धान्त है। इसके अनुसार, "जिस किसी का विधेय स्वीकार किया जाता है, या पूर्णत अस्वीकार किया जाता है, वह स्वय भी अल्पत. उसी गुण से प्रतिपादित होता है, जो उस विधेय के लिये प्रतिपादित किया गया है; और जिस किसी का विधेय पूर्णत स्वीकृत है वह स्वय उससे प्रतिवादित होता है जिससे उसका विधेय प्रतिवादित रहता है।"*

रूपान्तर फिर भी आश्यक है।

देखने से ही पता लगता है, कि ऊपर जिन सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है वे बेडौल हैं। इनमे से न तो कोई स्पष्ट है, और न पर्याप्त। परन्तु डिक्टम डि ऑमनी एट नलो' स्पष्ट भी है और पर्याप्त भी है। इसलिये रूपान्तर आवश्यक है। ये सिद्धान्त बाद की सूझ के परिणाम है।

(i) द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ आकारके सिद्धान्त स्वयंसिद्ध नहीं है।

द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ आकार हेतु की स्थिति से निश्चित किये जाते है और तब ये सिद्धान्त इन आकारो की प्रकृति से खीचतान कर निकाले जाते है। ये स्वय सिद्ध नही, है। ये सिद्धान्त निष्प्रयोजन भी है, क्योकि ये इन आकारो की प्रामाणिकता की कसौटी नही प्रस्तुत कर सकते। यह कहा जा सकता है कि न्याय के सामान्य नियम और इन आकारोके विशेष नियम के द्वारा हम इन आकारो से प्रामाणिक

---

* Vide Welton, Vol. 1, P.P. 308-10.

सन्धियो को निश्चित कर सकते हैं; किन्तु इन नियमो से इन आकारो की प्रामाणिकता नही बतलाई जा सकती। आकार का विशेष नियम उस आकार पर ही आधारित रहता है। पहले आकार आता है तब नियम। सामान्य नियम केवल यह बता सकता है कि किस आकार मे मूलवाक्यो का कौन-सा युग्म प्रामाणिक है। यहाँ भी आकार पहले आते हैं और नियम पीछे। कोई आकार न्याय के सामान्य नियमो से नही निकाला जा सकता। चूँकि सन्धियो की प्रामाणिकता आकारो की प्रामाणिकता पर निर्भर करती है इसलिये अपूर्ण आकार की सन्धियो को उनकी प्रामाणिकता की जाँच करने के लिये पूर्ण आकार की सन्धियो में अवश्य रूपान्तरित करना चाहिये।

(ii) सिद्धान्तों में से प्रत्येक अपने आकार से निष्कर्ष रूप निकले हैं।

(iii) यदि सिद्धान्तो को प्रामाणिक मान भी लिया जाय तो भी ये आकारों की प्रामाणिकता नहीं बता सकते।

न्याय के नियमों से कोई आकार नहीं निकाला जा सकता।

कुछ लोग कहते हैं कि रूपान्तर का केवल यही उपयोग रह गया है कि उससे न्यायानुसार तर्क की एकता दिखाई जाय। यदि अपूर्ण आकार भी न्याय के आकार हैं, तो उन मे भी न्याय की वही मूलभूत प्रकृति विद्यमान रहती है क्योकि न्याय एक विशिष्ट प्रकार का अनुमान है। इसको दिखलाने के लिये रूपान्तरकी प्रक्रिया की आवश्यकता नही। परन्तु ऐसे कथन ठीक नही हैं रूपान्तर कोई वौद्धिक मनोविनोद नही है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, रूपान्तर अपूर्ण आकारो की प्रामाणिकता निश्चय करने के लिये आवश्यक है जिससे सन्धियो की प्रामाणिकता निर्दिष्ट की जा सके।

अध्याय १५ : अनुशीलन

१. न्याय एक व्यवहित अनुमान है" इस कथन का तात्पर्य समझाते हुए न्याय की प्रकृति की व्याख्या करो।

२. निम्नाकित पर टिप्पणी लिखो —

(अ) हेतु (ब) साध्य (स) पक्ष

३. 'डिक्टम डि ऑमनी एट नलो' क्या है ? इसकी व्याख्या करो।

४. दिखलाओ कि न्याय का गठन डिक्टम का अनुगमन करता है।

५ 'डिक्टम डि ऑमनी एट नलो' से जो मूलभूत विशेपताये प्रगट होती है, उनका वर्णन करो।

६. न्याय के सामान्य नियमो का वर्णन करो।

७ निम्नाकित के लिये प्रमाण दो —

(क) दो अल्प व्याप्तिवाचक मूलवाक्यो से कोई निगमन नही निकलता।

(ख) यदि दो मे एक मूलवाक्य निषेधवाचक है, तो निगमन निषेध-वाचक होता है।

(ग) अल्पव्याप्तिवाचक साध्यवाक्य और निषेधवाचक पक्षवाक्य से कोई निगमन नही निकलता।

(घ) जो पद मूलवाक्यो में पूर्ण विस्तृत नही है, उन्हे निगमन में भी पूर्ण विस्तृत नही होना चाहिये।

८. न्याय का आकार क्या है ? आकार कितने है ?

९. सन्धि (Mood) किसे कहते है ? सन्धियाँ सब कितनी है ?

१०. सन्धियो की प्रामाणिकता कैसे निश्चित की जाती है ? कितनी सन्धियाँ प्रामाणिक है ?

११. प्रथम आकार के विशेष नियमो की व्याख्या करो।

१२ द्वितीय और चतुर्थ आकार के प्रामाणिक सन्धियो का वर्णन करो।

१३ निम्नाकित के लिये प्रमाण दो —

(क) द्वितीय आकार मे दो मूल वाक्यो मे से एक निषेधवाचक होता है।

(ख) तृतीय आकार मे निगमन अल्प व्याप्ति वाचक होता है।

(ग) चतुर्थ आकार में यदि साध्यवाक्य विधिवाचक है तो पक्ष-वाक्य अवश्य सर्वव्याप्तिवाचक होता है।

(घ) चतुर्थ आकार में यदि कोई मूलवाक्य निषेधवाचक है, तो साध्यवाक्य अवश्य सर्वव्याप्तिवाचक होता है।

१४ चारो आकारों की तुलना करो। अन्य तीनों आकारों की सापेक्षिता में प्रथम आकार की विशेषताओं को निर्दिष्ट करो।

१५ मूलभूत, सशक्त और निःशक्त सन्धियों की व्याख्या करो।

१६ रूपान्तर क्या है? रूपान्तर के कितने प्रकार हैं?

१७ निम्नांकित सन्धियों का प्रथम आकार में सरल रूपान्तर करो :—
Camestres, Baroco, Felapton, Dimaris

१८ निम्नांकित सन्धियों का प्रथम आकार में वक्र रूपान्तर करो —
Cesare, Baroco, Darapti, Bocardo.

१९. रूपान्तर आवश्यक है या अनावश्यक?

२० चारो आकारों के मूल सिद्धान्त-सूत्रों का वर्णन करो। क्या तुम समझते हो कि ये सिद्धान्त स्वयंसिद्ध हैं।

अध्याय १६

न्यायात्मकतारहित अनुमितियाँ (Non-Syllogistic Inferences) & और उभयपाश (Dilemma)

१ "मिश्र अनुमान", एक भ्रामक धारणा (Mixed-syllogism a misconception) —आन्वीक्षिकी विद्या के कुछ विद्वान एक प्रकार का ऐसा भी अनुमान मानते हैं जो मिश्र कहा जाता है परन्तु ऐसे अनुमानों में दिए हुए वाक्यों और उनसे लब्ध निष्कर्ष में यथोचित सम्बन्ध नहीं रहता। हम पहले बता चुके हैं कि न्याय का स्वरूप जिन वाक्यों से बनता है वे चार निश्चित आकारों में अंकित रहते

है, निरपेक्ष रहते है, और A.E.I.O. की योजना मे अन्वित किये जा सकते है। परन्तु मिश्र-अनुमान के समर्थको का कहना है कि वह अनुमान जिसमे अन्वय-व्यतिरेकी निर्णय-वाक्य रहते है साधारण न्याय की योजना मे नही लाया जा सकता। इसलिये जिसमे ऐसा अनुमान हो उसे एक विशेष प्रकार का न्याय मानना चाहिए। परन्तु "मिश्र-अनुमान" जैसी कोई वस्तु वास्तव मे है नही। पहले यह निर्धारित कर दिया गया है कि न्याय मे केवल तीन ही पद होते है जो साध्य हेतु और पक्ष पद कहे जाते है। न्याय मे हेतु के अन्वय से साध्य और पक्ष पदो मे स्वीकारात्मक या निषेधात्मक सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। तथाकथित 'मिश्र-अनुमान' मे हम न तो स्पष्ट रूप से सदैव तीनो पदो को ही प्राप्त करते है न दो पदो का किसी तीसरे पद से मिलान ही पाते है। निम्न उदाहरणो से हमारा आशय स्पष्ट हो जाता है :—

(१) यदि अ है व तो स है द।
अ है व।
इसलिए स है द।

(२) यदि अ है व तो अ है स।
अ है व
इसलिए अ है स।

पहले मे चार पद है (अ, व, स और द)। दूसरे मे पद तो तीन ही है (अ, व, और स) परन्तु किन्ही दो पदो मे किसी तीसरे पद के माध्यम से कोई अन्वय स्थापित नही होता अथवा कोई निष्कर्ष लब्ध नही होता। इसलिए ऊपर की पद योजनाओ को हम न्याय नही कह सकते। "मिश्र अनुमान" अनुमान नाम को सार्थक नही करता। अस्तु तथाकथित "मिश्र अनुमान" किसी तरह का अनुमान नही माना जा सकता।

२. कुछ अनुमान निगमनात्मक (Deductive) तो है किन्तु न्यायात्मक (syllogistic) नही है

कुछ अनुमान ऐसे भी पाये जाते हैं जो निगमनात्मक तो कहे जा सकते हैं किन्तु न्यायात्मक नहीं कहे जा सकते। इनमें निष्कर्ष लाभ दो दिये हुए मूल

वाक्यो के आधार से ही होता है, परन्तु इनमे अक्सर चार पद पाये जाते हैं और कुछ मे यदि तीन पद हुए भी तो हेतु (मध्यपद) नही पाया जाता। दो मूल-वाक्यो से निष्कर्ष लब्ध होने के कारण ऐसे अनुमानो को निगमनात्मक तो कह सकते हैं परन्तु हेतु (मध्य पद) के अभाव के कारण इन्हें न्यायात्मक नही कह सकते ऐसे अनुमान तीन प्रकार के होते हैं—निरपेक्ष, सापेक्ष और वैकल्पिक।

(अ) निरपेक्ष (Categorical) अनुमान :—ऐसे अनुमान मे प्रत्येक मे चार पद होते हैं—और दो मूलवाक्यो के उद्देश्य और विधेय के अन्वय के आधार पर निष्कर्ष लब्ध होता है। जैसे :—

(१) अ है ब की दाहिनी ओर।
ब है स की दाहिनी ओर।
अ है स की दाहिनी ओर।

(२) अ है ब के बराबर।
ब है स के बराबर।
अ है स के बराबर॥

ये दो निरपेक्ष अनुमान हैं। इनमें प्रथम मे,, "अ", "ब की दाहिनी ओर", 'ब' और "स की दाहिनी ओर" चार पद हैं। और दो मूलवाक्य हैं जो उद्देश्य और विधेय पदो के अन्वय से लब्ध निष्कर्ष को नियमानुमोदित सिद्ध करते हैं। दूसरे मे भी "अ", "ब के बराबर", "ब" और "स के बराबर", चार पद हैं। पहले मूलवाक्य मे बराबरी का सम्बन्ध दिखलाया गया है, जब कि दूसरे मूलवाक्य में इस सम्बन्ध का निषेध किया गया है। दोनो मूलवाक्यो के सम्मिलित योग से निष्कर्ष लब्ध हुआ है। परन्तु ऐसे अनुमान मे हेतु (मध्य पद) नही होता इसलिए न कोई पद साध्य (गुरु) न कोई पक्ष (लघु) कहा जाता है। इसलिए दिए हुए वाक्यो मे न एक को साध्यवाक्य (Major Premise) न अन्य को पक्षवाक्य (Minor Premise) कहने की आवश्यकता पडती है। इन वाक्यों का स्थान परिवर्तन करने पर भी निष्कर्ष अक्षत बना रहता है। स्मरण रहे कि ऐसे अनुमान के आवयविक (Constituent) वाक्य सदैव सम्बन्धात्मक होते हैं।

(ब) सापेक्ष (Hypothetic) न्यायात्मकता रहित अनुमान :— इस प्रकार के अनुमान मे दो मूलवाक्य रहते हैं। पहला मूलवाक्य सापेक्ष रहता है और दूसरा निरपेक्ष। निष्कर्ष भी निरपेक्ष रहता है। इन अनुमानो मे मूलवाक्यो का क्रम परिवर्तित नही किया जा सकता। पहला मूलवाक्य सापेक्ष होता है और साध्यवाक्य कहा जा सकता है। दूसरा वाक्य निरपेक्ष होता है और वह पक्षवाक्य कहा जा सकता है। दूसरा निरपेक्ष वाक्य या तो पहले के पूर्वांश (antecedent) को स्वीकार करता है या उसके उत्तरांश (Consequent) का निषेध करता है। अस्तु सापेक्ष तर्क दो प्रकार का होता है। एक मे पूर्वांश की स्वीकृति रहती है। दूसरे मे उत्तरांश का निषेध। पहला तर्क सृजनात्मक (Constructive) और दूसरा निषेधात्मक (Destructive) कहा जाता है। इस तर्क के नियम वे ही है जिनकी व्याख्या सापेक्ष वाक्य के सम्बन्ध मे की गई है अर्थात् —

(१) पूर्वांश की स्वीकृति
(२) उत्तरांश का निषेध

पहले नियम का तात्पर्य यह है कि पूर्वांश की स्वीकृति से हम उत्तरांश का समर्थन कर सकते हैं किन्तु विपरीत नही। अर्थात् पूर्वांश को स्वीकार करके हम उत्तरांश का तो समर्थन कर सकते है किन्तु उत्तरांश को स्वीकार करके हम पूर्वांश का समर्थन नही कर सकते। दूसरे नियम का तात्पर्य यह है कि उत्तरांश का निषेध करके हम पूर्वांश का निषेध कर सकते है किन्तु विपरीत नही अर्थात् उत्तरांश को अस्वीकार करके हम पूर्वांश को अस्वीकार कर सकते हैं किन्तु पूर्वांश को अस्वीकार करके हम उत्तरांश को भी अस्वीकार नही कर सकते।

१. सृजनात्मक (Modus Ponens)

सृजनात्मक सापेक्ष तर्क मे हम पूर्वांश को स्वीकार करके उत्तरांश का समर्थन करते है। इसलिए इसका रूप स्वीकारात्मक (Modus Ponens) होता है।

स्वीकारात्मक	यदि अ है ब तो अ है स।	यदि घी को आग पर रख सकते है तो वह पिघलता है।

अ है ब।	घी आग पर रक्खा जाता है।
∴ अ है स।	∴ घी पिघलता है।
यदि अ है ब तो स है द।	जब सूर्योदय होता है तो अँधेरा दूर होता है।
अ है ब	सूर्योदय हो रहा है।
अ है स	∴ अँधेरा दूर हो रहा है।

निषेधात्मक (Modus Tollens)

निषेधात्मक सापेक्ष तर्क मे उत्तराश का निषेध करके पूर्वांश को अस्वीकार किया जाता है। जैसे —

(१) यदि अ है ब तो अ है स।
अ नही है स।
∴ अ नही है ब।
यदि वर्षा होती है तो सड़के तर होती है।
सडके तर नही है।
∴ वर्षा नही हो रही है।

(२) यदि अ है ब तो स है द।
स नही है द।
∴ अ नही है ब।
यदि कडाही मे जल उबलता है तो बुल्ले फेंकता है।
कडाही का जल बुल्ले नही फेंक रहा है।
∴ कडाही का जल उबल नही रहा है।

जब हम पहला नियम भग करते है तब तर्क में उत्तराश के समर्थन का दोष आता है और जब दूसरा नियम तोडते है तो पूर्वांश के निषेध का दोष होता है।

सापेक्ष तर्क के नियमो की व्याख्या

यदि हम सापेक्ष तर्क के नियमो की भली भांति जाच करे तो हम पायेंगे कि वे मनमाने नही है। वास्तव में वे कार्य-कारण के सम्बन्ध से आविर्भूत हुए है।

कार्य-कारण सम्बन्ध आदि का अनुवीक्षण उपगम-तर्क (Inductive Logic) का विषय है। इसलिए यहाँ संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि कार्य-कारण-सम्बन्ध अथवा अन्विति एक आवश्यक सम्बन्ध है

विपरीत सत्य नही हो सकता।

क्योंकि कारण की उपस्थिति अवश्य कार्य की उपस्थिति लाती है। जब वर्षा होती है तो सडकें अवश्य तर होती हैं। अर्थात् जब हम यह मानते हैं कि वर्षा होती है तब हमको यह मानना पडता है कि सडकें भीगती हैं। किन्तु यदि हम यह कहें कि सडकें तर हैं तो इसके बल पर यह नही कहते कि वर्षा हो रही है। सडकों के तर होने की हर हालत में वर्षा ही कारण नही हो सकती। सडकें धुलाई से भी तर हो सकती हैं। कभी-कभी अन्य कारणों से भी तर हो सकती हैं। जैसे कुहासा, ओस आदि के पडने से।

पानी जब उबलता है तब वह बुल्ले अवश्य फेंकता है। किन्तु अन्य कारणों से भी जल से बुल्ले उठ सकते हैं। जब पानी में नली डालकर फूंका जाता है तब भी बुल्ले उठते हैं। इसलिए हम प्राय देखते हैं कि भिन्न-भिन्न अवसरों पर भिन्न-भिन्न कारणों का एक ही परिणाम होता है। इसलिए प्रत्यक्ष ज्ञान की अनुपस्थिति में किस परिणाम का कौन सा कारण है यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता। यदि कारण का प्रत्यक्ष ज्ञान है तो अनुमान की आवश्यकता नहीं। अस्तु जब एक ही कार्य के कई कारण हो सकते हैं तब हम कार्य के अस्तित्व के आधार पर कारण के अस्तित्व को स्वीकार नही कर सकते।

किन्तु हम कारण का समर्थन करके कार्य का समर्थन कर सकते हैं। जब हम यह जानते हैं कि अमुक कार्य का अमुक कारण है और चूंकि कार्य-कारण का आवश्यक सम्बन्ध होता है (यानी कारण के बिना कार्य नहीं हो सकता) तब हम यह कह सकते हैं कि कारण उपस्थित है तो कार्य अवश्य उपस्थित होगा अर्थात् पूर्वांग (कारण) का समर्थन करके हम उत्तरांश (कार्य) का समर्थन कर सकते हैं और कार्य-कारण के इसी नाते के आधार पर हम इस सिद्धान्त को भी अपना सकते हैं कि यदि उत्तरांश का निषेध किया जाय तो पूर्वांश का भी निषेध किया जा सकता है। कारण सदैव कार्य का अग्रगामी होता है और यदि कार्य

विद्यमान नहीं है तो यह जान लेना चाहिए कि कारण भी विद्यमान नहीं है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि जब उत्तरांश का निषेध होगा तो पूर्वांश का निषेध अपने आप हो जायगा। किन्तु हम ऐसा नहीं कह सकते कि पूर्वांश का निषेध है तो उत्तरांश का भी निषेध होगा। कार्य के निषेध से तो कारण का निषेध हो जाता है किन्तु कारण के निषेध से कार्य का भी निषेध नहीं माना जा सकता क्योंकि किसी कार्य का सदैव एक ही कारण नहीं होता। जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, एक कार्य के भिन्न-भिन्न अवसरों के अनुसार भिन्न-भिन्न कारण हो सकते हैं। इसलिए कार्य के ज्ञात कारणों में से अगर किसी कारण का अभाव हो तो उसका यह अर्थ नहीं हो सकता कि कार्य का भी अभाव है। किसी अन्य कारण की वजह से कार्य मौजूद हो सकता है। इसी वजह से हम पूर्वांश (कारण) का निषेध करके उत्तरांश (कार्य) का निषेध नहीं कर सकते।

अब तो यह स्पष्ट हो गया होगा कि कार्य-कारण सम्बन्ध (Causal relation) अथवा एक कार्य के अनेक कारण (Plurality of Causes) की धारणा सापेक्ष तर्क का आधार है।

सापेक्ष तर्क और न्याय
(एक सावधानी)

जिस अनुमान में साध्यवाक्य (Universal Premise) सापेक्ष रूप में रहता है, उसे भ्रमवश अकसर सापेक्ष तर्क मान लिया जाता है। जैसे :—

यदि कोई वस्तु सुन्दर भी है और दुर्लभ भी तो वह कीमती होती है।
हीरा सुन्दर होता है और दुर्लभ होता है।
∴ हीरा कीमती होता है।

ऐसा दिखाई देता है कि यह अनुमिति सापेक्ष है। इसमें पहला वाक्य सापेक्ष है और दूसरा निरपेक्ष। किन्तु इन दोनों की मौजूदगी ही किसी तर्क को सापेक्ष नहीं बना सकती। जब तक दोनों मूल वाक्यों के मध्य ऐसा सम्बन्ध नहीं कि पहला वाक्य दूसरे के पूर्वांश का समर्थन करे या उत्तरांश का निषेध करे, तब तक कोई तर्क सापेक्ष नहीं कहा जा सकता। ऊपर के

उदाहरण में "कोई वस्तु" और "हीरा" पर्यायी नही कहे जा सकते अस्तु दूसरा वाक्य पहले वाक्य के पूर्वांश का समर्थन नही करता। इसलिये ऊपर दिये हुये वाक्यो मे वह सम्बन्ध नही पाया जाता जो सापेक्ष तक के लिये अनिवार्य है।

दूसरी बात यह है कि साध्य वाक्य, "सब सुन्दर और दुर्लभ चीजे कीमती होती है" व्यर्थ सापेक्ष रूप में रक्खा गया है। यह वाक्य दूसरे वाक्य के साथ मिलकर जो न्याय बनाता है, वह बारबारा (Barbara) आकार का न्याय कहा जाता है न कि सापेक्ष तर्क।

(स) न्यायात्मकतारहित वैकल्पिक अनुमान (Non-syllogistic Hypothetical inferences)

अब हम न्यायात्मकता रहित उन अनुमानो पर विचार करेगे जिन्हे वैकल्पिक अनुमान कहते है। वैकल्पिक तर्क का आकार वैकल्पिक वाक्य पर आधारित रहता है। वैकल्पिक वाक्य मे उद्देश्य (Subject) के सम्बन्ध मे कुछ विकल्प प्रस्तावित रहते है जो 'आया', 'या' और 'अथवा' आदि के द्वारा व्यक्त किये जाते है। कहने की आवश्यकता नही कि प्रस्तावित दो विकल्पो मे से एक ही उद्देश्य का विधेय होता है। यदि दोनो विधेय हुये तो वह वाक्य वैकल्पिक नही होता क्योकि दोनो विकल्प परस्पर स्पर्श नही करते। जैसे—"अ है ब या स।" यहाँ पर 'अ' उद्देश्य 'ब' या 'स' दो विकल्पो मे से एक ही हो सकता है, दोनों नही। परन्तु इन दो मे से एक वह अवश्य है। ऐसा नही हो सकता कि वह दो में से एक भी न हो। इसलिये विकल्पो मे से जब एक का निषेध होता है, तो दूसरे का समर्थन भी होता है। अस्तु इस व्याख्या से दो नियम निर्धारित किये जा सकते है :—

(अ) दो विकल्पो मे से यदि एक का समर्थन किया जाता है, तो दूसरे का निषेध होता है।

(ब) दो विकल्पो में से यदि एक का निषेध किया जाता है, तो दूसरे का समर्थन होता है। इसलिये वैकल्पिक तर्क के दो रूप माने गये है—

(अ) (Modus Ponendo Tollens) समर्थन से निषेध।

(ब) (Modus Tollendo Ponens) निषेधसे समर्थन ।

पहले में हम समर्थन से निषेध और दूसरे मे निषेध से समर्थन करते हैं। जैसे—

समर्थन से निषेध (Modus Ponendo Tollens)

(क) अ है ब या स। (ख) अ है ब या स।
अ है ब। अ है स।
∴ अ नही है ब। ∴ अ नहीं है स।

निषेध से समर्थन (Modus Tollendo Ponens)

(क) अ है ब या स। (ख) अ है ब या स।
अ नही है ब। अ नहीं है स।
∴ अ है स। ∴ अ है ब।

दो से अधिक विकल्पयुक्त अनुमितियाँ

ऐसी अनुमितियो के निष्कर्ष वैकल्पिक और निरपेक्ष दोनो ही होते है। यदि वैकल्पिक वाक्य में दो से अधिक विकल्प हों, तो जब हम एक का निषेध करते है, तब बाकी का समर्थन करते है। ऐसी दशा मे निष्कर्ष एक वैकल्पिक वाक्य होता है और उद्देश्य के लिये दो या दो से अधिक विधेय बतलाता है। जैसे—

अ है ब या स या द।
अ नही है ब।
∴ अ है स या द।

परन्तु जब हम किसी एक विकल्प का समर्थन करते है, तब निष्कर्ष निरपेक्ष होता है, सापेक्ष नही। जैसे—

अ है ब या स या द।
अ है ब।
∴ अ न तो स है न द।

यहाँ पर निष्कर्ष, अ न तो स है न द, यौगिक निरपेक्ष वाक्य है। ध्यान

रखना चाहिये कि जब दूसरा वाक्य एक विकल्प को छोड शेष का निषेध करता है, तब निष्कर्ष निरपेक्ष वाक्य होता है।

नीचे का उदाहरण इस कथन को स्पष्ट कर देता है।

अ है ब या स या द।
अ नहीं है ब न स।
∴ अ है द।

मूर्त्त उदाहरण (Concrete Examples)

१. समर्थन से निषेध (Modus Ponendo Tollens)

(१) वह या तो ईमानदार है या बेईमान।
वह ईमानदार है।
∴ वह बेईमान नही है।

(२) वह या तो ईमानदार है या बेईमान।
वह बेईमान है।
∴ वह ईमानदार नही है।

२. निषेध से समर्थन (Modus Tollendo Ponens)

(१) रेलवे का सिगनल लाल है या हरा।
रेलवे का सिगनल लाल नही है।
∴ रेलवे का सिगनल हरा है।

(२) रेलवे का सिगनल लाल है या हरा या पीला।
रेलवे का सिगनल न तो लाल है न हरा।
∴ रेलवे का सिगनल पीला है।

(३) रेलवे का सिगनल लाल है या हरा या पीला।
रेलवे का सिगनल लाल नही है।
∴ रेलवे का सिगनल या तो हरा है या पीला।

३. उभयपाश (Dilema)

उभयपाश (Dilema) वह तर्क है, जिसमे सापेक्ष और वैकल्पिक तर्कों का योग रहता है। यदि हम साध्य (बृहदानुमापक) वाक्य और पक्ष (अल्पानुमापक) वाक्य का केवल साधारण अर्थ ले, अर्थात् उन्हें क्रमशः पूर्ववाक्य और परवाक्य कहे, तो कह सकते हैं, कि उभयपाश मे एक सापेक्ष (Hypothetical) पूर्ववाक्य और एक वैकल्पिक (Disjunctive) परवाक्य रहता है। निष्कर्ष या तो निरपेक्षवाक्य होता है या वैकल्पिक। यौगिक सापेक्ष वाक्य मे या तो दो पूर्वांश रहते है और एक उत्तरांश या दो उत्तरांश और एक पूर्वांश।

उभयपाश वह तर्क है जिसमें सापेक्ष और वैकल्पिक तर्कों का योग रहता है।

वितर्क (Argument) वह युक्तिपूर्ण तर्क है जो स्वपक्ष समर्थन के लिये किया जाता है।

वैकल्पिक परवाक्य मे या तो यौगिक सापेक्ष का पूर्वांश या निषेधात्मक उत्तरांश का विकल्प रहता है। उस समय उभयपाश अस्तित्वसूचक या विधिवाचक कहा जाता है जब पूर्वांश के समर्थन का पक्ष वाक्य मे विकल्प रहता है और उस समय निषेध वाचक कहा जाता है जब उत्तरांश के निषेध का पक्षवाक्य में विकल्प रहता है। यदि निगमन या निष्कर्ष निरपेक्ष है, तो उभयपाश सरल कहा जाता है और यदि निष्कर्ष वैकल्पिक है, तो उभयपाश मिश्र कहा जाता है। इस प्रकार उभयपाश के चार रूप हुए—

उभयपाश के भेद—विधिवाचक और निषेधवाचक।

(१) सरल विधिवाचक (Simple Constructive)

(२) मिश्र विधिवाचक (Complex Constructive)

(३) सरल निषेधवाचक (Simple Destructive)

(४) मिश्र निषेधवाचक (Complex Destructive)

१. सरल विधिवाचक या अस्तित्वात्मक उभयपाश
(Simple Constructive)

जिस उभयपाश का निष्कर्ष निरपेक्ष होता है वह सरल उभयपाश होता है।

यदि अ है ब तो स है द और यदि इ है फ तो स है द,
या अ है ब, या इ है फ,
∴ स है द।

यदि तुम्हारे भाग्य मे सफलता है, तो तुम्हे परिश्रम करने की आश्यकता नही, और यदि तुम्हारे भाग्य मे असफलता है, तो तुम्हे परिश्रम करने की आवश्यकता नही।

तुम्हारे भाग्य मे या तो सफलता है या असफलता है;
∴ तुम्हे परिश्रम करने की आवश्यकता नही है।

यह उभयपाश सरल (Simple) है, क्योंकि इसका निष्कर्ष निरपेक्ष है और विधिवाचक (Constructive) है, क्योकि इसके पक्षवाक्य मे सापेक्ष साध्य वाक्य के पूर्वांश का विकल्प है। स्मरण रखना चाहिये कि सापेक्ष साध्य वाक्य में दो पृथक पूर्वांश होते है, जब कि उत्तरांश एक ही होता है। इसलिये सरल विधिवाचक या सरल अस्तित्व सूचक (Simpie Constructive) उंठयपाश (Dilema) में दो पृथक पूर्वांश होते है, और एक उत्तरांश होता है।

२. मिश्र अस्तित्वात्मक या मिश्र विधिवाचक उभयपाश
(Complex Constructive)

वह उभयपाश जिसका निष्कर्ष वैकल्पिक होता है मिश्र उभयपाश कहा जाता है।

यदि अ है ब, तो स है द और यदि इ है फ, तो ग है ह।
अ है ब या इ है फ
∴ स है द या ग है ह।

यदि तुम युद्ध करते हो तो तुमको घोर कष्ट सहना पडता है और यदि

तुम युद्ध नही करते हो तो तुम परास्त होते हो और अत्यधिक अपमानित होते हो।

तुम या तो युद्ध करते हो या नही करते हो,

∴ या तो तुम घोर कष्ट सहते हो या परास्त होते हो और अत्यधिक अपमानित होते हो।

यह उभयपाश मिश्र है, क्योकि निष्कर्ष वैकल्पिक है और अस्तित्वात्मक है क्योकि निरपेक्ष साध्य (वृहदनुमापक) वाक्य के पूर्वांशो का वैकल्पिक पक्ष (अल्पानुमापक) वाक्य में विकल्प है। इसमे दो पूर्वांश और दो ही उत्तरांश भी है।

३. सरल निषेधात्मक उभयपाश
(Simple Destructive Dilema)

यदि अ है व तो स है द, और यदि अ है व तो इ है फ

या स नही है द, या इ नही है फ

∴ अ नहीं है व

यदि तुम किसी कालेज में भर्ती होते हो तो तुम्हे फीस देनी पड़ेगी, और यदि तुम कालेज मे भर्ती होते हो तो तुम्हें गाडी-भाडा देना होगा।

या तुम फीस नही दे सकते या गाड़ी-भाडा नही चुका सकते।

∴ तुम कालेज में भर्ती नही हो सकते।

यहाँ पर दो उत्तरांश है और एक पूर्वांश है। पक्ष (अल्पानुमापक) वाक्य में पूर्वांशो के निषेध का विकल्प है और निष्कर्ष निरपेक्ष है यह उभयपाश सरल है क्योकि इसका निष्कर्ष निरपेक्ष है और निषेधात्मक है क्योकि पक्ष (अल्पानुमापक) वाक्य में सापेक्ष वाक्य के उत्तरांश के निषेध का विकल्प है और निष्कर्ष में पूर्वांश का निषेध है।

४. मिश्र निषेधात्मक उभयपाश
(Complex Destructive Dilema)

यदि अ है व तो स है द, और यदि इ है फ तो ग है द।

स नहीं है द, या ग नहीं है ह ।

∴ अ नहीं है व, या इ नहीं है फ

यदि वह चतुर है तो अपनी भूल देख लेगा और यदि वह निष्पक्ष है, तो उसे स्वीकार करेगा ।

या तो वह अपनी भूल देखता नही या उसे स्वीकार नही करता ।

∴ या तो वह चतुर नही या निष्पक्ष नही है ।

ऊपर के उभयपाश मे प्रत्येक वाक्य में दो पूर्वांश है और दो उत्तरांश है । पक्ष (अल्पानुमापक) वाक्य मे उत्तरांशो के निषेध का विकल्प है और निष्कर्ष वैकल्पिक है । यह उभयपाश मिश्र है क्योंकि निष्कर्ष वैकल्पिक है और यह निषेधात्मक है क्योकि पक्ष (अल्पानुमापक) वाक्य में उत्तरांशो के निशेध का विकल्प है और निष्कर्ष में पूर्वांशो के निषेध का विकल्प है ।

ऊपर की व्याख्या से यह स्पष्ट हो जाता है कि उभयपाश को निगमनात्मक न्याय (Deductive inference) का रूप नही कहा जा सकता यद्यपि इसमें न्याय का कुछ अश अवश्य सम्मिलित है । निगमनात्मक न्याय में हम दो मूलवाक्यो के द्वारा किसी निष्कर्ष पर पहुँचते है । उभयपाश मे किसी अभीष्ट उद्देश्य को दृष्टिगत रख कर दो वाक्यो की योजना की जाती है जिनमे पहला वाक्य सापेक्ष रहता है और दूसरा वैकल्पिक, जिनसे प्रतिद्वन्द्वी को ऐसी स्थिति स्वीकार करने के लिये वाध्य किया जाता है जो उसके लिये बहुत ही अप्रिय होती है । तर्क का यह रूप बौद्धिक चमत्कार (Art of rhetoric) द्वारा आतक भले ही जमा सकता है किन्तु यह न्याय की संज्ञा नही पा सकता । बौद्धिक तर्क और निगमन दोनो पृथक् चीजे है, यद्यपि इन दोनो मे गहरा सम्बन्ध है ।

उभयपाश वह तर्क है जिसमें एक सापेक्ष वाक्य और एक वैकल्पिक वाक्य सम्मिलित रहते है । हर हालत में इसे न्याय या निगमन नही कह सकते ।

बौद्धिक तर्क मे एक से अधिक निगमनात्मक निष्कर्षो का योग होता है या उसमें एक दूसरे से जुड़े हुये शृखलाबद्ध निगमनात्मक निष्कर्ष रहते हैं ।

और यदि मैं न्याय विरुद्ध कहूँगा तो मनुष्य मुझे प्यार करेंगे
∴ मैं प्यार का पात्र बनूँगा।'

यदि अ है ब तो स है द; और यदि इ है फ तो ग है ह
अ है ब, या इ है फ
∴ स है द, या ग है ह।

उलटने पर

यदि अ है ब तो ग नही है ह; और यदि इ है फ तो स नही है द।
अ है ब, या इ है फ
∴ स नही है द, या ग नही है ह।

२. उभयपाशो के बीच मे से निकलना
(To escape betwee the horns of a Dilema)

यदि अ है ब तो स है द और यदि इ है फ तो स है द।
अ है ब, या इ है फ
स है द

यहाँ पर हम दिखला सकते है कि पक्ष (अल्पानुमापक) वाक्य में वैकल्पिक पद न तो एक दूसरे का बहिष्कार ही करते है और न तो विषय का सर्वांगीण प्रतिपादन ही करते है

यदि वह बुद्धिमान है तो अपनी भूल समझ जायगा,
और यदि वह निष्पक्ष है तो वह अपनी भूल स्वीकार कर लेगा,
या तो वह अपनी भूल देखता ही नही या स्वीकार नही करता।
या तो वह बुद्धिमान नही है या वह निष्पक्ष नही है।

इस उभयपाश में पक्ष (अल्पानुमापक) वाक्य के विकल्प सर्वअग स्पर्श (exhaustive) नही करते है। इनके अतिरिक्त एक तीसरे विकल्प की भी कल्पना बडी आसानी से की जा सकती है, यानी वह अपनी भूल समझता है पर उसे स्वीकार नही करता। यदि पक्ष (अल्पानुमापक) वाक्य मे इतना और जोड़ दिया जाय तो ऊपर कथित निष्कर्ष नही निकाला जा सकता और

हम उभयपाश के दोनो पाशो के मध्य से निकल जाते है। इसके अतिरिक्त यह भी हो सकता है कि वह न तो अपनी भूल देखता है न स्वीकार ही करता है, या वह अपनी भूल इसलिये स्वीकार नही करता कि वह उसे देखता ही नही। अस्तु हम देखते है कि ऊपर कथित उभयपाश दोनो प्रकार से सदोप है।

३ उभयपाश के पाशों का खण्डन
(To take a Dilema by the horns)

यदि यह दिखा दिया जाय कि यौगिक सापेक्ष साध्य (वृहदनुमापक) वाक्य मे उत्तराश पूर्वांगो पर आधारित नही है तो पाशो का खडन होता है। इस उभयपाश मे :

यदि तुम किसी कालेज मे भर्ती होगे तो फीस देनी पडेगी और यदि तुम किसी कालेज में भर्ती होते हो तो तुम्हें गाडी-भाडा देना होगा। या तो तुम फीस (शुल्क) नही दे सकते या गाडी-भाडा नही दे सकते। इसलिये तुम कालेज में भर्ती नही हो सकते।

साध्य (वृहदानुमापक) वाक्य में यह आवश्यक नहीं है कि पूर्वांग उत्तराशो के आधार हो। कालेज मे निःशुल्क भी भर्ती हुआ जा सकता है और बिना गाडी भाडा दिये, पैदल, भी जाया जा सकता है। अस्तु यदि हम यह दिखला सके कि उत्तराश पूर्वांशो पर आधारित नही है तो पाशो का खडन करके उभय पाश को मिथ्या प्रमाणित कर सकते है।

४ उभयपाश के एक पाश का खण्डन
(To take a Dilema by one of the horns)

जब यह दिखा दिया जाता है कि उत्तराशो मे से एक उत्तरांश अपने पूर्वांश पर आधारित नही है तो उभयपाश के एक पाश का खडन होता है। जैसे —

यदि तुम्हारे भाग्य मे मौजूदा बीमारी से चगा होना बदा है तो डाक्टर को बुलाना बेकार है। और यदि तुम्हारे भाग्य मे मौजूदा बीमारी से चगा होना नही बदा है तो डाक्टर को बुलाना बेकार है। या तो तुम मौजूदा बीमारी से चगा होगे या चगा नही होगे। इसलिये डाक्टर को बुलाना बेकार है।

यहाँ पर सापेक्ष साध्य (वृहदानुमापक) वाक्य में उत्तराश "डाक्टर का बुलाना वेकार है", पूर्वाश "भाग्य मे चगा होना वदा है" पर आधारित नहीं हे। भाग्य और डाक्टर दोनो चगा करने मे सहायक हो सकते है। इसलिये यहाँ पर एक पाश का खडन हो जाता है।

अध्याय १६ : अनुशीलन

१. 'मिश्र-न्याय' की धारणा की व्याख्या करो। क्या यह भ्रामक धारणा है ?
२. न्यायात्मक अनुमानो से भिन्न विविध प्रकार के अन्य अनुमानो की उदाहरण देकर व्याख्या करो।
३. (Modus Ponens) और (Modus Tollens) की व्याख्या करो।
४. कतिपय नैयायिको के मतानुसार सापेक्ष तर्क के नियम कारण-सम्बन्ध और वहु-कारण पर आधारित है। क्या तुम इससे सहमत हो ?
५. सापेक्ष तर्क और न्यायात्मक तर्क मे क्या अन्तर है ?
६. मूर्त्त उदाहरण देकर वैकल्पिक अनुमानो की व्याख्या करो।
७. उभयपाश (Dilema) क्या है ? इसके भिन्न-भिन्न रूपो का वर्णन करो।
८. उभयपाश का खडन किस प्रकार किया जाता है। उदाहरण देकर समझाओ।

अध्याय १७

लुप्तावयवतर्क, श्रेणी-न्याय, माला-न्याय और सहेतुकावयवानुमान

(Enthymeme, trains of syllogisms, Sorites and Epicheirema)

१. लुप्तावयवतर्क (Enthymeme)

अरस्तू (Aristotle) के अनुसार लुप्तावयवतर्क (Enthymeme) तर्क का वह रूप है जो एक सभावित निष्कर्ष को सिद्ध करता है। आधुनिक प्रचलन में लुप्तावयवतर्क (Enthymeme) को न्याय (Syllogism) का भाषा में सक्षिप्तीकरण माना जाता है जिसमे किसी अवयव (Constituent) वाक्य साध्यावयव (Major Premise), पक्षावयव (Minor Premise), या निष्कर्ष का लोप रहता है। लुप्तावयव न्याय का सक्षिप्तीकरण माना गया है, क्योकि इसमे एक आवश्यक अवयव का अभाव रहता है, किन्तु वास्तव मे एक लुप्तावयव तर्क (Enthymeme) को अधूरा न्याय (Syllogism) नही कह सकते। अधूरा न्याय न्याय ही नही हो सकता। न्याय अपने नाम को तभी सार्थक वना सकता है जव उससे तीनो वाक्य हो, अर्थात् साध्य, पक्ष और निष्कर्ष हो। फिर भी जव हम न्यायात्मक निगमन को भाषा में व्यक्त करते है तव हम सदैव तीनो वाक्यो को व्यक्त नही करते। संक्षेप के आग्रह के कारण हम कभी-साध्य वाक्य (Major Premise) कभी पक्षवाक्य (Minor Premise) और कभी निष्कर्ष को छोड देते है। न्याय का ऐसा ही व्यक्तीकरण लुप्तावयव (Enthymeme) तर्क कहलाता है, इसलिये तीन प्रकार के लुप्तावयव तर्क हो सकते है।

लुप्तावयव (Enthymeme)

साध्यवाक्य का लोप

प्रथम क्रम

फलातू (Plato) एक दार्शनिक है।

∴ फलातू एक मनुष्य है।

यहाँ पर साध्यवाक्य "सब दार्शनिक मनुष्य है" लुप्त है यद्यपि न्याय में यह वाक्य क्रियाशील है।

पक्षवाक्य का लोप

द्वितीय क्रम

जहाँ कही धुआँ होता है वहाँ आग होती है।

∴ सामने के पहाड मे आग है।

यहाँ पर पक्ष वाक्य, "सामने के पहाड मे धुआँ उठ रहा है" लुप्त है।

निष्कर्ष का लोप

तृतीय क्रम.

सब चतुर पुरुष जीवन मे सफल होते है।

ब्राउन एक चतुर पुरुष है।

यहाँ पर निष्कर्ष ब्राउन जीवन मे सफल है" लुप्त है, गोकि न्याय मे निष्कर्ष मूल वाक्यो (Premises) द्वारा ही निकाला जाता है।

२. श्रेणी-न्याय (Train of Syllogism)

जब कई न्याय मिले रहते है, तब वह तर्क श्रेणी-न्याय कहा जाता है। इसमे एक का निष्कर्ष दूसरे का मूलवाक्य बन जाता है और सयुक्त न्याय या श्रेणी-न्याय एक निश्चित निष्कर्ष पर समाप्त होता है। श्रेणी-न्याय को अकसर बहु-न्याय (Poly-syllogism) भी कहा जाता है।

श्रेणी-न्याय में वह न्याय जिसका निष्कर्ष दूसरे न्याय का साध्य या वाक्य बनता है, पूर्वन्याय (Pro-syllogism) कहलाता है और वह न्याय जिसका साध्य वाक्य प्रथम पूर्व न्याय का निष्कर्ष होता है, पर-न्याय (Epi-syllogism) कहा जाता है। पूर्व-न्याय और पर-न्याय सापेक्ष पद है।

एक ही न्याय यदि एक का पूर्व न्याय हो सकता है, तो दूसरे का परन्याय हो सकता है। ऐसा हो सकता है कि किसी न्याय का

न्याय—पूर्व और पर

साध्य वाक्य पूर्व न्याय का निष्कर्ष है तो उसी का निष्कर्ष पर-न्याय का साध्य वाक्य। इसलिये वह न्याय, पूर्वन्याय भी है और परन्याय भी। जिस न्याय से तर्क शृखला प्रारम्भ होती है वह न्याय, और जिस न्याय पर वह समाप्त होती है वह न्याय, ये दोनो न्याय और मध्यवर्ती न्याय सब एक ही तर्क-पद्धति मे आते है, दो मे नही। तर्क-शृखला मे प्रथम न्याय के साध्य वाक्य तर्क-शृखला के साध्यवाक्य माने जाते है और अन्तिम न्याय का निष्कर्ष तर्क-शृखला का निष्कर्ष माना जाता है। ऐसे तर्क के उदाहरण नीचे दिये जाते है :—

(अ)	(ब)
सब म है प	सब म है प
सब स है म	सब स है म
∴ सब स है प (१)	∴ सब स है प (१)
सब स है प (साध्य)	सब प है र (पक्षवाक्य)
सब र है स	सब स है प
∴ सब र है प (२)	∴ सब स है र (२)
सब र है प (साध्य)	सब र है क
सब क है र	सब स है र (पक्ष)
∴ सब क है प (३)	∴ सब स है क (३)

(अ) की तर्क शृखला मे तीन न्याय है—(१) का निष्कर्ष, (२) का साध्य बनता है और (२) का निष्कर्ष (३) का साध्य बनता है। इसलिये (१), (२) के सम्बन्ध मे पूर्वन्याय है, और (२), (३) के सम्बन्ध मे पूर्वन्याय है किन्तु (१) के सम्बन्ध मे परन्याय। (१) केवल पूर्व न्याय है और (३) केवल पर न्याय (ब) की तर्क-शृखला मे पूर्वन्याय का निष्कर्ष आगे के न्याय का साध्य बनता है।

तर्क शृखलाओ के दो रूप

(Poly-syllogism) यह न्याय दो तरह का होता है—प्रागतिक न्याय

या प्रतिप्रागतिक न्याय या संश्लिष्टात्मक (Synthetic) और अपसरणात्मक (Regressive) या पूर्वानुमानात्मक (Prosyllogistic) या विश्लेषणात्मक (Analytic)।

(i) प्रागतिक (Progressive)

प्रागतिक बहु-न्याय वह तर्क-श्रृंखला है, जिसमे हम पूर्व न्याय से पर न्याय पर पहुँचते है। इसे प्रागतिक इसलिये कहा जाता है कि इसमें हम पूर्व न्याय के निष्कर्ष से एक नया न्याय बनाते है और तब समाप्त करते है जब अन्तिम निष्कर्ष पर पहुँच जाते है। इसको संश्लिष्टात्मक इसलिये कहते है कि अवयवात्मक न्याय सब मिल कर निष्कर्ष को प्रतिष्ठित करते है। ऊपर उदाहरण दिये जा चुके है।

अपसरणात्मक बहुन्याय (Regressive Poly syllogism)

अपसरणात्मक बहु-न्याय वह तर्क-श्रृंखला है, जिसमे हम पर न्याय (Epy-syllogism) से प्रारम्भ करके पूर्वन्याय (Prosyllogism) पर पहुँचते है। इसको अपसरणात्मक इसलिये कहते है, कि इसमे हम दिये हुये न्याय के एक साध्य वाक्य को प्रतिष्ठित करते है। यह विश्लेषणात्मक है, क्योकि इसमे हम किसी साध्यवाक्य के तर्क की व्याख्या करते है। इस प्रकार :—

सब क है प (निष्कर्ष)	सब क है प (निष्कर्ष)
∵ सब र है प (प्रमुख)	∵ सब र है प (प्रमुख)
सब क है र (लघु) (१)	सब क है र (लघु) (१)
सब र है प (निष्कर्ष)	सब क है र (निष्कर्ष)
∵ सब म है प (प्रमुख)	∵ सब स है र (प्रमुख)
सब र है म (लघु) (२)	सब क है स (लघु) (२)
सब म है प (निष्कर्ष)	सब क है स (निष्कर्ष)
∵ सब स है प (प्रमुख)	∵ सब प है स (प्रमुख)
सब म है स (लघु) (३)	सब क है प (लघु) (३)

सब स है प (निष्कर्ष)।	सब क है प (निष्कर्ष)
∵ सब क है प (प्रमुख)	∵ सब म है प (प्रमुख)
सब स है क (लघु) (४)	सब क है म (लघु) (४)

यहाँ पर पहला न्याय दूसरे न्याय के सम्बन्ध में पर न्याय है जो कि पहले के सम्बन्ध मे पूर्वन्याय है। (२) का निष्कर्ष (१) का एक मूल वाक्य है। इसलिये (१) परन्याय है और (२) पूर्वन्याय। इसी प्रकार (३), (२) के सम्बन्ध में पूर्वन्याय है और (४) है पूर्वन्याय (३) के सम्बन्ध मे। इसलिये ऐसी तर्क शृंखला में हम अपसरणात्मक गति करते है, हम एक पर न्याय से पूर्वन्याय पर पहुचते है।

माला-न्याय (Sorites)

माला-न्याय (Sorites) प्रागतिक तर्क-शृंखला का प्रथम आकार में साधारण रूप है, जिसमें पूर्वन्याय (Prosyllogism) का निष्कर्ष और पर-न्याय (Episyllogism) का साध्यवाक्य नही रहता।

मालान्याय प्रथम आकार में एक संक्षिप्त प्रागतिक तर्कशृंखला होता है।

लुप्तावयव-तर्क (Enthymeme) न्याय का अधूरा व्यक्तीकरण करता है। मालान्याय (Sorites) उसी प्रकार लुप्तावयव-तर्क का अधूरा कथन करता है। पहले में न्याय का कोई मूल वाक्य या निष्कर्ष लुप्त रहता है, दूसरे मे भी पूर्व-न्याय का निष्कर्ष और पर न्याय के वाक्य लुप्त रहते हैं। मालान्याय भी प्रागतिक तर्क-शृंखला है और पूर्वन्याय से जिसका निष्कर्ष लुप्त रहता है, प्रारम्भ होता है। इसलिये माला-न्याय मे पहला न्याय तृतीय श्रेणी का लुप्तावयव तर्क है और अन्तिम न्याय, जो

मालान्याय लुप्तावयवतर्क में अन्तर्निहित रहता है।

कि एक परन्याय होता है, जिसके मूल वाक्य या निष्कर्ष लुप्त रहते है, प्रथम या द्वितीय श्रेणी का लुप्तावयवतर्क होता है। यदि साध्यवाक्य लुप्त रहता है, तब अन्तिम अनुमान प्रथम श्रेणी का लुप्तावयव होता है और यदि पक्षवाक्य लुप्त होता है, तब लुप्तावयव द्वितीय श्रेणी का होता है।

मालान्याय (Sorites) के दो भेद होते हैं—पहला Aristotelian (अरस्तू का) और दूसरा Goclenian (गॉकलीनियस का)।

(अ) अरस्तू का मालान्याय (Aristotelian Sorites)

अरस्तू के मालान्याय में पूर्वन्याय का निष्कर्ष आगे के परन्याय का साध्यवाक्य बनता है। इसलिये अरस्तू के मालान्याय मे पूर्वन्याय का निष्कर्ष और परन्याय का पक्ष वाक्य लुप्त रहते है। सक्षेप मे, अरस्तू का माला न्याय शृंखलाबद्ध न्याय का प्रथम आकार मे साधारणीकरण है जिसमे पूर्वन्याय का निष्कर्ष आगे के परन्याय का साध्य वाक्य बनता है।

इस प्रकार—

अरस्तू का मालानुमान पहले आकार में वह प्रागतिक तर्क शृंखला है जिसमें पूर्व न्याय का निष्कर्ष अनुगत पर न्याय का पक्षवाक्य (Inter Premise) बनता है।

सब X है Y
सब S है X
∴ सब S है Y (निष्कर्ष) (१)
सब Y है Z
सब S है Y (लघु)
∴ सब S है Z (निष्कर्ष) (२)
सब Z है P
सब S है Z (लघु)
∴ सब S है P (निष्कर्ष) (३)

अब यदि हम (१), (२) के निष्कर्ष को छोड दे, (२) और (३) के पक्ष वाक्यो को छोड दे, और (१) के मूल वाक्यो को स्थानान्तरित कर दे तो निम्न रूप पायेंगे—

सब S है X	सब S है X (i) (लघु)
सब X है Y	सब X है Y (ii) (गुरु)
सब Y है Z	∴ सब S है Y (लघु)
सब Z है P	सब Y है Z (iii) (गुरु)

∴ सब S है P ∴ सब S है Z (लघु)
सब Z है P (गुरु)
∴ सब S है P

इस प्रकार यदि हम लघु वाक्य से प्रारम्भ करे, तो अरस्तू के माला न्याय का खड करके इसके अवयवात्मक न्यायो मे इसे विभक्त कर सकते है।

मूर्त्त उदाहरण—

सब हब्शी है मनुष्य,
सब मनुष्य है विवेकशील प्राणी,
सब विवेकशील प्राणी समर्थ है व्याकरण सीखने मे,
सब व्याकरण सीखने मे समर्थ प्राणी है समर्थ
भाषा की व्याख्या करने मे,
∴ सब हब्शी समर्थ है भाषा की व्याख्या करने में।

यदि पूर्ण रूप से व्यक्त हो तो इस तर्क-शृखला का निम्नाकित रूप होगा :—
सब मनुष्य हैं विवेकशील प्राणी,
सब हब्शी हैं मनुष्य
∴ सब हब्शी हैं विवेकशील प्राणी (निष्कर्ष) (१)
सब विवेकशील प्राणी समर्थ हैं व्याकरण सीखने मे
सब हब्शी विवेकशील प्राणी है (लघु)
∴ सब हब्शी समर्थ है व्याकरण सीखने में (निष्कर्ष) (२)
वे सब जो समर्थ हैं, व्याकरण सीखने मे समर्थ है भाषा की व्याख्या करने में
सब हब्शी समर्थ हैं, व्याकरण सीखने मे (लघु)
∴ सब हब्शी समर्थ हैं, भाषा की व्याख्या करने में। (निष्कर्ष) (३)

(ब) गॉकलीनियस का मालान्याय
(Goclenian Sorites)

शृखलावद्ध तर्क का प्रथम आकार में यह भी एक सक्षिप्त रूप है। इसमें

पूर्वन्याय का निष्कर्ष अनुगत न्याय का गुरु वाक्य बनता है। इसलिये गॉकलीनियस के मालान्याय में पूर्वन्याय का निष्कर्ष और पर न्याय का गुरु-वाक्य छोड़ दिया जाता है।

इस प्रकार—

सब X है Y
सब S है X
∴ सब S है Y (निष्कर्ष) (१)
सब S है Y (प्रमुख)
∴ सब Z है S
सब Z है Y (निष्कर्ष) (२)
मब Z है Y (प्रमुख)
सब P है Z
∴ सब P है Y (निष्कर्ष) (३)

(१) और (२) का निष्कर्ष छोड़ देने से और (२) और (३) का साध्य वाक्य छोड़ देने से हमको निम्नांकित मिलता है —

सब X है Y
सब S है X
सब Z है S
सब P है Z
∴ सब P है Y

मूर्त्त उदाहरण—

सब जो व्याकरण सीख सकते हैं, समर्थ हैं भाषा की व्याख्या करने मे
सब विवेकशील प्राणी समर्थ है व्याकरण सीखने मे
सब मनुष्य है विवेकशील प्राणी
सब हब्शी है मनुष्य
∴ सब हब्शी है समर्थ भाषा की व्याख्या करने मे।

अरस्तू और गॉकलीनियस के माला न्यायो की तुलना

अरस्तू और गॉकलीनियस के माला न्यायों में साध्यपद ।

(१) अरस्तू के माला न्याय मे अन्तिम मूल वाक्य का विधेय साध्यपद होता है और वही निष्कर्ष का भी विधेय बनता है । गॉकलीनियस के मालानुमान मे प्रथम मूलवाक्य का विधेय साध्यपद होता है ।

दोनो में पक्ष पद

(२) अरस्तू के मालान्याय मे प्रथम मूल वाक्य का उद्देश्य पक्ष पद होता है जब कि गॉकलीनियन माला न्याय में अन्तिम मूल वाक्य का उद्देश्य पक्ष पद होता है ।

लुप्त निष्कर्ष

(३) अरस्तू के माला न्याय मे पूर्वन्याय का लुप्त-निष्कर्ष आगे के परन्याय का लघु वाक्य बनता है जब कि गॉकलिनियस के माला-न्याय में निष्कर्ष आगे के परन्याय का साध्य वाक्य बनता है ।

आवयविक निर्णय वाक्य

(४) अरस्तू के माला न्याय मे पहला वाक्य पक्षवाक्य होता है और अन्तिम को छोडकर, जो निष्कर्ष होता है, बाकी सब साध्य वाक्य होते हैं । गॉकली-लीनियन माला न्याय मे, इसके प्रतिकूल यह पहला वाक्य साध्य रहता है और अन्तिम को छोडकर, जो निष्कर्ष होता है, सब पक्ष वाक्य होते हैं । इसका कारण यह है कि अरस्तू के माला न्याय मे पूर्वन्याय का निष्कर्ष और आगे के न्याय के पक्ष वाक्य छोड दिये जाते है, जब कि गॉकलीनियन माला न्याय में पूर्वन्याय का निष्कर्ष और आगे के परन्याय के साध्य वाक्य छोड़ दिये जाते हैं ।

माला न्याय के नियम

(क) अरस्तू के माला न्याय के विशेष नियम

१. केवल एक ही वाक्य नकारात्मक हो सकता है, और वह आखिरी वाक्य हो सकता है ।
२. केवल एक ही वाक्य अल्पग्राही (Particular) हो सकता है और वह पहला वाक्य है ।

प्रथम का प्रमाण :

अरस्तू के माला न्याय मे पूर्व न्याय का निष्कर्ष उपरान्त के पर न्याय का साध्य वाक्य बनता है। और किसी न्याय मे यदि कोई वाक्य नकारात्मक हुआ तो निष्कर्ष भी नकारात्मक ही होता है जो कि आगे के न्याय का एक मूल वाक्य बनता है, जिसके कारण निष्कर्ष को फिर नकारात्मक होना पडता है। अब यदि किसी माला न्याय मे दो नकारात्मक मूल वाक्य हुये तो वे माला न्याय के एक ही न्याय मे आ जाते हैं। किन्तु हम जानते है कि दो नकारात्मक वाक्यो से कोई निष्कर्ष नही निकल सकता। इसलिये यदि किसी माला न्याय मे दो नकारात्मक वाक्य आये तो सारा तर्क असगत हो जायगा। इससे स्पष्ट हुआ कि अरस्तू के माला न्याय मे केवल एक साध्य वाक्य नकारात्मक हो सकता है।

अब यह दिखलाना है, कि अरस्तू के माला न्याय मे केवल अन्तिम मूल वाक्य नकारात्मक हो सकता है। यदि मालान्याय का कोई मूल वाक्य नकारात्मक है, तो अन्तिम निष्कर्ष नकारात्मक होता है, और विधेय पूर्णविस्तृत (Distributed) होता है। अन्तिम निष्कर्ष का विधेय अन्तिम मूल वाक्य का विधेय होता है और साध्य पद (Major Term) होता है। इसलिये अन्तिम मूल वाक्य का नकारात्मक होना अनिवार्य हो जाता है। इसलिये अरस्तू के माला न्याय मे यदि कोई वाक्य नकारात्मक है, तो वह अन्तिम वाक्य होगा।

द्वितीय का प्रमाण :—

इस नियम का प्रथम भाग सहज ही बोधगम्य है। पूर्व न्याय का निष्कर्ष उपरान्त परन्याय का एक मूल वाक्य बनता है। इसलिये यदि किसी तर्क-शृखला मे दो अल्पग्राही (Particular) वाक्य है, तो उस तर्क-शृखला मे दो अल्प-ग्राही मूलवाक्य आ जायँगे। किन्तु दो अल्पग्राही (Particular) वाक्यो से कोई निष्कर्ष नही निकाला जा सकता। इसलिये इसमे एक ही साध्यवाक्य अल्पग्राही हो सकता है।

पहले नियम के अनुसार अन्तिम मूलवाक्य को छोडकर कोई मूल वाक्य नकारात्मक नही हो सकता। किसी भावात्मक (affirmative) वाक्य मे विधेयपूर्ण विस्तत (Distributed) नही होता। इसलिये प्रथम के सिवा कोई

अन्य मूलवाक्य अल्पग्राही (Particular) हुआ तो तर्क मे हेतु-अव्याप्ति (Undistributed Middle) का दोष आ जाता है। इसलिये अरस्तू के माला न्याय मे केवल एक ही मूलवाक्य अल्पग्राही (Particular) हो सकता है और वह प्रथम वाक्य होता है।

गॉकलीनियस के मालान्याय के विशेष नियम

१ एक ही मूलवाक्य अभावात्मक (Negative) हो सकता है और वह प्रथम मूलवाक्य होता है।

२ एक ही मूलवाक्य अल्पग्राही (Particular) हो सकता है और वह अन्तिम साध्यवाक्य होता है।

(१) **प्रथम नियम** —गॉकलीनियन माला न्याय मे यदि कोई मूल वाक्य अभावात्मक है तब उसका अन्तिम निष्कर्ष भी अभावात्मक होगा और उसका विधेय जो साध्यपद होगा, पूर्णविस्तृत (Distributed) होगा। परन्तु यह प्रथम मूल वाक्य मे ही जिसमे यह विधेय होता है, पूर्ण विस्तृत होगा। इससे स्पष्ट है कि प्रथम मूल वाक्य अभावात्मक होगा। यदि इसके अतिरिक्त कोई अन्य वाक्य भी अभावात्मक हुआ, तो तर्क शृखला मे ऐसा भी न्याय होगा, जिसके दोनो मूल वाक्य अभावात्मक हो। परन्तु दो अभावात्मक साध्यवाक्यो से कोई निष्कर्ष नही निकाला जा सकता। इसलिये प्रमाणित हुआ कि गॉकलीनियन मालान्याय मे केवल एक ही वाक्य अभावात्मक हो सकता है और वह प्रथम वाक्य होता है।

द्वितीय नियम —केवल एक ही मूल वाक्य अल्पग्राही (Particular) हो सकता है, क्योकि तर्क-शृखला में यदि किसी न्याय मे दो अल्पग्राही वाक्य आ गये तो कोई निष्कर्ष सम्भव नही हो सकता।

यदि गॉकलीनियन माला न्याय मे अन्तिम को छोड कोई दूसरा वाक्य अल्पग्राही हुआ, तो हेतु-अव्याप्ति (Undistributed Middle) का दोष आ जाता है। जब प्रथम वाक्य अभावात्मक होता है तब भी यह दोष आ जाता है। मान लिया

कि प्रथम वाक्य अभावात्मक है। जैसा कि हमने ऊपर देखा है, गॉकलीनियन माला न्याय मे यही एक वाक्य है जो अभावात्मक हो सकता है। बाकी सब वाक्य भावात्मक होते है। इसलिये यदि अन्तिम वाक्य को छोड़कर कोई अन्य वाक्य अल्पग्राही हुआ तो हेतु-अव्याप्ति का दोष आ जाता है। इसलिये केवल अन्तिम वाक्य अल्पग्राही (Particular) हो सकता है। इसके अल्पग्राही होने के कारण निष्कर्ष भी अल्पग्राही होता है। मूलवाक्य और निष्कर्ष दोनो मे पक्ष पद (Minor term) अपूर्ण विस्तृत (Undistributed) होता है और बाकी सब मूलवाक्यो के सर्वग्राही (Universal) होते है। इससे हेतु-अव्याप्ति का (Undistributed Middle) का दोष नही आ सकता।

सहेत्वानुमान (Epicheirema)

सहेत्वानुमान संक्षिप्त अपसरणात्मक तर्क-शृंखला है।

सहेत्वानुमान (एपीकाइरिमा) एक सक्षिप्त अपसरणात्मक तर्क-शृखला होती है जिसमे प्रत्येक पूर्व-न्याय का एक मूल वाक्य छोड दिया जाता है। स्पष्ट है, कि सहेत्वानुमान में पहला न्याय एक परन्याय होता है और उसके तीनो अग पूर्ण रूप से व्यक्त रहते है और इसका पूर्वन्याय लुप्तानुमान (Enthymeme) होता है।

सहेत्वानुमान (Epicheirema) या तो इकहरा (Single) या दुहरा (Double) होता है और या तो साधारण (Simple) या गुम्फित (Complex)। जब दिये हुये न्याय मे लुप्तानुमान द्वारा एक ही मूल वाक्य का समर्थन होता है, तब सहेत्वानुमान इकहरा कहा जाता है और जब लुप्तानुमान द्वारा दोनो मूलवाक्यो का समर्थन होता है तब सहेत्वानुमान दुहरा माना जाता है। जब पूर्वन्याय के, जो कि स्वय एक लुप्तानुमान है, मूल वाक्य एक अन्य लुप्तानुमान द्वारा प्रमाणित किये जायें तब वह गुम्फित होता है। इस प्रकार सहेत्वानुमान पर चार शीर्षको के अन्तर्गत विचार किया जाता है—साधारण इकहरा, साधारण दुहरा, गुम्फित इकहरा, गुम्फित दुहरा।

१. साधारण एकहरा (Simple Single)

सब Q है P (निष्कर्ष)

क्योंकि सब R है P (गुरु)

सब Q है R (लघु)

सब R है P (निष्कर्ष) दूसरे वर्ग का लुप्तानुमान (Enthymeme)

क्योंकि सब S है P (गुरु) लघु वाक्य "सब R है S" छोड़ दिया गया है ॥

२. साधारण दुहरा (Simple Double)

सब Q है P (निष्कर्ष)

क्योंकि सब R है P (गुरु)

सब Q है R (लघु)

सब R है P (निष्कर्ष) दूसरे वर्ग का लुप्तानुमान

क्योंकि सब S है P (गुरु)

सब Q है R (निष्कर्ष) प्रथम वर्ग का लुप्तानुमान, गुरुवाक्य,

क्योंकि सब Q है M "सब M है R" छोड़ दिया गया है।

मूर्त्त उदाहरण

१. साधारण इकहरा

सुकरात मरणशील है (निष्कर्ष)

क्योंकि सब मनुष्य मरणशील है (गुरु)

सुकरात एक मनुष्य है (लघु)

सब मनुष्य मरणशील है (निष्कर्ष) दूसरे वर्ग का लुप्तानुमान,

क्योंकि सब प्राणी मरणशील है (गुरु)

२. साधारण दुहरा

सुकरात मरणशील है (निष्कर्ष)

क्योंकि सब मनष्य मरणशील है (गुरु)

सुकरात एक मनुष्य है (लघु)
(अ) सब मनुष्य मरणशील है (निष्कर्ष) दूसरे वर्ग का लुप्तानुमान लघु
क्योंकि सब प्राणी मरणशील है (गुरु)
(ब) सुकरात एक मनुष्य है (निष्कर्ष) प्रथम वर्ग का लुप्तानुमान
क्योंकि सुकरात एक विवेकशील द्विपद है (लघु) जिसका गुरुवाक्य छोड दिया गया है।

३. गुम्फित इकहरा

सब Q है P
क्योंकि सब R है P
सब Q है R
सब R है P
क्योंकि सब S है P
सब S है P
क्योंकि सब M है P

४. गुम्फित दुहरा

सब Q है P
क्योंकि सब R है P
सब Q है R
सब R है P
क्योंकि सब S है P
सब S है P
क्योंकि सब M है P
सब S है R
क्योंकि सब M है R

और फिर
सब Q है R
क्योंकि सब Z है R
सब Z है R
क्योंकि सब G है R
सब Q है Z
क्योंकि सब H है Z
यह क्रिया जितनी बढाई जाय बढ सकती है।

ऊपर के साधारण इकहरे हेत्वानुमान (Epicheirema) मे पहला न्याय एक परन्याय (Episyllogism) है क्योंकि इसका साध्य-वाक्य एक पूर्वन्याय (Prosyllogism) का निष्कर्ष है—जो कि एक लुप्तानुमान (Enthymeme) के रूप मे है और निष्कर्ष तथा साध्य-वाक्य "सब प्राणी मरणशील है" से बना है। इसके प्रतिकूल, साधारण दुहरे हेत्वानुमान (Epicheirema)

में परन्याय (Episyllogism) के साध्य और पक्ष वाक्य (अ) और (व) द्वारा प्रमाणित किये गये है जो कि लुप्तानुमान (Enthymeme) है। पूर्णरूप से व्यक्त किये जाने पर साधारण दुहरे हेत्वानुमान (Epicheirema) का रूप नीचे दिया जाता है—

सुकरात मरणशील है (निष्कर्ष)
क्योकि सब मनुष्य मरणशील है (गुरु)
सुकरात एक मनुष्य है (लघु)
सब मनुष्य मरणशील है (निष्कर्ष)
क्योकि सब प्राणी मरणशील है (गुरु)
सब मनुष्य प्राणी है (लघु)
सुकरात एक मनुष्य है (निष्कर्ष)
क्योकि सब विवेकशील द्विपद मनुष्य है (गुरु)
सुकरात विवेकशील द्विपद है (लघु)

हेत्वानुमान (Epicheirema) के गुम्फित इकहरे रूप मे पूर्वन्याय (Prosyllogism) का एक मूल वाक्य एक लुप्तानुमान (Enthymeme) द्वारा प्रमाणित किया जाता है। इसके प्रतिकूल, गुम्फित दुहरे हेत्वानुमान में पूर्व न्याय के दोनो मूल वाक्य एक लुप्तानुमान द्वारा प्रमाणित किये जाते है।

वहु-न्याय (Polysyllogism) का एक तलपट नीचे दिया जाता है·
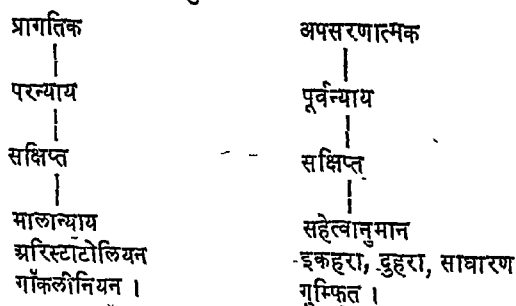
अध्याय १७ : अनुशीलन

१. लुप्तानुमान किसे कहते है ? भिन्न-भिन्न प्रकार के लुप्तानुमानों का वर्णन करो।

२. श्रेणी-न्याय की व्याख्या करो।

३. दो प्रकार के श्रेणी-तर्कों का सांकेतिक उदाहरण प्रस्तुत करो।

४. निम्नांकित पर टिप्पणी लिखो :—

(अ) मानश्रेणी (Polysyllogism), (ब) परानुमान (Episyllogism)।

(स) पाशखडन (द) सहेतुकावयवानुमान।

५. अरस्तू और गॉकलीनियस के मालानुमानो में अन्तर बताओ।

६. निम्नांकित का प्रमाण दो :—

(क) अरस्तू के मालानुमान मे केवल एक मूल वाक्य (Premise) अल्पव्याप्ति वाचक हो सकता है, और वह प्रथम वाक्य है।

(ख) गॉकलीनियन मालानुमान मे केवल एक मूलवाक्य निषेध वाचक हो सकता है, और वह है प्रथम वाक्य।

—:०—

अध्याय १८

न्याय का कार्य और मूल्य

(The Function and Value of Syllogism)

१. दो विरोधी मत

न्याय के कार्य और उसके मूल्य तथा उपयोगिता के सम्बन्ध मे दो विरोधी मत है। एक मत के अनुसार न्याय ही एकमात्र सगत अनुमान है। और हम अपने नित्यप्रति के व्यवहार तें न्याय के ही आकार में तर्क-वितर्क करते है। दूसरे मत के अनुसार हम जिस ढंग से तर्क करते है, वह न्याय (Syllogism) का अनुगमन नही करता। न्याय को उस मत के अनुसार तर्क की विशुद्ध पद्धति नही माना जाता। उसमे Petitio principii का तर्काभास वतलाया जाता है।

एक मत के अनुसार न्याय ही संगत अनुमान है। दूसरे मत के अनुसार न्याय मे Petitio principii तर्काभास होता है।

पहले मत मे अत्यधिक पक्ष समर्थन है। यह सिद्ध करना कि अनुमान का आकार केवल न्याय है, वहुत कठिन है क्योकि हम पहले देख चुके है कि अनुमान के और भी आकार है। न्याय उन निगमनात्मक अनुमानो मे से एक है। इसके अलावा एक प्रकार का अन्य अनुमान भी होता है, उसको आगमन (Induction) कहते है। यह अवश्य सच है कि हम अपने नितप्रति के व्यवहार में न्यायात्मक तर्क का उपयोग करते है, किन्तु हमे तै करना पडेगा कि न्याय का कैसा रूप हम अपने नित्य प्रति के व्यवहार में लाते है। न्याय (Syllogism) मे दो मूलवाक्य (Premises) होते हैं—एक साध्यवाक्य (Major

निगमनात्मक अनुमानो में न्याय भी एक अनुमान है।

Premise) और दूसरा पक्षवाक्य (Minor Premise) और एक निगमन (Conclusion) होता है। अब यदि हमसे पूछा जाय कि हम अपने सामान्य जीवन मे जो अनुमान (Inference) किया करते हैं वह क्या न्याय (Syllogism) की पद्धति पर करते है तो इसका उत्तर हम "हाँ" और "ना" दोनो ही देगे। यदि यह कहा जाय कि पहले हम साध्यवाक्य कहते है फिर पक्षवाक्य और तब निष्कर्ष या निगमन निकालते है तो हमको कहना पडेगा कि हम साधारणत न्याय की पद्धति से तर्क नही करते। हम अपने नित्यप्रति के व्यवहार मे पक्षवाक्य से ही तर्क प्रारम्भ करते है परन्तु यह पद्धति न्याय पद्धति के अनुरूप नही कही जा सकती। इसीलिए लोग कहते हैं कि न्याय तर्क का सामान्य रूप नही है।

साधारणतः हम तर्क साध्य वाक्य से नहीं प्रारम्भ करते।

किन्तु यह कहना कि न्याय किसी तर्क की प्रक्रिया का वास्तविक रूप नहीं है सच नही है। न्याय तार्किक प्रक्रिया का वास्तविक रूप अवश्य है। न्याय मे दो मूलवाक्य होते हैं---साध्य और पक्ष---और इन दोनो के योग से निगमन निकाला जाता है। तर्क के लिए यह आवश्यक नही है कि साध्यवाक्य पहले रक्खा जाय और पक्षवाक्य वाद मे। अपने नित्यप्रति के व्यवहार मे हम पक्षवाक्य से तर्क प्रारम्भ करते है और फिर निगमन मिला देते है। जैसे जब हम यह निगमन निकालते है कि "सामने पहाड़ पर आग है" तब हम पक्षवाक्य, "सामने पहाड पर धुआँ है" से प्रारम्भ करते हैं। पहले हम पहाड़ से धुआँ उठते देखते है और तब इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि वहाँ आग है। इस पर समालोचकगण कहते है कि यह तो साधारण अनुमान हुआ, न्यायात्मक नही। यह भ्रम है। हम पक्ष वाक्य से केवल प्रारम्भ ही करते है उससे निष्कर्ष नही निकालते। यदि हम यह नही जानते कि धुआँ और आग मे आवश्यक सम्वन्ध है तब हम तर्क मे झट से धुआँ से आग पर न पहुँच जाते। इसलिए जब हम यह निष्कर्ष निकालते है कि "सामने पहाड पर आग है" तव हम इस मूलवाक्य का भी उपयोग करते है कि, "जहाँ धुआँ होता है वहाँ आग भी होती है।"

यहाँ पर मनो वैज्ञानिक और तार्किक दृष्टिकोणो में जो अन्तर है उसे

समझ लेना चाहिए। मनोविज्ञान का सम्बन्ध प्रत्यक्ष अनुभूति से रहता है और तर्क का सम्बन्ध रहता है तार्किक परिस्थिति मे अनुभूति लब्ध आधारो को व्यवस्था देने से। इसलिए मनोविज्ञान की दृष्टि से हम न्याय मे प्रत्यक्षानुभूति के माध्यम से पक्षवाक्य से तर्क प्रारम्भ करते हैं और तब साध्यवाक्य के बारे मे सोचते है। इससे केवल यह प्रगट होता है कि प्रत्यक्षानुभूति मे पहले पक्षवाक्य आता है फिर साध्य वाक्य अर्थात् इससे प्रत्यक्षानुभूति मे मूलवाक्यो का क्रम व्यक्त होता है। किन्तु अभी तक किसी अनुमान के बारे में कोई जिक्र नही आता। अनुमान सम्बन्धसूचक एव एक स्फुट प्रक्रिया है। इसलिए न्याय की प्रक्रिया मे अनुमान का कार्य मूलवाक्यो के क्रम परिवर्तन से प्रारम्भ होता है। जहाँ तक तार्किक प्रक्रिया का सम्बन्ध है साध्यवाक्य पहले आता है। अनुमान के लिए यह जानना आवश्यक नही है कि कब और कैसे हमें अनुभूति लब्ध मूलवाक्य मिले। न्यायात्मक तर्क मे हम केवल यही चाहते हैं कि हमे एक ऐसा निर्णय वाक्य मिले जिससे इसके दोनो तत्वो मे एक आवश्यक सम्बन्ध स्थापित हो सके। जब हम एक न्यायात्मक तर्क की व्याख्या करते है तब उसके मूलवाक्यो को निम्न रूप में पाते है :—

दो दृष्टिकोण—मनोवैज्ञानिक और तार्किक

अनुमान की प्रक्रिया में मूल वाक्यों का क्रम

साध्य वाक्य

पक्ष वाक्य

निगमन

जहाँ कही धुआँ होता है वहाँ आग होती है।

सामने के पहाड पर धुआँ है।

∴ सामने के पहाडपर आग है।

तर्क की प्रक्रिया में तर्क वस्तुत साध्यवाक्य से ही प्रारम्भ होता है। यदि हम मनोवैज्ञानिक और तार्किक दृष्टिकोणो को अभिन्न न माने तो हमे मानना पडेगा

कि न्याय वस्तुत अनुमान का एक रूप है, गोकि केवल यही अनुमान का रूप नही है बल्कि और भी हैं।

यदि वह अन्तर दिखला दिया जाय जो नैयायिक अनुमान के यथातथ्य रूप और भाषा में व्यक्त रूप मे करते हैं तो हमारा तात्पर्य स्पष्ट हो जायगा।

अनुमान का यथा तथ्य रूप —

१ जहाँ कही धुआँ है वहाँ आग है।
२ सामने के पहाड पर धुआँ है।
३ ∴ सामने के पहाड पर आग है।

अनुमान की व्याख्या —

१. सामने पहाड पर धुआँ है (सिद्ध करना है) .. प्रतिज्ञा।
२ क्योकि वहाँ धुआँ है (कारण) ... हेतु।
३. जहाँ कही धुआँ होता है वहाँ आग होती है (साध्यवाक्य) जैसे रसोई घर मे .. उदाहरण।
४ सामने पहाड पर धुआँ है (पक्षवाक्य) .. उपनय।
५ सामने पहाड पर आग है .. निगमन।

इस प्रकार ऊपर के अनुमान की जब व्याख्या करते है तब पाँच सीढियाँ मिलती है, किन्तु पाँचो सीढियो या अवयवो का योग अनुमान मे नही रहता। ये पाँचो प्रतीति की दृढता के लिए ही उपयोग में लाये गये है। पहले दो अवयवो मे उस अनुभूति का सक्षिप्त उल्लेख रहता है जो मूलवाक्यो से निगमन तक गतिशील रहती है। ये यह बतलाते है कि धुआँ के प्रस्तुत होने पर हम आग को भी प्रस्तुत समझने लगते है। अर्थात् एक कदम आगे बढ जाते है। इनके बाद (३), (४), (५), जो अवयव आते हैं वे अनुमान के तार्किक रूप की व्याख्या करते है। वे यह दिखलाते है कि दिये हुए वाक्य से हम किस प्रकार बढकर निगमन पर पहुँचते हैं। इन्ही तीनो अवयवो से वास्तविक तर्क बनता है। ये तीनो अर्थात् (३), (४), और (५) क्रम से साध्यवाक्य, पक्षवाक्य और निगमन है। इसलिए न्याय (Syllogism) की निन्दा करने से कोई लाभ नही। हमारे

दैनिक व्यवहार में अनुमान के जो रूप मिलते हैं उनमें न्याय (Syllogism) भी एक है।

जो लोग यह कहते है कि न्याय (Syllogism) मे पिटीसिओ प्रिन्सिपिआई (Petitio Principii) का तर्काभास आ जाता है वे भ्रम मे है।

न्याय में पिटीसिओ प्रिंसिपिआई का दोष नहीं।

पिटीसिओ प्रिंसिपिआई (Petitio Principii) के तर्काभास मे निगमन मे अंशत या पूर्णत. वही वात कही जाती है जो मूलवाक्यो मे से किसी में पहले कह दी गई है। यह कहा जाता कि निगमन में जो कुछ कहा जाता है वह साध्य वाक्य मे पहले ही कहा जा चुका होता है। निगमन मे कोई नई चीज नही कही जाती। जिस अनुमान का निगमन कोई नई वात न वताये वह अनुमान अपने नाम को सार्थक नही करता। जैसे इस न्याय मे—

सव मनुष्य मर्त्य हैं।
सुकरात एक मनुष्य है।
∴ सुकरात मर्त्य है।

उनके कहने के अनुसार निगमन से कोई नया ज्ञान नही मिलता। जो कुछ निगमन मे कहा गया है वह साध्य वाक्य में पहले ही कह दिया गया है। मरण-शीलता का निर्देश उसमें सव मनुष्यो के लिए कर दिया गया है। निगमन मे सुकरात के लिए जोकि एक मनुष्य है, मरणशीलता निर्दिष्ट की गई है। इसलिए आलोचको के कथनानुसार निगमन मे कोई नई वात नही कही गई। अस्तु उनके अनुसार न्याय मे Petitio Principii का दोष है।

परन्तु यह मत भ्रामक है। यह सर्वव्याप्तिवाचक साध्य वाक्य का केवल विस्तार (नाम-व्याप्ति) विषयक (Denotative) अर्थ-निर्देश करता है। हम निर्णय-वाक्य (Proposition) के अध्याय मे पहले ही देख चुके है कि "सव" शब्द से किसी समुदाय या सग्रह का वोध नही होता, क्योकि समुदाय या सग्रह की सख्या सीमित रहती है। सव शब्द का अर्थ होता है एक वर्ग जिसमे कुछ सर्वनिष्ठ गुण रखने वाले अनेक व्यक्ति होते है। ये व्यक्ति, भूत, वर्तमान

और भविष्य सब समय के होते हैं। इसलिये वर्ग के सम्बन्ध में जो कुछ कहा जाता है वह ऐसा नही हो सकता कि सीधे सब व्यक्तियो के लिये कहा जाता हो, क्योकि भूत के सब मनुष्य तो मर गये है, भविष्य के अभी जन्मे ही नही, इसलिये यदि हम कुछ कह सकते है, तो वर्तमान ही समय के मनुष्यो के बारे मे कह सकते है। इससे स्पष्ट है, कि जब हम किसी वर्ग के बारे मे कुछ कहते हैं, तो सीधे उनके अन्तर्गत जो व्यक्ति है उनके बारे में नही कहते, हम उन व्यक्तियो के बारेमें अप्रत्यक्ष रूप से ही कह सकते हैं। हम उन व्यक्तियो के बारे मे जो-कुछ कहते है, वह वर्ग की विशेषता के ही द्वारा कहते है।

जब हम कहते हैं, "सब मनुष्य मर्त्य हैं" तब "सब मनुष्य" से हमारा मतलब मनुष्य वर्ग से होता है। इसलिये "सब मनुष्य मर्त्य हैं" को हम इस आकार मे भी रख सकते है कि यदि कोई व्यक्ति मनुष्य है, तो वह मर्त्य है।" कहने क तात्पर्य यह है कि जब हम एक वर्ग की मरणशीलता का कथन करते है, तब हम उस वर्ग के सभी व्यक्तियो की मरणशीलता का सीधा कथन नही करते क्योकि जो सब व्यक्ति वर्ग के अन्तर्गत हैं, उनको हम जानते ही नही। हम केवल यही जानते है कि इस वर्ग के अन्तर्गत आ कौन सकते है। किन्तु सर्वव्याप्ति वाचक वाक्य से हम यह नही बता सकते कि व्यक्तिविशेष कौन है। यह ज्ञान हमें सर्वव्याप्ति-वाचक के बाहर किसी अन्य वाक्य से मिलता है। इसलिये पक्षवाक्य की आवश्यकता पड़ती है। "सब मनुष्य मर्त्य है" इस वाक्य से हम यह अनुमान नही निकाल सकते कि "सुकरात मर्त्य है।" इस निष्कर्ष को निकालने के पहले हमे जानना पडेगा कि सुकरात कौन है। 'सुकरात' पद का क्या अर्थ है। साध्य वाक्य केवल एक सामान्य नियम होता है। पक्षवाक्य से पता चलता है वह नियम कहाँ लागू हुआ है। बिना पक्षवाक्य के हम निगमन नही निकाल सकते। इससे स्पष्ट हो जाता है कि किसी न्याय मे साध्य वाक्य के सर्वव्याप्तिवाचक होने पर भी निगमन उसके अनन्तर्गत नही रहता। इसलिये Petitio Principii का आक्षेप कोरी बकवास मालूम होती है।

मिल (Mill) भी न्याय को दोषपूर्ण समझते है। किन्तु वे कहते हैं, कि न्याय के आकार मे रखकर हम अनुमान की सगतता का परीक्षण कर सकते

है, गोकि न्याय तर्क का सगत आकार नही है। परन्तु यदि न्याय तर्क का सगत आकार नही है तो उसका आकार कैसे सगत अनुमान की कसौटी हो सकता है। इसलिये मिल का आक्षेप स्वत खडित हो जाता है।

अध्याय १८ : अनुशीलन

१. कुछ लोगो का कहना है कि न्याय में पिटीसिओ प्रिन्सिपिआई का तर्काभास आ जाता है। क्या तुम इस मत से सहमत हो ?

२. "अनुमान मे साध्यवाक्य की आवश्यकता नही होती" इस कथन पर अपना मत दो।

३ क्या तुम तार्किक और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण मे अन्तर समझते हो, उदाहरण देकर स्पष्ट करो।

४ क्या न्याय (Syllogism) अनुमान (Inference) की सगत प्रक्रिया है ?

५ व्यवहार में न्यायात्मक अनुमान का जो यथातथ्य रूप पाया जाता है, उसकी व्याख्या करो।

अध्याय १९

तर्काभास

(Fallacies)

तर्काभास (Fallacies) का शाब्दिक अर्थ होता है मिथ्या तर्क, इस पद का व्यवहार व्यापक अर्थ में होता है। न्यायशास्त्र (Logic) के किसी नियम का उल्लघन तर्काभास का ही उदाहरण उपस्थित करता है।

तर्काभास के प्रधानतः दो भेद किये जाते है । एक विचार का आकार सम्बन्धी या अनुमानात्मक (Inferencial) और दूसरा विचार् का विषय सम्बन्धी या अननुमा-नात्मक (Non-inferential), विषय-सम्बन्धी तर्काभास के भी दो प्रकार होते है--(१) भाषा-सम्बन्धी, (२) तर्कसम्बन्धी। प्रथम मे पद या पद समूह के व्यवहार मे गडबडी रहती है। द्वितीय में किसी तार्किक प्रक्रिया के नियम की उपेक्षा रहती है।

तर्काभास दो प्रकार का होता है— (१) अनुमान से सम्बन्ध रखने वाला, (२) अनु-मान से सम्बन्ध न रखने वाला।

(१) अनुमान से सम्बन्ध रखनेवाले तर्काभास (Inferential Fallacies)

अनुमान सम्बन्धी, तर्काभास का वास्ता व्यवहित (Mediate) और अव्यवहित (Immediate) अनुमान से है। ये अनुमान जिन दशाओ मे संगत होते हैं, उनकी व्याख्या पहले कर दी गई है। यह भी दिखला दिया गया है, कि किन नियमो के उल्लघन से किस-किस तरह से तर्काभास उपस्थित होता है।

निगमन (Deduction) भी व्यवहित अनुमान का एक रूप है। और निगमनात्मक तर्क के भी विभिन्न आकार होते है। स्थूल रूप से इन्हे न्यायात्मक अनुमान (Syllogistic inference) और अलैंगिक अनुमान (Non-syllogistic inference) मे विभक्त किया जाता है। जहाँ इनका प्रसग आया है, वहाँ इनके नियमो की व्याख्या कर दी गई है। न्याय के अध्याय मे न्याय से सम्बन्ध रखनेवाले सामान्य नियमो की व्याख्या की गई है और आकारो के प्रकरण मे भिन्न-भिन्न आकारो के विशेष नियमो का भी प्रयोजन भली-भाँति समझा दिया गया है। अलैंगिक (Non-syllogistic) अनुमानो के भी नियमो का पूरा उल्लेख कर दिया गया है। इन सब की व्याख्या करते समय यह भी वतला दिया गया है कि इन नियमो का उल्लघन करने से तर्क मे किस तरह तर्काभास आ जाता है। इसलिये इनकी पुनरावृत्ति की आवश्यकता नही ज्ञात होती।

(२) अनुमान से सम्बन्ध न रखनेवाले तर्काभास (Non-inferential Fallacies)

ऐसे वहुत से तर्काभासो का वर्णन जो अनुमानात्मक नही है पहले हो चुका है। लक्षण और विभाजन के परिच्छेद में उनके नियम गिनाये गये है। इसलिये उनके दुहराने की आवश्यकता नही जान पडती। यहाँ पर इनमे उन्ही तर्काभासो की व्याख्या की जायगी जिनकी पहले नही की गई है। इनमें से कुछ तो भाषा-सम्बन्धी है। शब्दो और शब्द-समूहो के व्यवहार से सम्बन्ध रखते हैं और कुछ विचार के विषय से। इनमे तार्किक प्रक्रिया के किसी नियम का अतिक्रमण रहता है।

(अ) **भाषा-सम्बन्धी तर्काभास**—ये शब्दो या शब्द समूहों की अयोग्यता के कारण उपस्थित होते है।

(१) **पद-सम्बन्धी द्व्यर्थकता** (Equivocation)—जब एक शब्द से एक से अधिक अर्थो का वोध होता है तब यह तर्काभास उपस्थित होता है, जैसे —

गज एक मापदण्ड है।
हाथी गज है।
∴ हाथी मापदण्ड है।

यहाँ गज शब्द दोनो मूलवाक्यो मे दो भिन्न-भिन्न अर्थो मे प्रयुक्त हुआ है। साध्यवाक्य में गज का अर्थ एक मापक होता है और पक्ष वाक्य में गज का अर्थ एक प्रसिद्ध पशु। इसलिये तर्काभास उपस्थित होता है।

(२) **वाक्य-सम्बन्धी द्व्यर्थकता–वाक्छल** (Amphiboly or Amphibology)—जब सम्पूर्ण वाक्य का गठन द्विविधात्मक रहता है, तब यह तर्काभास उपस्थित होता है। जैसे—

"यदि मेरा मित्र यहाँ आयेगा रविवार को तो भोज होगा और सगीत समारोह होगा सोमवार को।" यहाँ पर यह स्पष्ट नही कि भोज रविवार को होगा या सोमवार को।

(३) **संकलन और व्याकलन** (Composition & Divison)—जव कोई पद मूलवाक्यो में व्यक्तियो का द्योतक होता है, किन्तु निगमन में समूह

का द्योतक वन जाता है तव सकलन (Composition) का दोप आता है और इसके प्रतिकूल जब कोई पद मूलवाक्यो मे समूह द्योतक रहता है, पर निगमन मे व्यक्ति का द्योतक हो जाता है तव व्याकलन (Division) का दोष आता है। जैसे :—

संकलन (Composition)

प्रत्येक मनुष्य मर्त्य है।

∴ मनुष्य जाति का अस्तित्व नही रहेगा।

प्रत्येक मनुष्य मर्त्य अवश्य है, किन्तु सव मनुष्य एक साथ ही किसी दिन मर जायँगे, ऐसा नही हो सकता। यहाँ पर मनुष्य पद साध्यवाक्य मे व्यक्ति का द्योतक है किन्तु निगमन मे वह जाति भर का द्योतक बन गया है। इसलिये तर्काभास आता है।

व्याकलन (Division)

कालिदास के सव ग्रन्थो का मूल्य सौ रुपये है।

अभिज्ञान शाकुन्तल कालिदास का ग्रन्थ है।

∴ अभिज्ञान शाकुन्तल का मूल्य सौ रुपया है।

कालिदास के सव ग्रन्थो का जो मूल्य होगा, वह कालिदास के एक ग्रन्थ का नही हो सकता। यहाँ समूहवाचक अर्थ को छोडकर व्यक्तिवाचक अर्थ ग्रहण किया गया है। इसलिये तर्काभास उपस्थित होता है।

(४) **उच्चारण सम्बन्धी द्व्यर्थकता** (Accents)—इस तर्काभास मे उच्चारण मे शब्द विशेष पर जोर देने से वाक्य का अर्थ बदल जाता है। जैसे—"तुम्हे अपने पडोसी की निन्दा नही करनी चाहिये" एक सामान्य वाक्य है। इससे ध्वनित होता है, कि 'निन्दा' त्याज्य वस्तु है। किन्तु यदि अपने पड़ोसी' पर जोर दिया जाय तो वाक्य का अर्थ बदल जायगा तव इसका अर्थ होगा कि "तुम अपने पडोसी की निन्दा नही कर सकते, लेकिन अन्य लोगो की कर सकते हो।

(५) **अलंकारिक द्व्यर्थकता** (Figure of Speech)—कभी-कभी

प्रत्यय युक्त होने पर मूल शब्द दूसरा अर्थ ग्रहण कर लेता है। जब ऐसे शब्दो का एक ही अर्थ मे प्रयोग होता है, तब यह तर्काभास उपस्थित होता है। जैसे.

अभिमानी लोग निन्द्य है।

स्वाभिमानी लोग अभिमानी होते है।

अत स्वाभिमानी लोग निन्द्य है।

अभिमानी व्यक्ति अवश्य निन्द्य है किन्तु स्वाभिमानी व्यक्ति श्लाघ्य है। इसलिये दोनो का एक सा अर्थ करने से तर्काभास का दोष आता है।

(ब) विषय या तथ्य सम्बन्धी तर्काभास

(Fallacies that Relate to the Violation of Rules Regarding) Some Non-Inferential Logical Functions.

(१) **औपाधिक तर्काभास** (Accident)—औपाधिक गुण अपरिहार्य नही होता। इसलिये उद्देश्य का जो विधेय है, वही औपाधिक का भी विधेय नही हो सकता। अत जब कोई कथन जो उद्देश्य के लिये निर्दिष्ट है, वह औपाधिक के लिये भी निर्दिष्ट किया जाय तब यह तर्काभास उपस्थित होता है। औपाधिक उद्देश्य का मूलभूत गुण नही होता, अत जो कुछ उद्देश्य के लिये कहा जाता है वह औपाधिक के लिये नही कहा जा सकता। जैसे—

यह कुत्ता तुम्हारा है।

यह कुत्ता पिता है।

∴ यह कुत्ता तुम्हारा पिता है।

मूलवाक्यो मे विधेयो द्वारा दो औपाधिको का उल्लेख है। इनमे कोई चीज उभयनिष्ठ नही है जिससे दोनो मे सम्बन्ध स्थापित होता। इसलिये हम यह नही कह सकते कि "यह कुत्ता तुम्हारा पिता है"।

(२) **सामान्य से विशेष का तर्काभास** (Secondum Quid)—परिस्थिति का विचार बिना किये हुये जब किसी सामान्य नियम का विशेष के लिये उपयोग किया जाता है तब यह तर्काभास उपस्थित होता है। जैसे—

फर के कोट जाड़े के दिनो में इगलैण्ड मे आवश्यक है।

∴ फर के कोट जाडे के दिनो में बगाल में भी आवश्यक है।

फर के कोट की आवश्यकता ऐसे देशो मे पड़ती है, जो शीत-प्रधान है। बगाल तो उष्ण प्रधान देश है। यहाँ पर उस परिस्थिति का ध्यान नही रक्खा गया है जिसमे फर के कोट की आवश्यकता पडती है इसलिये तर्काभास उपस्थित होता है।

मनुष्य को इच्छानुसार कार्य करने की स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये।
∴ यदि कोई मनुष्य अपनी सम्पत्ति बेचना चाहता है, या अपने बच्चो को अशिक्षित रखना चाहता है तो हमे नही चाहिये कि हम उसे बाधा पहुँचावें।

इसमे हम इस बात का विचार नही करते कि मनुष्य को कैसे कार्यों के लिये स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये। मनुष्य सभी परिस्थिति मे इच्छानुसार काम नही कर सकता, इसलिये तर्काभास उपस्थित होता है।

(३) **प्रतिवाद का तिरस्कार** (Ignoratio Elenchi)—जब वादी के तर्क के उत्तर देने की ओर ध्यान नही दिया जाता तब यह तर्काभास उपस्थित होता है। इसके कई भेद है। ये नीचे दिये जाते है —

(क) **व्यक्तिगत दोष दर्शन** (Argumentum ad Hominem)—यह तर्काभास तब उपस्थित होता है, जब वादी प्रतिवादी के वाद की अप्रामाणिकता न दिखाकर उसके व्यक्तिगत दोषोका वर्णन करने लगता है। जैसे यदि कहा जाता है, कि "ईश्वर मे विश्वास रखना अन्धविश्वास है" तो उत्तर मे कहा जाता है कि "जो ऐसा कहते है, वे पापी है।" यहाँ वादी के वाद का प्रतिवाद न करके केवल उसके चरित्र पर आक्षेप किया गया है। कभी-कभी Argumentum ad Hominem की उपयोगिता भी देखी जाती है। विशेषकर न्यायालयो मे किसी साक्षी को अयुक्त सिद्ध करने के लिये इसका उपयोग किया जाता है। यदि किसी साक्षी को यह दिखा दिया जाय कि उसे झूठ बोलने की आदत है तब उसकी बात प्रामाणिक नही मानी जा सकती।

(ख) **समाजोत्तेजन** (Argumentum ad Populum)—जब वक्ता किसी मत को निन्द्य प्रमाणित करने के लिये उस मत के विरुद्ध अपने श्रोतागण के मनोभावो को उत्तेजित करता है तब यह तर्काभास उपस्थित होता है। कम्युनिस्ट वक्ता अपने श्रमजीवी श्रोताओ को यह कहकर कि धनी लोग गरीबो

का खून चूस कर ऐश-आराम करते हैं, विश्वास दिलाना चाहता है कि सम्पत्ति का व्यक्तिगत स्वामित्व अपराध है।

(ग) आप्तवचन (Argumentum ad Verecundium)—जब युक्ति का उत्तर युक्ति से न देकर दूसरो के मत का सहारा लिया जाता है या प्रतिवादी में लज्जा की भावना उकसाई जाती है, तब यह तर्काभास उपस्थित होता है। जैसे कोई कहे कि 'ईश्वर ने छ हजार वर्ष पूर्व दुनिया नही बनाई थी क्योंकि बड़े-बड़े वैज्ञानिक इसे नही मानते' तो आप्तवचन का तर्काभास उपस्थित होगा; अथवा कोई जाति-प्रथा का समर्थक यह कहकर अपने प्रतिवादी को निरुत्तर करना चाहे, कि क्या तुम अपने पूर्वजो से अधिक बुद्धिमान हो तो लज्जोत्तेजक तर्क का दोष आता है। यह भी आप्तवचन तर्काभास के ही अन्तर्गत माना जाता है।

(घ) अर्थान्तर (Shifting the ground)—जब साध्य वाक्य को छोडकर अन्य प्रसग उठा दिया जाता है, तब अर्थान्तर का तर्काभास उपस्थित होता है। जैसे यदि किसी लडके से पूछा जाय कि तुमने अपना पाठ क्यों नही याद किया है तो वह उत्तर दे कि अन्य लडको ने भी तो अपना पाठ याद नहीं किया है।

(४) आत्माश्रय (Petitio Principii)—इस तर्काभास को स्व-आधार सिद्ध (Begging the Question) या चक्रवाद भी कहते कहते है। यह तर्काभास तब उपस्थित होता है, जब जो कुछ सिद्ध करना है उसे मान लिया जाता है। जैसे—

"कारणता (Causation) आवश्यक है, क्योंकि हर कार्य के लिये कारण होता है।"

स्पष्ट है, कि 'प्रत्येक कार्य के लिये कारण होता है, से हम यह निष्कर्ष नही निकाल सकते कि 'कारणता आवश्यक है' क्योकि यह वाक्य तो स्वय प्रमाण का मुखापेक्षी है, । इसमें जो सिद्ध करना है वही मान लिया गया है। इसलिये इस दोष को आत्माश्रय दोष (Petitio Principii) कहते है।

(५) अकारण को कारण मानना (Non Causa Pro causa)—इस तर्काभास को Reductio ad Absurdum भी कहते हैं।

जहाँ पर माने हुए आधार को लेकर चलने से हम अनुपपत्ति या असगतता पर पहुँचते है वहाँ पर यह तर्काभास होता है। जैसे, यदि मान ले कि पृथ्वी चिपटी है, तो फिर यह कैसे कह सकते है कि उसकी परिक्रमा हुई है।

(६) असम्बद्ध तर्क (Non Sequitur or the Consequent)—जब हम तर्क में किसी शर्त और उसके उत्तराश को स्थानान्तरित करते है, तब यह तर्काभास होता है। हम पहले देख चुके है कि यदि हम पूर्वांश को स्वीकार करते हं तो उत्तराश को भी स्वीकार कर सकते है, किन्तु उत्तराश को स्वीकार करके पूर्वाश को स्वीकार नही कर सकते। इस नियम के उल्लंघन से तर्क में यह दोष आता है। जैसे—

जाडे में मनुष्य को सर्दी लगती है।

=(यदि जाडे-का मौसम है, तो मनुष्य को सर्दी लगती है)

इस मनुप्य को सर्दी लगती है।

∴ यह जाडे का मौसम है।

अगर किसी को किसी समय सर्दी लगती है, तो इससे यह निष्कर्ष नही निकाला जा सकता कि जाडे का मौसम है। वह व्यक्ति मलेरिया बुखार से भी पीडित हो सकता है।

(७) बहु-प्रश्नात्मक तर्क (Many Questions)—जब एक ही वाक्य मे दो या दो से अधिक प्रश्न किये जाते है, तब यह दोष आता है। इसका उपयोग वकील लोग न्यायालयो मे अकसर किया करते है। जैसे—जब वकील अपने अभियुक्त से पूछता है, "क्या तुम सार्वजनिक सभा मे सम्मिलित हुए थे और गर्वनमेट के विरुद्ध बोले थे", तब उसका साधारण 'हाँ' या 'ना' निरापद नही हो सकता। वह सभा मे गया हो पर उसने गर्वनमेट के विरुद्ध कुछ न कहा हो। ऐसा भी हो सकता है। इसलिये ऐसे प्रश्न दोषपूर्ण होते है।

अध्याय १९ : अनुशीलन

१ तर्काभास (Fallacies) किसे कहते है ?

२ निगमनात्मक अनुमान की दृष्टि से कितने प्रकार के तर्काभास होते है ?

३ विभिन्न प्रकार के निगमनात्मक तर्काभासों की व्याख्या करो।
४ सकलन और व्याकलन के तर्काभासों को उदाहरण देकर समझाओ।
५ Secundum Quid क्या है ? मूर्त्त उदाहरण देकर समझाओ।

अध्याय २०

न्याय की संगतता अथवा असंगतता की परख

(जब किसी तर्क की जाँच की जाय तब साध्य वाक्य और पक्ष वाक्य का स्पष्ट कथन कर लेना चाहिये। कभी मूलवाक्यों में से कोई वाक्य अन्तर्निहित रहता है तो कभी निष्कर्ष छिपा रहता है। ऐसी दशा में मूलवाक्यों और निष्कर्ष का स्पष्ट कथन हो जाना चाहिये। इसके पश्चात् प्रत्येक मूलवाक्य और निष्कर्ष तर्क सम्मत रूप में रक्खे जायँ।")

(१) वह अवश्य गणतन्त्रवादी है, क्योंकि सब गणतन्त्रवादी स्वतंत्र व्यापार में विश्वास करते है।

वह अवश्य गणतन्त्रवादी है, . . . (निष्कर्ष)
सब गणतन्त्रवादी स्वतन्त्र व्यापार में विश्वास करते है ... . (साध्य वाक्य)
वह स्वतन्त्र व्यापार में विश्वास करता है . . . (पक्ष वाक्य)

मूलवाक्यों और निष्कर्ष को जब ठीक क्रम से रख कर इनको तर्कसम्मत आकार में रखते है तब हमे निम्नांकित रूप मिलता है।—

सब गणतन्त्रवादी वे हैं, जो स्वतन्त्र व्यापार मे विश्वास करते है (साध्यवाक्य)
वह ऐसा व्यक्ति है जो स्वतन्त्र व्यापार मे विश्वास करता है (पक्षवाक्य)
वह गणतन्त्रवादी है। (निष्कर्ष)

यहाँ पर हेतु की अव्याप्ति का दोष आता है।

(२) वह भद्र मनुष्य नही हो सकता, क्योकि कोई भद्र मनुष्य ऐसा काम नही कर सकता।

भद्र मनुष्य ऐसे नही होते जो ऐसा काम करते है।

यह ऐसा व्यक्ति है जो ऐसा काम करता है।

∴ वह भद्र मनुष्य नही है। सगत।

(३) धर्म ठीक विज्ञान नही है, ठीक विज्ञान प्रदर्शित किया जाता है, प्रदर्शित सिद्धान्त सत्य होता है, जो सत्य है वह लाभप्रद है, इसलिये धर्म लाभप्रद नही है।

धर्म ठीक विज्ञान नही है।

ठीक विज्ञान प्रदर्शित किया जाता है।

जो प्रदर्शित किया जाता है वह सत्य होता है।

जो सत्य होता है वह लाभप्रद होता है।

∴ धर्म लाभप्रद नही है।

यह एक अरस्तू की प्रणाली का मालानुमान है। इसका प्रथम मूलवाक्य निषेधात्मक है, इसलिये तर्क असगत है।

(४) यदि मेरे भाग्य मे मरना बदा है, तो कोई डाक्टर मुझे बचा नही सकता, यदि मेरे भाग्य मे अच्छा होना बदा है, तो किसी डाक्टर की आवश्यकता नही; फिर डाक्टर पर रुपया क्यो व्यर्थ नष्ट किया जाय।

यदि भाग्य मे मरना बदा है, तो कोई डाक्टर मुझे बचा नही सकता यदि भाग्य मे अच्छा होना बदा है तो किसी डाक्टर की आवश्यकता नही।

मेरे भाग्य मे या तो मरना बदा है या अच्छा होना। इसलिये किसी डाक्टर की आवश्यकता नही।

यह एक द्विपाश (Dilemma) है। निष्कर्ष मूल वाक्यो से नही निकलता। "मेरे भाग्य मे अच्छा होना बदा है।" ऐसा वैकल्पिक है जो डाक्टर की आवश्यकता की अपेक्षा रखता है! मै डाक्टर की सहायता से अच्छा हो सकता हूँ, इस प्रकार इस द्विपाश को भंग किया जा सकता है।

(५) यदि तुम पढोगे तो ज्ञान प्राप्त करोगे। किन्तु तुम पढते नही इसलिए तुम ज्ञान प्राप्त नही कर सकते।

अगर तुम पढोगे तो ज्ञान प्राप्त करोगे।

तुम पढते नही, इसलिए तुम ज्ञान प्राप्त नही करते।

यहाँ पर पूर्व पक्ष (Antecedent) के अस्वीकार करने का दोष आता है। इसमें अनुमानाश्रित वाक्य का पूर्वपक्ष अस्वीकार किया गया है।

(६) हेनरी अवश्य प्रसन्न होगा, क्योकि वह भला आदमी है और केवल भले आदमी ही प्रसन्न होते हैं। ऐसे व्यक्ति जो भले नही है प्रसन्न नही होते।

हेनरी एक भला आदमी है।

इसमे चार पद का तर्काभास उपस्थित होता है।

अथवा

सब प्रसन्न मनुष्य भले मनुष्य है।

हेनरी एक भला मनुष्य है।

∴ हेनरी एक प्रसन्न मनुष्य है।

इस तर्क मे मध्य पद के अव्याप्ति का दोष आता है।

(७) जो पाठशाला मे जाते है, वे शिक्षित होते है।

वह पाठशाला मे नही जाता।

∴ वह शिक्षित नही है।

इस तर्क मे असगत साध्यपद का दोष आता है?

(८) जो परिश्रम करता है वह परीक्षा मे सफल होता है।

जौन परीक्षामे सफल हुआ है।

∴ उसने कठिन परिश्रम किया है।

इसमें परपक्ष समर्थन का दोष आता है।

(९) वह एक अच्छा नागरिक होगा क्योकि सब अच्छे नागरिक देशभक्त होते है।

सब अच्छे नागरिक देशभक्त होते है।

वह देशभक्त है।

∴ वह अच्छा नागरिक है।

इस तर्क मे मध्य पद के अव्याप्ति का दोष आता है।

(१०) हर मनुष्य से भूल हो सकती है। ऋषि लोग भी मनुष्य है इसलिए अवश्य भूल करते है।

सब मनुष्य भूल कर सकते है। सब ऋषि मनुष्य है।

∴ सब ऋषि भूल कर सकते है।

यह तर्क सगत है।

(११) यदि मेरे भाग्य मे सफल होना है तो मुझे परिश्रम करने की आवश्यकता नही और यदि मेरे भाग्य मे असफल होना है तो मुझे बिल्कुल परिश्रम नही करना चाहिए। मेरे भाग्य मे या तो सफल होना है या असफल, इसलिए मुझे परिश्रम नही करना चाहिए।

यह एक द्विपाश है, हम इसके बन्धन तोड सकते है। परपक्ष "मुझे परिश्रम करने की आवश्यकता नही"

पूर्वपक्ष "मेरे भाग्य मे सफल होना बदा है" का अनुगमन नही करता, क्योकि केवल परिश्रम करने से भी मनुष्य सफल हो सकता है।

(१२) यदि तुम अत्यधिक भोजन करते हो तो अपच से पीडित होते हो। तुम अपच से पीडित हो। इसलिये तुम अत्यधिक भोजन करते हो।

इसमे परपक्ष समर्थन का दोष है।

(१३) वह घडी बेकार है, क्योकि वह चलती नही है, और उस घडी से क्या लाभ जो चलती नही।

सब घडियाँ जो चलती नही बेकार है,

वह घडी ऐसी है जो चलती नही,

∴ वह घडी बेकार है। (सगत)

(१४) यह गाय भूलजाति है, क्योकि यह एक जानवर है और जानवर मूल जाति है।

जानवर मूल जाति है,

यह गाय जानवर है,

∴ यह गाय मूल जाति है ।

साध्य वाक्य मे जानवर' पद का प्रयोग पशु जगत भर के लिये हुआ है जब कि पक्ष वाक्य मे वह जीव मात्र के लिए प्रयुक्त हुआ है । इसलिये यहाँ पर द्विअर्थक मध्यपद का दोष है ।

(१५) सब नवीनताएँ हानिकारक हैं, क्योकि वे वर्तमान वस्तु स्थिति को बिगाड़ देती हैं ।

जो वर्तमान वस्तुस्थिति को बिगाडती है वह हानिकारक है ।

सब नवीनताएँ वर्तमान वस्तुस्थिति को बिगाडती है ।

∴ सब नवीनताएँ हानिकारक हैं ।

यहाँ साध्यवाक्य मे "बिगाडती" का अर्थ होगा विकृत करना, किन्तु पक्ष वाक्य मे उसका अर्थ होगा बदलना । बदलने से वस्तुस्थिति सुन्दर भी हो सकती है । इसलिये मध्यपद द्विअर्थक है ।

(१६) प्रकाश भौतिक पदार्थ नही है, क्योकि इसमे वजन नही होता, केवल भौतिक पदार्थो मे वजन होता है ।

सब पदार्थ जो वजन रखते है भौतिक पदार्थ हैं ।

प्रकाश ऐसा पदार्थ नही है जो वजन रखता है ।

∴ प्रकाश भौतिक पदार्थ नही है ।

यहाँ पर साध्यपद असगत है ।

(१७) यदि तुम परिश्रम करते हो, तो खुशहाल होते हो, तुम परिश्रम नही करते, इसलिये तुम खुशहाल नही हो सकते ।

यहाँ पूर्वपक्ष (Antecedent) के अस्वीकार करने का दोष है ।

(१८) प्रत्येक आदमी अपनी प्रसन्नता खोजता है इसलिये सब मनुष्य सबकी प्रसन्नता खोजते हैं ।

प्रसन्नता शब्द पहले वाक्य मे एक-एक व्यक्ति के लिए प्रयुक्त हुआ, है दूसरे वाक्य मे वह सबके लिए प्रयुक्त हुआ है । इसलिये इसमे योग (Composition) का दोष आता है ।

(१९) एक सच्चा दार्शनिक भाग्य के प्रभाव से स्वतत्र रहता है, क्योंकि वह नैतिक और बौद्धिक सम्पन्नता को ही प्रसन्नता मानता है।

सब जो नैतिक और बौद्धिक सम्पन्नता को प्रसन्नता मानते है वे भाग्य के प्रभाव से स्वतत्र है।

एक सच्चा दार्शनिक वह है जो अपनी प्रसन्नता नैतिक और बौद्धिक सम्पन्नता मे मानता है।

∴ एक सच्चा दार्शनिक भाग्य के प्रभाव से स्वतंत्र रहता है। (संगत)

(२०) दास भी एक मनुष्य है इसलिए उसे बन्धन में नही रखना चाहिए।

कोई मनुष्य ऐसा नही होता जो बन्धन मे रक्खा जाय।

एक दास भी मनुष्य है।

∴ एक दास भी ऐसा नही है जो बन्धन मे रक्खा जाय। (सगत)

(२१) असभ्यो के मध्य मे शिक्षा सस्कार होने के कारण उससे यह आशा नही की जाती कि वह सभ्य समाज के प्रचलन को जानता होगा।

कोई शिक्षित असभ्य ऐसा नही है, जिससे आशा की जाय कि वह सभ्य समाज के प्रचलन को जानता है।

वह एक शिक्षित असभ्य है।

∴ वह ऐसा नही है, जिससे यह आशा की जाय कि वह सभ्य समाज के प्रचलन को जानता है। (संगत)

(२२) "कुछ कुत्ते उपयोगी जानवर है, क्योकि क्या शिकारी कुत्ते उपयोगी नही होते है?"

सब शिकारी कुत्ते उपयोगी होते है।

कुछ कुत्ते शिकारी कुत्ते होते है।

∴ कुछ कुत्ते उपयोगी है। (सगत)

(२३) "तुम वह नही हो जो मै हूँ, मै एक मनुष्य हूँ, इसलिये तुम एक मनुष्य नही हो।"

मै एक मनुष्य हूँ।

तुम नही हो मै।

∴ तुम एक मनुष्य नही हो। (असगत साध्य)

(२४) "प्लेग का एक लक्षण बुखार है, इस आदमी को बुखार है, इसलिये यह आदमी प्लेग से पीडित है।"

जो प्लेग से पीडित होते है, वे ऐसे है जो बुखार से पीडित होते है।

यह आदमी ऐसा है जो बुखार से पीडित है।

यह आदमी ऐसा है जो प्लेग से पीडित है। हेतु (मध्य) अव्याप्ति।

(२५) "प्रत्येक भला राजनीतिज्ञ प्रगति के पक्ष में होता है। लोक-सभा के कुछ सदस्य प्रगति के पक्ष मे नही है। इसलिये वे भले राजनीतिज्ञ नही हैं।"

सब भले राजनीतिज्ञ प्रगति के पक्ष में है।

लोक-सभा के कुछ सदस्य प्रगति के पक्ष में नही है।

∴ लोक-सभा के कुछ सदस्य भले राजनीतिज्ञ नही है। (सगत)

(२६) "सब स्थिर तारे टिमटिमाते है, सामने का तारा टिमटिमाता हैं इसलिये वह स्थिर है।"

सब स्थिर तारे वे है जो टिमटिमाते है,

सामने का तारा ऐसा है जो टिमटिमाता है,

∴ सामने का तारा स्थिर तारा है। हेतु (मध्य) अव्याप्ति।

(२७) "वह जो धन का दुरुपयोग करता है दरिद्रता का पात्र है, वह जो दानशील है दरिद्रता का पात्र नही है।"

जो धन का दुरुपयोग करता है वह दरिद्रता का पात्र है,

जो दानशील है, वह धन का दुरुपयोग नही करता,

∴ जो दानशील है वह दरिद्रता का पात्र नही है। (असगत साध्य)

(२८) "यदि कोई मनुष्य शिक्षित है तो वह हाथ से काम करना पसन्द नही करेगा, फलत यदि शिक्षा सबके लिये हो जायगी तो कोई हाथ से काम नही करेगा।"

यदि कोई व्यक्ति शिक्षित होता है तो वह हाथ से परिश्रम नही करता है।

वह एक शिक्षित व्यक्ति है।

∴ वह हाथ से परिश्रम नही करता है। (सगत)

पूर्वपक्ष (Antecedent) के समर्थन से परपक्ष (Consequent) का समर्थन किया गया है।

(२९) पुण्यात्माओ को छोडकर कोई सज्जन नही होता, और सज्जनो को छोड़कर कोई प्रसन्न नही होता। इसलिये पुण्यात्माओ को छोडकर कोई प्रसन्न नहीं होता।

सब जो सज्जन है, पुण्यात्मा है,

सब जो प्रसन्न है सज्जन है।

∴ सब जो प्रसन्न है पुण्यात्मा है। (सगत)

(३०) हम आग को पदार्थ कहने के अधिकारी नही है। क्योकि यह ऐसी वस्तु मे परिवर्तित हो सकती है जो पदार्थ नही है।

कोई वस्तु जो ऐसी वस्तु मे परिवर्तित की जा सकती है जो कि पदार्थ नही है, तो वह पदार्थ नही है।

आग ऐसी वस्तु है जो ऐसी वस्तु मे परिवर्तित की जा सकती है जो पदार्थ नही है।

∴ आग एक पदार्थ नही है। (सगत)

(३१) विद्वान लोग कभी-कभी पागल भी होते हैं।

वह विद्वान है। इसलिये वह पागल है।

कुछ विद्वान मनुष्य पागल होते है।

वह एक विद्वान मनुष्य है।

∴ वह पागल है! इसमे हेतु अव्याप्ति का दोष है।

(३२) जो सामाजिक जीव है वे नैतिकता से गिर सकते है इसलिए नैतिकता-पूर्ण होने के लिए मनुष्य को समाज से बाहर रहना चाहिए।

कुछ सामाजिक जीव नैतिकता से गिरे हुए होते है।

वह नैतिकता से युक्त है।

∴ वह सामाजिक जीव नही है।

इसमे असंगत साध्य का दोष है।

(३३) जल्दबाजी से बरबादी होती है और बरबादी से अभाव।

इसलिए सुस्ती से किसी का कुछ नुकसान नही होता।

बरबादी की सब दशाएँ अभावकी दशाएँ है।

जल्दबाजी की सब दशाएँ बरबादी की दशाएँ है।

∴ जल्दबाजी की सब दशाएँ अभाव की दशाएँ है।

जल्दबाजी की सब दशाएँ अभाव की दशाएँ है।

सुस्ती की कोई दशा जल्दबाजी की दशा न हो है।

∴ सुस्ती की कोई दशा अभाव की दशा नही है।

इस तर्क मे न्याय के दो सिलसिले चलते है। जिनमें अन्तिम में असंगत साध्य का तर्काभास आता है।

(३४) यदि कोई व्यक्ति पुण्यात्मा है तो वह प्रसन्न है।

वह व्यक्ति प्रसन्न है।

∴ वह व्यक्ति पुण्यात्मा है।

इसमे परपक्ष के समर्थन का दोष आता है।

(३५) यदि मनुष्य दोषरहित हैं तो कानून की कोई आवश्यकता नही और इसके प्रतिकूल यदि मनुष्य दोषपूर्ण है तो कानून तोड़े जाते हैं, इसलिए कानून बेकार हैं।

अगर मनुष्य दोषरहित हो तो कानून की आवश्यकता नही और अगर मनुष्य दोषपूर्ण है तो कानून तोडे जाते है, मनुष्य या तो दोषपूर्ण है या दोषरहित है।

कानून बेकार है।

यह एक द्विपाश (Dilema) है।

हम दोनो पाशो के मध्य से निकल सकते हैं। पक्षवाक्य मे जो वैकल्पिक दिए गए है वे पूर्ण नही है। मनुष्य अपूर्ण होने पर भी पूर्णता की अभिलाषा रख सकता है और उसके लिए कानून उपयोगी हो सकता है।

(३६) प्रत्येक पक्षी अडे से निकलता है और प्रत्येक अंडा पक्षी से निकलता है, इसलिये प्रत्येक अडा अडे से निकलता है।

सब पक्षी ऐसे है-जो अंडे से निकलते है

सब अडे ऐसे है जो पक्षी से निकलते है।

∴ सब अडे ऐसे है जो अडो से निकलते है। इस तर्क मे चार पदो का तर्काभास है।

(३७) यदि तुम्हे परीक्षा मे सफल होना बदा है तो तुम्हे पढने की आवश्यकता नही और यदि तुम्हें परीक्षा मे असफल होना बदा है तो तुम्हे पढने की आवश्यकता नही। इसलिये तुम्हे पढने की बिल्कुल आवश्यकता नही है।

यदि तुम्हें परीक्षा मे सफल होना बदा है
तो तुम्हे पढने की आवश्यकता नही है।
और यदि तुम्हे परीक्षा मे असफल होना बदा है
तो तुम्हे पढने की आवश्यकता नही है।
तुम्हे या तो सफल होना बदा है,
या असफल होना बदा है।

∴ तुम्हे पढने की आवश्यकता नही है।

इसमें हम द्विपाश का खडन कर सकते है, क्योकि परपक्ष, "तुम्हें पढने की आवश्यकता नही है", पूर्वपक्ष, "यदि तुम्हे सफल होना बदा है" का अनुगमन नही करता। केवल पढकर भी लोग परीक्षा मे सफल हो सकते है।

(३८) बुद्धिमत्ता काल के साथ रहती है, इसलिये हम लोगों को अपने पूर्वजो के विचारो को सदा मानना चाहिए।

बुद्धिमत्ता की दशा काल की दशा है।
पूर्वजो की दशा काल की दशा है।

∴ पूर्वजो की दशा बुद्धिमत्ता की दशा है।

इसमे हेतु (मध्य) अव्याप्ति का दोष है।

(३९) यह कविता टैगोर की नही हो सकती, क्योकि अभी तक मैने उनकी जो कवितायें पढी हैं उनसे इसमे मूलभूत भिन्नता है।

कुछ कवितायें जो मैने पढी है वे टगोर की कृति है।
यह एक ऐसी कविता है जो मेरी पढी हुई टैगोर की कविताओ से भिन्न है।

∴ यह कविता टैगोर की कृति नही है।

इसमें चार पद का तर्काभास है ।

(४०) मध्यमा परीक्षा से प्रवेशिका परीक्षा मे सफल परीक्षार्थियो का प्रतिशत अधिक है, स्पष्ट है कि विद्यालयो मे महा-विद्यालयो की अपेक्षा शिक्षा उत्तम ढग से होती है। सफल परीक्षार्थियो का प्रतिशत केवल शिक्षा पर निर्भर नही करता वरन् शिक्षार्थियो के बुद्धितत्व पर भी निर्भर करता है। इसलिये इसमे मिथ्या-साम्य (False Analogy) का दोष है।

(४१) भेडिये का झुण्ड आसानी से एक साँभर को मार सकता है। इसलिये एक भेडिया एक साँभर से वलवान होता है। इसमें विभाजन का दोष है।

(४२) तुम वुद्धिमान हो, क्योकि तुम वडो की वातो पर ध्यान देते हो।

जो वडो की वातो पर ध्यान देते है वे बुद्धिमान है;

तुम ऐसे व्यक्ति हो जो वडो की वातो पर ध्यान देते हो,

∴ तुम वुद्धिमान हो। (सगत)

(४३) नैतिक और धार्मिक शिक्षा व्यर्थ है क्योकि अधिकाश दुर्जन धर्म और नीति का खूब ज्ञान रखते है।

इसमें हेतु (मध्य) अव्याप्ति का दोष है।

(४४) यदि सव शिक्षित व्यक्ति सत्य और न्याय का रास्ता पकडते तो देश सम्पन्न होता,

देश सम्पन्न नही है,

∴ कोई शिक्षित व्यक्ति सत्य और न्याय का रास्ता नही पकड रहा है। संगत।

इसमें परपक्ष के खडन से पूर्वपक्ष का खडन किया गया है।

(४५) जद्दू परियों की कहानी सुनना पसन्द करता है, क्योकि वह एक मनुष्य है।

सव मनुष्य ऐसे होते हो जो परियो की कहानी सुनना पसन्द करते है।

जद्दू एक मनुष्य है।

∴ जद्दू परियो की कहानी सुनना पसन्द करता है। सगत।

दक्षिणी अफ्रीका के अनुचित जाति भेद पर श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित के कथन का प्रतिवाद करते हुये लोऊ (Louw) ने कहा था :

"भारत ऐसी स्थिति मे नही है कि दक्षिणी अफ्रीका को दोषी बताये, क्योकि वहाँ जितना दूषित और निर्मम जाति भेद है उतना ससार भर मे नही है।"

इसमे व्यक्तिगत दोष देखने का तर्काभास (Argumentum ad hominem) है।

श्रीमती पंडित ने उत्तर दिया . "सब देशो मे सामाजिक कुरीतियाँ है, किन्तु अन्तर यह है कि जहाँ भारत सरकार उन कुरीतियो के दूर करने मे प्रयत्नशील है वहाँ अफ्रीकी सरकार जान-बूझ कर जातीय भेद-भाव को बढाने के लिये प्रोत्साहन दे रही है।"

(४७) "तुम भौतिक-विज्ञान के आचार्य नही हो। इसलिये तुम पद के योग्य नही हो।"

सब जो पद के योग्य है भौतिकविज्ञ न के आचार्य है।

तुम भौतिक विज्ञान के आचार्य नही हो ।

∴ तुम पद के योग्य नही हो।

(४८) सामाजिक कुरीतियो को दूर करना राज्य का काम है, जुआ खेलना सामाजिक कुरीति है। इसलिये राज्य को इसे रोकना चाहिए।

सब सामाजिक कुरीतियो को राज्य को निर्मूल करना चाहिये। जुआ खेलना एक सामाजिक कुरीति है।

∴ जुआ खेलना राज्य को निर्मूल करना चाहिए। सगत।

(४९) सब ग्रेजुएट अर्द्ध शिक्षित है। वह अर्द्ध शिक्षित है। इसलिए वह ग्रेजुएट है।

सब ग्रेजुएट अर्द्ध शिक्षित है।

वह अर्द्ध शिक्षित है।

∴ वह ग्रेजुएट है।

इसमे हेतु (मध्य) अव्याप्ति का दोष है।

(५०) बहुत से बेकार आलसी होते हैं। वह आलसी है। इसलिये वह बेकार है।

कुछ बेकार मनुष्य आलसी होते हैं।

वह आलसी है।

∴ वह एक बेकार मनुष्य है।

इसमे हेतु (मध्य) अव्याप्ति का दोष है।

(५१) इच्छाशक्ति एक मानसिक प्रक्रिया है। चिन्तन एक मानसिक प्रक्रिया है। इसलिये चिन्तन इच्छाशक्ति है।

इच्छाशक्ति एक मानसिक प्रक्रिया है।

चिन्तन एक मानसिक प्रक्रिया है।

∴ चिन्तन इच्छाशक्ति है।

इसमे भी हेतु (मध्य) अव्याप्ति का दोष है।

(५२) पानी तरल है। वर्फ पानी है। इसलिये वर्फ तरल है।

(Secundum Quid)

"वर्फ पानी है।" यह कथन निरपेक्ष नही है। पानी जम जाने पर तरल दशा में नही रहता।

(५३) युद्ध से बुराइयाँ उत्पन्न होती है। इसलिये शान्ति से अच्छाइयाँ उत्पन्न होता है।

इसमें भौतिक प्रतिवर्तन का दोष है।

यह तर्क आकार के अनुकूल नही है। हम प्रथम निर्णय-वाक्य से सीधे द्वितीय निर्णय-वाक्य को नही प्राप्त कर सकते।

(५४) सव जो चमकते हैं सोना नही है। जरी (Tinsel) चमकती है। इसलिये जरी (Tinsel) सोना नही है।

कुछ चमकनेवाली चीजे सोना नही है।

जरी एक चमकनेवाली चीज है।

∴ जरी सोना नही है।

इसमे हेतु (मध्य) अव्याप्ति का दोष है।

(५५) मास और शराब जीवन की आवश्यकताएँ है। वाइटेलियस की आमदनी मांस और शराब पर खर्च हुई। इसलिये वाइटेलियस की आमदनी जीवन की आवश्यकताओं पर खर्च हुई। संगत।

(५६) "जो हम खाते है वह खेत मे पैदा होता है। जो हम खाते है वह रोटी है। इसलिये रोटी खेत में पैदा होती है।"

इसमे मध्यपद द्व्यर्थक है।

साध्य वाक्य में "जो हम खाते है" का अर्थ है वे सब पदार्थ जिनसे हम खाने की चीजें प्राप्त करते है। परन्तु पक्ष वाक्य मे, "जो हम खाते है" का अर्थ है जिसका हम वास्तव में भोजन करते है।

(५७) यदि वह कहता है कि मैने इन चीजों को नही चुराया है तो मै पूछता हूँ कि उसने उन्हें छिपाया क्यो? जैसा कि चोर लोग छिपाया करते है।

सब चोर लोग वे है जो चीजो को छिपाया करते है।

वह व्यक्ति ऐसा है जो चीजों को छिपाता है।

∴ वह चोर है।

इसमे मध्य पद में अव्याप्ति का दोष है।

(५८) विद्वान लोग विद्वत्ता प्रदर्शित करना चाहते है।

वह एक विद्वान है।

∴ वह विद्वत्ता प्रदर्शित करना चाहता है। सगत।

(५९) यहाँ पर आग नही हो सकती क्योकि यहाँ पर धुँआँ नही है। जहाँ पर धुँआ होता है वही पर आग होती है।

इसमे साध्यपद असंगत है।

(६०) कल रात को अवश्य वर्षा हुई होगी। क्योकि जमीन गीली है।

इसमें परपक्ष के समर्थन का दोष है।

(६१) वह अवश्य वहादुर है।

क्योकि सिवा वहादुर के सुन्दरी के योग्य कोई है नही। सगत।

(६२) यह वस्तु धातु को छोड और कुछ नही हो सकती। क्योकि सब धातु झकार करते है।

सब धातु झकार करते है।

यह वस्तु झकार करती है।

∴ यह वस्तु धातु है।

इसमे मध्य पद की अव्याप्ति का दोष है।

(६३) लडका या तो वुद्धिमान है या मेहनती। क्योकि उसने परीक्षा में ऊँचे अक प्राप्त किए है।

सब जो परीक्षा मे ऊँचे अक लाते है वे या तो वुद्धिमान होते है या परिश्रमी होते है। यह लडका ऐसा है जो परीक्षा मे ऊँचे अक लाया है।

यह लडका या तो वुद्धिमान है या परिश्रमी। सगत।

(६४) देवता मनुष्य से बढकर नही है क्योकि मनुष्य की भाँति वे भी मर्त्य है। सगत।

(६५) भिखमगे सवारी नही कर सकते, क्योकि इच्छाएँ घोड़े नही हो सकती। सगत।

(६६) वह अवश्य कायर होगा क्योकि वह वेईमान है और सब कायर वेईमान होते है।

सब कायर वेईमान होते है।

वह वेईमान है।

∴ वह कायर है।

इसमें मध्य पद की अव्याप्ति का दोष है।

(६७) सब मनुष्य परिश्रमी नहीं होते; किन्तु सोहन परिश्रमी है, इसलिये वह मनुष्य नही हो सकता।

कुछ मनुष्य परिश्रमी नही होते।

सोहन परिश्रमी है।

∴ सोहन मनुष्य नही है। असंगत साध्य।

(६८) यदि वह कुनैन खाता है तो अच्छा होता है, किन्तु वह कुनैन नही खायगा, इसलिये वह अच्छा नही होगा।

इसमे पूर्व पक्ष के अस्वीकार करने का दोष है।

(६९) जैराम कालेज मे भर्ती हो जायगा, क्योकि केवल प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण परीक्षार्थी कालेज में भर्ती किये जाते हैं।

सब जो कालेज मे भर्ती किये जाते है प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण हैं।

जैराम प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण है।

∴ जैराम कालेज मे भर्ती कर लिया जायगा।

मध्यपद अव्याप्त।

(७०) तर्कशास्त्र या तो एक विज्ञान है या एक कला, किन्तु यह एक कला है। इसलिये यह विज्ञान नही हो सकता।

वैकल्पिक पूर्ण नहीं है। तर्कशास्त्र विज्ञान और कला दोनों हो सकता है। इसलिये उक्त निगमन सगत नही है।

(७१) यदि नियति ने मेरा मरना नियत किया है, तो कोई दवा मुझे अच्छा नही कर सकती, यदि नियति ने मुझे स्वस्थ करना नियत किया है तो किसी दवा की आवश्यकता नही। इसलिये मुझे कोई दवा नही खाना चाहिये।

यह एक द्विपाश (Dilemma) है। हम इसके पाशो का खडन कर सकते हैं। क्योंकि दवा की सहायता से ही प्राय स्वास्थ्य लाभ होता है, इसलिये यह कहना असत्य है कि "यदि नियति ने मुझे स्वस्थ होना नियत किया है तो किसी दवा की आवश्यकता नही।'

(७२) भूमि गीली नही हो सकती, क्योकि वर्षा नही हुई हैं और यदि वर्षा होती है तब भूमि गीली होती है।

यदि वर्षा होती है तो भूमि गीली होती है।

वर्षा नही हुई है।

भूमि गीली नही है।

इसमे पूर्व. पक्ष के अस्वीकार का दोष है।

(७३) जग्गू अवश्य ईमानदार है ; क्योंकि वह सीधा और निष्कपट है और केवल सीधे और निष्कपट लोग ईमानदार होते है।

सब ईमानदार मनुष्य सीधे और निष्कपट होते है।

जग्गू सीधा और निष्कपट है।
. जग्गू एक ईमानदार मनुष्य है।

मध्यपद अव्याप्त।

(७४) वह चतुर नही हो सकता, क्योकि उसे शिक्षा नही मिली है और शिक्षा मनुष्य को चतुर वनाती है।

सव शिक्षित मनुष्य चतुर है।
वह शिक्षित नही है।
∴ वह चतुर नही है।

असगत साध्य।

(७५) प्रत्येक सेनेटर भूल कर सकता है। इसलिये इस विषय मे सेनेट के निर्णय पर भरोसा नही किया जा सकता।

यहाँ पर हम सेनेटर (Senator) शब्द के एकान्तिक (Distributive) प्रयोग से सामूहिक (Collective) प्रयोग पर चले जाते है; इसलिये सकलन का दोष होता है।

(७६) कुछ स्त्रियाँ अच्छी नागरिका है, क्योकि सव अच्छे नागरिक मतदान करते है।

सव अच्छे नागरिक वे है जो मतदान करते है।
कुछ स्त्रियाँ वे है जो मतदान करती है।
∴ कुछ स्त्रियाँ अच्छी नागरिका है।

मध्यपद अव्याप्त है।

(७७) यदि मै सच वोलता हूँ तो लोग विरुद्ध होते है और यदि मै झूठ वोलता हूँ तो आत्मा विरुद्ध होती है। मै या तो सच वोल सकता हूँ या झूठ वोल सकता हूँ। इसलिये या तो मुझसे लोग विरुद्ध होते है या आत्मा विरुद्ध होती है।

इस द्विपाश (Dilema) के पाशो का खंडन किया जा सकता है। सच वोलने से लोग विरुद्ध हो ऐसी वात नही है और यदि हो भी तो भी सच वोलना उचित है।

(७८) यदि तुम पढोगे तो ज्ञान प्राप्त करोगे, किन्तु तुम पढते नही, इसलिये तुम ज्ञान नही प्राप्त कर सकते

इसमें पूर्वपक्ष अस्वीकृत है।

(७९) हरी अवश्य सुखी होगा, क्योकि वह नेक आदमी है और केवल नेक आदमी सुखी होते है।

सब सुखी आदमी नेक आदमी है।

हरी नेक आदमी है।

∴ हरी सुखी आदमी है।

मध्यपद अव्याप्त है।

(८०) वह शिक्षित नही हो सकता; क्योकि वह किसी पाठशाला मे भर्त्ती नही हुआ था और पाठशाला में शिक्षा दी जाती है।

वे जो पाठशाला में पढते हैं शिक्षित है।

वह उनमें नही जो पाठशाला मे पढते हैं।

∴ वह शिक्षित नही है।

इसमें असगत साध्य का दोष है।

(८१) यदि कोई परिश्रम करता है तो परीक्षा मे अच्छे अक प्राप्त करता है। जौन ने परीक्षा मे अच्छे अक प्राप्त किए है इसलिए उसने खूब परिश्रम किया है।

इसमें परपक्ष समर्थन का दोष है।

(८२) सब मनुष्य मरणशील है। महात्मा लोग मनुष्य होने के नाते मरणशील हैं।

सब मनुष्य मरणशील है। सब महात्मा मनुष्य है।

∴ सब महात्मा मरणशील है। (सगत)

(८३) यदि मुझे जीवन मे सफल होना है तो मुझे परिश्रम करने की आवश्यकता नही और यदि असफल होना है, तो भी परिश्रम की आवश्यकता नही। मैं जीवन मे या तो सफल होऊँगा या असफल। इसलिए मुझे परिश्रम करने

की आवश्यकता नही। इसमे परपक्ष पूर्वपक्ष का अनुगमन नही करता। इसलिए द्विपाश खडित किया जा सकता है —विना परिश्रम के जीवन मे सफलता नही मिलती।

(८४) अगर तुम कम खाओगे तो तुम्हारे स्नायु निर्बल हो जायेंगे। तुम्हारे स्नायु निर्बल है, इसलिये तुम वहुत कम खाते हो। इसमें परपक्ष के समर्थन का दोष है।

(८५) हर एक आदमी भलाई देखता है, इसलिए सब मनुष्य सबकी भलाई देखते है।

इसमे सकलन का दोष है। भलाई देखना पहले एकान्तिक अर्थ में लिया गया है, फिर सामूहिक अर्थ मे।

(८६) कारखाने मे धुँआ अवश्य होगा क्योकि वहाँ पर आग है और जहाँ पर धुँआँ होता है वहाँ पर आग होती है। इसमें परपक्ष के समर्थन का दोष है।

(८७) नौ है चार और पाँच, किन्तु चार और पाँच दो अक है। इसलिए नौ दो अक है। इसमे व्याकलन का दोष है। हम चार और पाँच के सामूहिक अर्थ से एकातिक अर्थ पर चले जाते है।

(८८) यह सिपाही खतरनाक है। क्योकि छोटे पद के आदमी खतरनाक होते है और यह छोटे पद का आदमी है।

इसमे सेकेन्डम क्विड का दोष है।

(८९) वह अवश्य सुखी है क्योकि वह पुण्यात्मा है। केवल पुण्यात्मा ही सुखी है।

इसमें मध्य पद के अव्याप्ति का दोष है।

(९०) राम परिश्रमी नही है। क्योकि वह पुरस्कार प्राप्त नही कर सका और केवल परिश्रमी लड़के पुरस्कार प्राप्त करते है।

इसमे असंगत साध्य का दोष है।

(९१) एक सफल मनुष्य या तो चतुर होता है या परिश्रमी यह सफल मनुष्य चतुर है। इसलिए यह परिश्रमी नही है।

यह तर्क दोषपूर्ण है। इसके वैकल्पिक एक दूसरे के विरोधी नही है। इसलिए एक के मडन से दूसरे का खडन नही हो सकता। सफल व्यक्ति चतुर और परिश्रमी दोनो हो सकता है।

(९२) यदि तुम्हारे भाग्य मे पास होना बदा है तो तुम्हे पढने की आवश्यकता नही। यदि तुम्हारे भाग्य मे फेल होना बदा है तो तुम्हे पढने की जरूरत नही। इसलिये किसी भी हालत मे तुम्हें पढने की जरूरत नही।

इसमे परपक्ष पूर्वपक्ष का अनुगमन नही करता। लोग पढकर ही पास होते हैं और अक्सर परिश्रम के साथ पढ कर पास होते है।

अध्याय २० : अनुशीलन

निम्नांकित की जॉच करो—

१. वकील सचाई का निर्वाह नही कर सकते, और जो सच्चा नही है वह विश्वासपात्र नही हो सकता। इसलिये वकीलो मे ऐसा व्यक्ति नही मिल सकता जो विश्वासपात्र हो।

२. दया, किन्तु हत्या, उनको क्षमा जो हत्यारे हो।

३. देखने से विश्वास होता है, इसलिये मै ईश्वर में विश्वास करने से अस्वीकार करता हूँ।

४. प्रस्तावित वस्तु इतनी अच्छी है कि व्यावहारिक नही हो सकती।

५. कालेजो मे अनिवार्य उपस्थिति विडम्बना है, क्योकि यदि भाषण मूल्यवान है तो लडके विना किसी दवाव के सुनेंगे। यदि वे मूल्यवान नही है, तो उनके सुनने की आवश्यकता नही।

६. केवल सच्चे व्यक्ति ईमानदार होते है, केवल सच्चे व्यक्ति सम्मानके पात्र हैं। इसलिये वे सव व्यक्ति जो सम्मान के पात्र है ईमानदार हैं।

७. यदि मनुष्यो मे स्वतन्त्र इच्छा है तो वे अपने कार्य के लिये उत्तरदायी हैं; किन्तु मनुष्यो मे स्वतत्र इच्छा नही है, इसलिये वे अपने कार्य के लिये उत्तरदायी नही हैं।

८ वह अवश्य एक गणतन्त्रवादी होगा, क्योंकि सब गणतन्त्रवादी स्वतन्त्र व्यापार (Free Trade) मे विश्वास रखते है।

९. वह एक भद्र पुरुष नही हो सकता, क्योंकि कोई भद्र पुरुष ऐसा काम नही कर सकता।

केवल अनाहूत आगन्तुक (Tress passer) दड के योग्य है। यह मनुष्य अनाहूत आगन्तुक (Tress passer) है। इसलिये यह दड के योग्य है।

११ धर्म ठीक विज्ञान नही है, ठीक विज्ञान प्रदर्शित किया जाता है, प्रदर्शित सिद्धान्त सच्चा होता है, जो सच्चा है वह लाभप्रद है, इसलिये धर्म लाभप्रद नही है।

१२ रघू साहब अभियोग से कैसे बचेगे यह मुझे नही दिखाई देता। यदि वे डा० जयराम के छापे को जानते है तो सहयोगी अपराधी ठहरते है, यदि नही जानते तो लापरवाही के अपराधी होते है। वे या तो इसे जानते है या नही जानते।

१३ यदि मुझे मरना है तो कोई डाक्टर मेरी सहायता नही कर सकता; और यदि मुझे अच्छा होना है तो किसी डाक्टर की आवश्यकता नहीं। इसलिये डाक्टर के लिये रुपया क्यो बर्बाद किया जाय।

१४ मै जो हूँ वह तुम नही हो, मैं एक भारतीय हूँ, इसलिये तुम एक भारतीय नही हो।

१५. अध्येता कभी-कभी पागल हो जाते है, वह एक अध्येता नही है। इसलिये उसको पागल होने का कोई खतरा नही है।

१६ कोई हास्य समयानुकूल नही होता, परीक्षा हास्य नहीं है; इसलिये परीक्षा समयानुकूल नही है।

१७. यदि कोई जाति अपने शासक द्वारा सताई जाती है तो वह सम्पन्न नहीं होती, भारतीय सम्पन्न नही है, इसलिये भारतवर्ष अपने शासक द्वारा सताया जाता है।

१८. मेरी प्रशसा या निन्दा हरगिज मत करो, अगर प्रशसा किया तो लोग

तुम्हारा विश्वास नही करेंगे और अगर निन्दा की तो जितना तुम कहोगे उससे कही अधिक वे मानेंगे।

१९ कविता या तो सच है, या झूठ। यदि झूठ है तो गलत रास्ते पर ले जाती है। यदि सच है तो प्रच्छन्न इतिहास है। इसलिये कुछ दार्शनिको ने कविता को आदर्श सयुक्त राष्ट्र (Ideal Commonwelth) से अलग करके वुद्धिमानी की है।

२० प्रत्येक सैनिक अपने देश की सेवा करता है। स्त्रियाँ सैनिक नही है। इसलिये स्त्रियाँ अपने देश की सेवा नही करती।

२१ ध्वनि अदृश्य होती है, रग ध्वनि नही है; इसलिये रग अदृश्य है।

२२ मनुष्य अपने लोगो के साथ इच्छानुसार व्यवहार करने के लिये स्वतंत्र है, इसलिये वह अपनी पत्नी को पीट सकता है।

२३ दड सव अपमानसूचक है, इसलिये उनसे नैतिक उन्नति नही हो सकती।

२४. तुम विना किसी खटके के पाप कर सकते हो, क्योंकि या तो ईश्वर अन्यायी है, या कोई मनुष्य सदैव के लिये दंडित नही हुआ है।

२५. राज्य का कर्तव्य है कि सव अधिकारो को व्यावहारिक रूप दे। अदालती दया एक अधिकार है। इसलिये राज्य का यह कर्तव्य है कि अदालती दया को व्यावहारिक रूप दे।

२६ मछली दूध पिलानेवाली जन्तु नही है, इसलिये मछली का भोजन दूध पिलाने वाले जन्तुओ का भोजन नही है।

२७ लूथर के अनुयायी प्रोटेस्टैन्ट्स हैं, कालविन के अनुयायी लूथर के अनुयायी नही है। इसलिये कालविन के अनुयायी प्रोटेस्टैन्ट्स नही हैं।

२८. तीन और दो ताख और जूस है, तीन और दो पाँच होते हैं। इसलिये पाँच ताख और जूस है।

२९ पेरिस ने हेलेन को ले जाने मे कोई अपराध नही किया, क्योकि उसके वाप ने उसे अपना वर चुनने की स्वतत्रता दे रक्खी थी।

३०. मृत्युकर न्यायपूर्ण है, क्योकि वसीयतनामे से जो सम्पत्ति एक से दूसरे को मिलती हैं उस पर कर लगाना चाहिये।

३१. क्रान्तिकारी सुधारक है, इसलिये सुधारक क्रान्तिकारी है।

३२. उच्च न्यायालय के न्यायाधीश सम्मान के साथ सम्बोधित किये जाते है, यह मनुष्य सम्मान के साथ सम्बोधित किया जाता है, इसलिये यह मनुष्य उच्च न्यायालय का न्यायाधीश है।

३३ रोगग्रस्त मनुष्य जब रोग से मुक्त होते है, तो अच्छे होते है। यह रोगग्रस्त मनुष्य रोग से मुक्त हुआ है। इसलिये यह रोगग्रस्त मनुष्य अच्छा है।

३४. छ है कुछ थोडा। छत्तीस है छ का छ गुना। इसलिये छत्तीस है कुछ थोडा।

३५. सद्गुण से सुख मिलता है। इसलिये सुख से सद्गुण मिलता है।

३६ ईमानदारी सबसे अच्छी नीति है। इसलिये बेईमानी सबसे निकृष्ट नीति है।

३७ अशिक्षित मनुष्यो का निर्णय ठीक नही होता। इसलिये अशिक्षितो का कोई निर्णय ठीक नही होता।

३८ अहमक लोग मनुष्य नही हो सकते, क्योकि मनुष्य विचारवान होते है।

३९ मनुष्य पापी होते है, महात्मा मनुष्य होते है, इसलिये महात्मा पापी है।

४०. कोई युवक बुद्धिमान नही होता, क्योकि बुद्धिमत्ता अनुभव से आती है और अनुभव उम्र के साथ बढता है।

४१ केवल बच्चे ऐसा व्यवहार करते है, इसलिये जो कोई ऐसा व्यवहार करता है वह बच्चा है।

४२. केवल असदिग्ध भाषा वैज्ञानिक होती है, तर्कशास्त्र की भाषा असदिग्ध है, इसलिये यह अवश्य वैज्ञानिक है।

४३ केवल भौतिक पदार्थ वजन रखते है, प्रकाश वजन नही रखता। इसलिये प्रकाश भौतिक पदार्थ नही है।

४४. सन्तोषी को छोडकर कोई सुखी नही है, सद्गुणियो को छोड कोई सन्तोषी नही है, बुद्धिमानो को छोडकर कोई सद्गुणी नही है, इसलिये बुद्धिमानो को छोडकर कोई सुखी नही है।

४५. सदाचार के लिये ओजपूर्ण भाषण देना व्यर्थ है, क्योकि सज्जनो को इसकी आवश्यकता नही है और दुर्जन इसकी ओर ध्यान नही देगे।

४६ यह कथन अति उत्तम है इसलिये सच्चा नही हो सकता।

४७. उसे उन्माद का भय नही है, क्योकि उसमे विद्वता नही है, और केवल विद्वता ही मनुष्य मे उन्माद लाती है।

४८ केवल सच्चे मनुष्य ईमानदार होते है, केवल सच्चे मनुष्य सम्मान के पात्र होते है। इसलिये सब मनुष्य जो सम्मान के पात्र है ईमानदार है।

४९. यदि मनुष्य स्वतत्र इच्छा नही रखता तो वह अपने कार्य के लिये उत्तरदायी नही, किन्तु मनुष्य स्वतन्त्र इच्छा रखते है इसलिये वे अपने कार्य के लिये उत्तरदायी है।

५० दार्शनिक लोग दुनियाबी वस्तुओ की परवाह नही करते, इसलिये वह एक दार्शनिक है।

अध्याय २१

भारतीय अनुमान के सिद्धान्त

भारतीय भौतिकतावादी, चारवाक, केवल प्रत्यक्ष ज्ञान को ही प्रमाण रूप मानता था। उसका कहना था कि अनुमान (Inference) प्रामाणिक ज्ञान नही कहा जा सकता। सामान्यत ऐसा माना जाता है कि अनुमान ऐसे निर्णय-वाक्य (Proposition) को अपनी आधारभित्ति बनाता है, जो हेतु (Middle term) और साध्य (Major term) मे आवश्यक सम्बन्ध अथवा व्याप्ति स्थापित करता है। किन्तु चारवाक का कहना था कि हम कुछ इने-गिने विशिष्ट दृष्टान्तो द्वारा इस सम्बन्ध को नही स्थापित कर सकते। उदाहरणार्थ हम धुएँ के दृष्टान्त को ले सकते है। हम देखते है कि

जहाँ धुआँ है, वहाँ आग है, परन्तु ऐसे उदाहरण सीमित हैं, अपरिमित नही। जहाँ तक हम निरीक्षण कर सके हैं वहाँ तक हम जहाँ धुआँ पाते है, वहा आग भी पाते हैं। परन्तु हमारे निरीक्षण का क्षेत्र सीमित है। इस सीमा के वाहर भी क्या यह कथन वैसा ही सत्य होगा अर्थात् जहाँ धुआँ होगा वहाँ आग होगी, इसे हम निश्चयपूर्वक नही कह सकते। अर्थात् हम निश्चयपूर्वक यह नही कह सकते कि धुआँ और आग का साहचर्य सर्वत्र है, सदैव है। चारवाक का कहना है कि हम खाश-खाश उदाहरणो के वल पर कोई व्याप्ति (Universal Proposition) नही वना सकते। जव हम कोई व्याप्ति ही निश्चित नही कर सकते तब ज्ञात से अज्ञात के विषय मे अनुमान (Inference) निकालने का प्रश्न ही नही उठता।

चारवाक के अनुसार अनुमान प्रामाणिक ज्ञान नहीं कहा जा सकता।

वैयक्तिक उदाहरणों के बल पर सामान्य नियम नहीं बनाया जा सकता।

इसके प्रतिकूल चारवाक का कहना है कि व्याप्ति (Universal Proposition) को सामान्य नियम (Generalisation) माना ही जाता है, जिसके अन्तर्गत सब वैयक्तिक उदाहरण आ जाते है, तो फिर अनुमान की क्या आवश्यकता? उदाहरण के लिये हम यह सामान्य निर्णय-वाक्य, "सब मनुष्य मर्त्य हैं" ले सकते है। यह निर्णय-वाक्य यदि सभी वैयक्तिक दृष्टान्तो को अपने अन्तर्गत नही रखता तो सामान्य (Universal) नही कहा जा सकता। भूत, भविष्य, और वर्तमान के सभी मनुष्यो के वारे में यह समान रूप से घटित होता है इसीलिये सामान्य कहा जाता है। यदि ऐसा है, तो किसी व्यक्ति विशेष के वारे में यह अनुमान निकालाने की आवश्यकता नही कि वह मर्त्य है। यदि हम ऐसा अनुमान निकालते है तो उसमें आत्माश्रय (Petitio Principii) का दोष आ जाता है। जैसे—

चारवाक के अनुसार न्याय (Syllogism) में Petitio Principii का दोष आ जाता है।

"सब मनुष्य मर्त्य है।
सुकरात एक मनुष्य है।
∴ सुकरात मर्त्य है।"

चारवाक के अनुसार यह तर्क नही बल्कि तर्काभास है। क्योकि हम जो अनुमान निकालते है उसे पहले ही जानते रहते है। सामान्य वाक्य मे उसका पहले ही जिक्र कर दिया जाता है। हम समझते है कि आधार-वाक्यो (Premises) से हम अनुमान निकाल रहे है पर वास्तव मे हम उन्ही की पुनरावृत्ति मात्र कर देते है। अस्तु, चारवाक के अनुसार अनुमान ज्ञान का प्रामाणिक उद्गम नही माना जा सकता।

भट्ट मीमासाकारो का मत

भट्ट मीमासा कारो का कहना है कि अनुमान में हम एक वैयक्तिक दृष्टान्त से दूसरे दृष्टान्त पर पहुँचते है। परन्तु वे यह भी कहते है कि कभी-कभी हम वैयक्तिक से ऊपर उठकर सामान्य तक पहुँच जाते है यदि, भट्ट के अनुसार, हम वैयक्तिक से वैयक्तिक पद पर पहुँचते है तो वे वैयक्तिक भी एक प्रकार के होगे। कम से कम वे एक-दूसरे से साम्य रखते होगे। यदि वैयक्तिक परस्पर बिल्कुल अछूते है तो हमारा एक से दूसरे पर जाना अथवा कुछ वैयक्तिको से कुछ अन्य पर पहुँचना सम्भव नही। भट्ट वास्तव में सम्बन्ध साम्य को अनुमान का आधार मानते है।

अनुमान एक वैयक्तिक से दूसरे वैयक्तिक पर पहुचाता है।

भट्ट के मत की मिल से तुलना

अनुमान के सम्बन्ध मे भट्ट का मत मिल के मत से मिलता-जुलता है। मिल का कहना है कि अनुमान साम्य के आधार पर एक वैयक्तिक से दूसरे वैयक्तिक पर पहुँचने की मानसिक प्रगति है। और जिस तरह भट्ट कहते है कि कभी-कभी हम वैयक्तिक से सामान्य पर पहुँचते है उसी तरह मिल भी कहते है कि हम वैयक्तिक से सामान्य पर पहुँचते है। मिल के मत के अनुसार वैयक्तिक से ही सामान्यीकरण (Generalisation) हो सकता है।

भट्ट और मिल के अनुसार वैयक्तिक में वैयक्तिक का साम्य ही अनुमान का आधार है।

प्रभाकर मीमासाकारो का मत

हम ऊपर देख चुके है कि चारवाक के अनुसार अनुमान प्रामाणिक ज्ञान नही है, क्योकि जैसा वह कहता है, अनुमान मे हम निष्कर्ष में कोई नई चीज नही पाते; सर्वव्याप्तिमय वाक्य मे जो हम कहते है, उसी की पुनरावृत्ति मात्र निष्कर्ष में कर देते है। प्रभाकर मीमासाकार चारवाक के मत का खडन करते है। वे कहते है कि अनुमान व्याप्ति (Universal Propositions) पर आधारित रहता है। हम अनुभव के आधार पर व्याप्ति की स्थापना कर सकते है। वे फिर कहते है कि व्याप्ति का निर्माण सम्पूर्ण वर्ग के लिये होता है। वह किसी वैयक्तिक उदाहरण के लिये सीधा घटित हो ऐसी बात नही है। इसलिये प्रभाकर का कहना है कि अनुमान में व्याप्ति पर आधारित आत्माश्रय (Petitio Principii) का दोष नही आता। वे कहते है कि जिस वैयक्तिक के लिये हम निष्कर्ष निकालते है उसे हम केवल अनुभव से जानते है, न कि व्याप्ति से जो कि अनुमान के आधार वाक्यो में से एक वाक्य है। यह निस्सन्देह सत्य है कि निर्णय वाक्य (Proposition) "जहाँ धुआँ है वहाँ आग है," केवल धुआँ और आगमे आवश्यक सम्बन्ध बतलाता है। इससे न हम जानते है न व्यक्त करते है कि वास्तव मे कहाँ कहा पर धुआँ है। यदि हम किसी पहाडी पर धुआँ देखकर यह अनुमान निकालते है कि वहाँ आग है, तब पहाडी पर धुआँ का होना वैयक्तिक उदाहरण होगा। यह वैयक्तिक उदाहरण अनुभव से जाना जाता है। "जहाँ पर धुआँ है वहाँ पर आग है" इस वाक्य से पहाडो की स्थिति नही बताई जा सकती, वह अनुभवजन्य है।

वैयक्तिक से सामान्य पर पहुचा जा सकता है।

न्याय का मत

नैयायिक चारवाक के इस मत का खडन करते है कि प्रत्यक्ष इन्द्रियानुभूति ही ज्ञान का एक पात्र उद्गम है। वे भट्ट के भी मत को भी 'अनुमान वैयक्तिक से वैक्तिक पर पहुँचाता है', अस्वीकार करते है। नैयायिको का कहना है कि अनमान सामान्य से वैयक्तिक की ओर गतिशील

नैयायिक चारवाक और भट्ट दोनो के मत का खडन करते हैं।

होता है। वे जोर देकर कहते हैं कि अनुमान की आधार भित्ति व्याप्ति है और व्याप्ति के लिये कुछ प्रामाणिक साधन हैं।*

अब न्याय के अनुमान के सिद्धान्त को हम तब तक नही समझ सकते जब तक कुछ ऐसे सस्कृत पदो के जैसे, पक्ष, साध्य, और हेतु या लिंग या साधन, अर्थ नही समझ लेते। इनके अंग्रेजी पर्यायी क्रम से, लघु (Minor), दीर्घ (Major) और मध्य (Middle) पद हैं। फिर भी भारतीय न्यायशास्त्र मे पक्ष पद का कुछ विशिष्ट अर्थ होता है।

पक्ष (Minor), साध्य (Major) और हेतु (Middle) पद।

पाश्चात्य न्यायशास्त्र मे रीति अथवा आकार पर ही जोर दिया जाता है, यदि आधार-वाक्य और निष्कर्ष का सम्बन्ध-विधान रीत्यानुसार है तो उनके लिये पर्याप्त है। पाश्चात्य नैयायिक इस बात की छानबीन के लिये उतना महत्व नही देते कि आधार-वाक्य (Premises) सत्य है या नही जितना रीति की अनुकूलता को देते है।

भारतीय न्यायशास्त्र विशेष करके "न्याय वैशेषिक' अनुमान की आवश्यकीयता (Necessity) और वास्तविकता की प्रामाणिकता (Material Validity) दोनो को महत्व देता है। निष्कर्ष या निगमन का आधार-वाक्यो का अनुगमन आवश्यकीयता कहा जाता है। इसके प्रतिकूल

रीत्यानुसारिता और वस्तु-प्रामाणिकता (Necessity and Material Validity)

वास्तविकता की प्रामाणिकता वस्तु या तथ्य की स्थिति से प्रमाणित होती है। यह अनुमान की क्रिया से बाहर की वस्तु है। वस्तु की प्रामाणिकता आधार-वाक्यो (Premises) पर, विशेष करके पक्ष (Minor term) पर अवलम्बित रहती है। भारतीय न्यायशास्त्र मे पक्ष केवल एक मानी हुई वस्तु (Supposal) नही होता, बल्कि किसी तथ्य का द्योतक होता है, जो प्रत्यक्ष सम्वेदन या अन्य प्रकार से बाह्य ज्ञान के रूप में जिज्ञासु को प्राप्त होता है।

---

* देखो दूसरा भाग (आगमन) अ० १५।

अनुमान और अनुमिति में अन्तर

अनुमान, अनुमिति और परामर्श।

नैयायिक अनुमान और अनुमिति मे अन्तर वतलाते है। अनुमान निष्कर्ष प्राप्त करने की समस्त क्रिया को कहते है। इसके अन्तर्गत निगमन भी होता है। अनुमिति केवल निष्कर्ष प्राप्त करने की क्रिया को कहते है। नैयायिको के अनुसार अनुमिति एक प्रकार का वोध (Cognition) है जिसमें परामर्श (SubSumptive reflection) अन्तर्निहित रहता है। उनके अनुसार परामर्श अनुमान का आवश्यक पूर्वगमनक (Antecedent) होता है। इसलिये परामर्श वह वोधग्रथि (Complex Cognition) है जो उस समय उद्भूत होता है जव हम पक्ष में हेतु का प्रत्यक्षानुभूति करते है और पक्ष को प्रासगिक अनुरूपता के अनुसार सामान्य समवाय (व्याप्ति) के अन्तर्गत लाते है। निम्न उदाहरण से इसे स्पष्ट किया जाता है। इस अनुमान में—"सामने पहाड पर आग है, क्योकि वहाँ उस पर धुआँ है।" पहाड़ पर धुआँ का होना जो अनिवार्य रूप से आग से सम्वन्धित है, परामर्श कहा जाता है। वोध की यह प्रक्रिया लिग-परामर्श भी कही जाती है।

मीमासाकार और वेदान्ती नैयायिकों के विरुद्ध है

अनुमान किसी माध्यम से प्राप्त प्रत्यक्षानुभूति पर आधारित ज्ञान है।

मीमांसाकार और वेदान्ती यहाँ तक तो नैयायिको से सहमत है कि अनुमान वह ज्ञान है जो किसी माध्यम से प्राप्त होता है, किन्तु प्रत्यक्षानुभूति पर आधारित रहता है, फिर भी वे नैयायिको से इस वात मे सहमत नही है कि अनुमान के अन्तर्गत परामर्श का होना अपरिहार्य है। वे कहते है कि कुछ दशाओ में अनुमान के अन्तर्गत परामर्श तो अवश्य आता है, किन्तु सवमे नही। सामान्यत हम तभी अनुमान की क्रिया कर डालते है, जव पक्ष में हेतु का प्रत्यक्षानुभूति करते है और व्याप्ति (Universal Concomitance) और निगमन का स्मरण करते है। नैयायिको का कहना है कि हेतु से निगमन की प्रगति और व्याप्ति का

ज्ञान इतना शीघ्र होता है कि लोग परामर्श से अवगत न हो सके हो, गोकि वह अनुमान की प्रक्रिया मे अनिवार्य रूप से विद्यमान रहता है। वे कहते है कि केवल पक्ष मे हेतु की प्रत्यक्षानुभूति तथा व्याप्ति का ज्ञान अनुमान के लिये पर्याप्त नही हो सकता। वे कहते है कि निगमन तक पहुँचने के पहले हमें पक्ष को व्याप्ति के अन्तर्गत लाना ही पड़ता है।

नैयायिकों के अनुसार परामर्श अनुमान का एक आवश्यक सोपान है।

अनुमान के प्रकार

स्वार्थानुमान और परार्थानुमान

भारतीय न्यायशास्त्र (Logic) मे अनुमान दो प्रकार के माने गये है। उनमे से एक स्वार्थानुमान और दूसरा परार्थानुमान कहा जाता था स्वार्थानुमान अपने आपके लिए और परार्थानुमान दूसरे के लिये होता था। (१) स्वाथानुमान मे इस बात पर विचार किया जाता है कि किस तरह अनुमान स्वानुभूति में घटित होता है। इस अनुमान मे तीन सोपान होते है, तदनुसार तीन निर्णय-वाक्य (Proposition) भी होते है। जैसे जब कोई मनुष्य इस सामान्यीकरण (Generalisation) पर पहुँचता है कि "जहाँ धुआँ है वहाँ आग है" तो पहले उसे यह प्रत्यक्षानुभूति (Cognition) होती है कि सामने पहाड पर धुआँ है जो कि अनिवार्य रूप से आग से सम्बन्धित है।" इन दी हुई शर्तो के अनुसार वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि, "सामने के पहाड पर आग है।"

स्वार्थानुमान और परमार्थानुमान

परार्थानुमान ही न्याय (Syllogism) है, जो पाँच सोपान का होता है इसलिये उसमे पाँच निर्णय-वाक्य (Proposition) होते है। परार्थानुमान में पाँच अवयव होते हैं। इसीलिये इसे पचावयव भी कहते है। यह तार्किक (Logical) और मनोवैज्ञानिक (Psychological) दोनो आधारो का पूर्ण व्याख्यात्मक रूप है। जिससे अन्य लोग अनुमान की

प्रक्रिया को भली-भाँति समझ सकते हैं। पंचावयव का सिद्धान्त नैयायिको और वैशेषिको द्वारा पूर्णाति को पहुँचाया गया था।

न्याय (Syllogism) के पाँचो अवयव निम्नांकित हैं :—

(१) प्रतिज्ञा—जो सिद्ध करना है। (२) हेतु, (३) उदाहरण, (४) उपनय (Subsumptive Correction), (५) निगमन।

मूर्त्त उदाहरण :—

(१) पहाड पर आग है	प्रतिज्ञा
(२) क्योकि इस पर धुआँ है	हेतु
(३) जैसे भोजनालय में वैसे ही जहाँ धुआँ होता है वहाँ आग होती है	उदाहरण
(४) ऐसा ही इस पहाड पर है	उपनय
(५) इसलिये यह पहाड भी वैसा ही है, अर्थात् इस पहाड पर आग है।	निगमन

न्याय के पचावयव सम्बन्धी सिद्धान्त की बौद्धो, मीमासाकारो और अद्वैत वादियो के मत से तुलना :—

मीमासाकारो और अद्वैतवादियो के अनुसार परार्थानुमान में केवल तीन अवयव होते हैं। उनका कहना है कि जो-कुछ स्वार्थानुमान में अव्यक्त रहता है वही परार्थानुमान मे व्यक्त किया जाता है। इसलिये परार्थानुमान स्वार्थानुमान का ही व्यक्त रूप है। इस-लिये वे कहते हैं कि न्याय (Syllogism) में केवल तीन ही सोपान होते हैं। चाहे, प्रतिज्ञा, हेतु और उदाहरण को लें या उदाहरण, उपनय और निगमन को ले। वे कहते हैं कि अनुमान में प्रबन्स (हेतु) और प्रवन्वम (निष्कर्ष) की व्याप्ति और प्रवन्स (हेतु) में पक्ष की विद्यमानता के ज्ञान के आधार पर हम निगमन पर पहुँचते हैं। तात्पर्य यह कि व्याप्ति और पक्षधर्मता के आधार पर हम निगमन को प्राप्त करते हैं। जिसके बारे मे हम निष्कर्ष निकालते है वह हेतु रखता है जो कि साध्य (प्रवन्वम) से अनिवार्य रूप से सम्बन्धित है। इसे वे पक्ष धर्मता कहते थे। मीमासाकारो

मीमांसाकारों और अद्वैतवादियो का मत

और अद्वैतवादियो का कहना है कि ऊपर कथित दो समूहो मे से कोई तीन अवयव का समूह लेने से परार्थानुमान का काम निकल जाता है।

बौद्ध लोग परार्थानुमान को दो अवयव का न्याय (Syllogism) निरूपित करते है। वे कहते हैं कि अनुमान के लिये केवल दो अवयवो की आवश्यकता है।। व्याप्ति और पक्षधर्मता को ही वे अनुमान के लिये पर्याप्त मानते थे। इसलिये उनके अनुसार उदाहरण (Universal Concomitance with example) और उपनय (Subsumption) अनुमान के लिये पर्याप्त है। बौद्धो का कहना है कि भाषा मे व्यक्त न्याय (Syllogism) का आकार तर्क (Reasoning) के लिये एक सहारा मात्र है। श्रोता ऊपर कथित दो अवयवो से अनुमान का पूरा अर्थ समझ लेता है। इसलिये अन्य अवयवो की आवश्यकता नही।

दो अवयवों का न्याय (Syllogism)

मध्वाचार्य के अनुसार परार्थानुमान के अवयव, जिस व्यक्ति से कहा जाता है, उसके ज्ञान पर निर्भर है। इसलिये परार्थानुमान के अवयवो की कोई निश्चित संख्या नही बताई जा सकती। जैन लोग नैयायिको के मत को मानते है यद्यपि वे कुछ बातो मे मतभेद रखते है। परन्तु यह मतभेद छोटी-मोटी बातो में ही है। सामान्य नियमो मे नही। वास्तव में यह सत्य है कि पक्ष मे हेतु रहे और प्रसगानुसार व्याप्ति का वर्णन रहे तो हम आसानी से निगमन प्राप्त कर सकते है। फिर भी नैयायिको का पाँच अवयव का न्याय (Syllogism) अपना महत्व रखता है? यह सच है कि अनुमान की प्रक्रिया जिस रूप मे घटित होती है पंचावयव उसका व्यक्तीकरण नही है फिर भी हमें यह जानना चाहिए कि पचावयव एक ऐसी विधि आविष्कृत की गई है जिससे श्रोता को यह स्पष्ट हो जाता है कि अनुमान किस तरह से निकाला गया है।

पूर्ववत, शेषवत और सामान्यतोदृष्ट मे अनुमान का विभाजन

अनुमान पूर्ववत, शेषवत और सामान्यतोदृष्ट मे विभाजित किया जाता है।

(१) जब हम दिये हुये कारण से कार्य का अनुमान निकालते है तब वह

अनुमान पूर्ववत कहा जाता है। क्योकि कार्य कारण के सम्बन्ध में कारण कार्य के पूर्व आता है। इसलिये कारण से निकाला हुआ अनुमान ठीक ही पूर्ववत कहा जाता है। कारण कार्य का पूर्वपक्ष होता है। यदि आकाश मे काले बादल छा जायँ और इससे यदि हम यह अनुमान निकालें कि वर्षा होगी तो यह पूर्ववत अनुमान होगा।

पूर्ववत अनुमान

(२) इसके प्रतिकूल शेपवत अनुमान मे हम दिये हुये कार्य से कारण पर पहुँचते हैं। जैसे, नदी में बाढ आये और उससे यदि हम यह निष्कर्ष निकाले कि बहुत जोर से वृष्टि हुई है तो यह शेपवत अनुमान होगा।

शेषवत अनुमान

(३) सामान्यतो दृष्ट अनुमान मे व्याप्ति (Universal Concomitance) का कारणता (Causality) से सम्बन्ध नही रहता। इस प्रकार के अनुमान मे हम हेतु के आधार पर साध्य का निष्कर्ष निकालते हैं। हम ऐसा इसलिये नही करते कि वे कारण कार्य के रूप मे सम्बन्धित है वरन् इसलिये करते हैं कि वे हमारे अनुभव मे बराबर एक-दूसरे से सम्बन्धित देखे जाते है, जैसे यह अनुमान, "मस्तिष्क अवश्य गुण से युक्त है क्योकि यह एक पदार्थ है" सामान्यतोदृष्ट कहा जाता है। ऐसा बराबर देखा जाता है कि पदार्थ मे गुण होता है। मस्तिष्क एक पदार्थ है। इसलिये मस्तिष्क में भी गुण है। ऐसा अनुमान कभी-कभी साधारण साम्य (Analogy) मात्र दिखलाया जा सकता है। जैसे, कोई पदार्थ जो गति शील होता है अपना स्थान परिवर्तित करता है। पृथ्वी सूर्य की दूरी से अपना स्थान परिवर्तित करती है। इसलिये पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है। स्पष्ट है कि अनुमान साम्य पर आधारित है। साम्य (Analogy) अनुमान का वह प्रकार है जो दो वस्तुओ के सम्बन्ध साम्य पर आधारित रहता है।*

सामान्यतोदृष्ट अनुमान

---

* देखो दूसरा भाग (आगमन), अध्याय १०।

अनुमान के मूलभूत सिद्धान्त

अनुमान में व्याप्ति (Generalization) रहती है।

जैसा कि हम ऊपर देख चुके है। प्राचीन काल के भारतीय तर्कशास्त्र के विद्वानो के अनुसार अनुमान के अन्तर्गत व्याप्ति रहती है। इसलिये अनुमान मूलतः निगमनात्मक होता है। पाश्चात्य न्याय (Western Logic) मे आगमन (Induction) भी एक अनुमान माना जाता है। भारतीय तर्कशास्त्र मे भी आगमन (Induction or Generalisation) साधारणत अनुमान का एक आवश्यक तत्व माना जाता है और व्याप्ति के भिन्न-भिन्न मूल स्रोतो की व्याख्या भी की जाती है, किन्तु वे साधारणत व्याप्ति को अनुमान नही मानते। वे इसे केवल इतना ही मानते है कि यह औरो के साथ मिलकर अनुमान को पूरा करती है। केवल थोडे से तर्कशास्त्री, जैसे मीमासाकार भट्ट और मध्वाचार्य कहते है कि व्याप्ति अनुमान द्वारा प्राप्त की जा सकती है।

हेत्वाभास (Fallacy of Reason)

अनुमान हेतु पर आधारित रहता है। यदि हेतु दोषयुक्त हुआ तो अनुमान में तर्काभास आ जाता है। नैयायिक लोग पाँच प्रकार के हेत्वाभास मानते है, तदनुसार पाँच तर्काभास अनुमान मे भी माने जाते है ? वे निम्न प्रकार है।

(१) **सव्यभिचार या अनैकान्तिक**—जब हेतु साध्य से एकान्तिक रूप से सम्बन्धित नही होता अर्थात् जब इनमें एकत्रव्यवस्था नही होती है तब अनुमान मे यह हेत्वाभास होता है। जैसे, "पहाड़ पर आग है, क्योकि यह जाना जा सकता है।" ऐसी बहुत-सी चीजे है जो जानी जा सकती है किन्तु उन सब मे आग नही होती। 'जानी जा सकने' और आग मे एकान्तिक सम्बन्ध (Invariable Connection) नही है। हेतु, 'जानी जा सकना', इसलिये दोषयुक्त है। इस दोष को सव्यभिचार* कहते है।

(२) **विरुद्ध हेतु**—जिस हेतु से (जो बात सिद्ध करनी है उससे) उलटा

* साध्यतज्जातीयान्यवृत्तित्व व्यभिचार ।

सिद्ध हो या हो सकता हो वहाँ विरुद्ध हेतु होता है। विरुद्ध हेतु, प्रवन्धम या साध्य से सदैव अलग रहता है। जैसे, "शब्द नित्य है, क्योंकि यह निर्मित होता है।" इसमे हेतु और साध्य में कोई आवश्यक सम्बन्ध नही है। हम जानते है कि जो-कुछ निर्मित होता है वह ऐहिक है। निर्माण और ऐहिकता का अपरिहार्य योग है। इसलिये उक्त उदाहरण मे हेतु दोषपूर्ण है और इस साध्य को सिद्ध नही कर सकता कि शब्द नित्य है।

(३) **सत्प्रतिपक्ष हेतु**—वह हेतु जिसके विपक्ष में तुल्य बलवान हेतु वर्तमान हो उसे सत्प्रतिपक्ष हेतु कहते है। जैसे, "शब्द नित्य है क्योकि यह शब्दत्व की भाँति कर्णगोचर है।" इसके प्रतिकूल कहा जा सकता है "शब्द अनित्य है, क्योंकि यह निर्मित किया जाता है।" यहाँ पर हेतु, 'कर्णगोचरता' के, जिसके बल पर शब्द की नित्यता सिद्ध करने की चेष्टा की जाती है, विरुद्ध मे उतना ही सबल एक दूसरा हेतु, निर्माण, जिससे शब्द की अनित्यता सिद्ध होती है, रखा गया है। इससे पहला हेतु खडित हो जाता है।

(४) **असिद्ध हेतु**—वह हेतु है जो सिद्ध न हो। जैसे, "पहाड पर धुआँ है क्योकि वहाँ आग है।" यहाँ पर हेतु सिद्ध नही है। आग और धुआँ मे अपरिहार्य साहचर्य नही होता। यह तो बेशक सच है कि "जहाँ पर धुआँ है वहाँ पर आग है।" बिना आग के धुआँ हो ही नही सकता किन्तु ऐसी बात नही है कि बिना धुआँ के आग हो ही नही सकती। मोमबत्ती बिना धुआँ फेंके ही जलती है। इतना जरूर है कि बहुत से ईंधन बिना धुआँ फेंके नही जलते। इसलिये उन दशाओ मे जहाँ पर आग है वहाँ धुआँ है किन्तु यह बात सब दशा के लिये नही कही जा सकती। इसलिये आग की उपस्थिति से हम धुएँ की उपस्थिति का निष्कर्ष नही निकाल सकते।

(५) **बाधित हेतु** —वह हेतु जो प्रत्यक्षानुभूति के विरुद्ध हो। जैसे, "आग ठडी है, क्योकि यह द्रव्य है।" इसमे "ठडी होना' साध्य है इसका विरोधी है "गर्म होना'। हम अनुभव से आग को गर्म पाते है। इससे हमारी प्रत्यक्षानुभूति हेतु 'द्रव्य' को जिसके द्वारा हम आग को ठडी सिद्ध करना चाहते है, बाधित कर देती है।

References : 1. The Positive Science of the Hindus—
B. N Seal.
2. A Primer of Indian Logic—
S Kupuswami Sastri.
3. Outlines of Philosophy of Sri Madhwacharya—B A. Krishna Swami Rou.
4. Tark Sangrah of Annambhatta—
K. C. Mehendale & D J Dalvi &
Pandit Bhavani Shanker Sastri.
5. Sarvadarshan Sangrah—Ed. by M. Pal.
6. Vedanta Paribhasa—Ed by Swami
Madhwanand
7. Bhasa Paricchedah—Ed. by Pandit
Guru Nath Vidyanidhi.

उत्तर-प्रदेश शिक्षा-परिषद् के प्रश्नपत्र

इण्टरमीडिएट परीक्षा

प्रथम प्रश्नपत्र

१९५०

१ तर्कशास्त्र क्या है ? मनोविज्ञान और दर्शन मे यह किस प्रकार भिन्न है ?

२ विधेयो को वतलाइये और उनके अर्थ समझाइये। विधेय का विधेय पद से विश्लेषण कीजिये ।

३ (अ) प्रतिज्ञा मे पदो के वितरण को वतलाइये और समझाइये।

(आ) निम्नलिखित का उचित तार्किक रूप वताइये।

१. दो छोड सव मारे गये।

२ जो सव अधिक पढते है वे वुद्धिमान नही होते ।

३ इस फाटक से रेखागणितज्ञ ही प्रवेश कर सकते है।

४. निम्नलिखित की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिये।

१ परिमिति से परिवर्तन।

२ सवर्त्तित परिवर्तन ।

३ पूर्ण प्रत्यावर्तन।

४ आंशिक विपर्यय।

५ (अ) यदि अनुमान का मध्यम पद दोनो अवयवो में वितरित है, तो उत्तर अवयव के विषय में हम क्या जानते है ?

(आ) प्रमाणित कीजिये कि पहले अनुमान रूप में अवयव नही हो सकता।

६ सुराज्य के लिये समाचार-पत्रो की आवश्यकता है, इस भाव का एक डाइलैमा (काल्पनिक वैकल्पिक अनुमान) बनाइये और उसका उत्तर भी दीजिये।

७ स्वार्थ अनुमान परार्थ अनुमान मे विश्लेषण कीजिये। पिछले की सब श्रेणियाँ उदाहरण देकर समझाइए।

८. उपयुक्त उदाहरण देकर निम्नलिखित मे से किन्ही दो की व्याख्या कीजिये।

१. सत्याभिचार हेतु

२ असिद्धहेतु

३ विरुद्ध हेतु

४. सत्प्रति पक्ष हेतु।

९ निम्नलिखित युक्तियो मे से किन्ही चार की परीक्षा कीजिये, उनका पूरी रीति से परिच्छन्न कीजिये। उनमे यदि कोई आभास हो तो बताइये।

(क) साम्यवाद का दमन आवश्यक है, क्योकि वह कौटुम्बिक सम्बन्धो का विनाश करता है।

(ख) त्रिभुज के कोण दो समकोणो के तुल्य होते है। क, ख, ग, एक त्रिभुज के कोण है। इसलिये वह दो समकोणो के तुल्य है।

(ग) किसी पदार्थ का मान उष्ठा करने से कम हो जाता है, क्योकि उसके अणु तब सन्निकट जाते है।

(घ) जब वह दोषहीनता जतलाता है, तो मै पूछता हूँ कि उसने माल क्यो लुटाया जैसा करने से कोई चोर नही चूकता।

(ड) जो मनुष्य शिक्षित होता है, वह हाथो से काम करना नही चाहता, इसलिये यदि शिक्षा सार्वजनिक हो जायगी, तो उद्योग बन्द हो जायेगे।

(च) चारुदत्त महा विद्वान है, क्योकि वह काशीवासी है।

१९५१

१. "तर्कशास्त्र विज्ञानो का विज्ञान है" कथन पर विवेचनात्मक दृष्टि डालिये।

२ निम्न पदो की तार्किक विशेषताएँ बतलाइये।

वहरा, वर्ग, साकरेटीस, भारतीय गण राज्य का राष्ट्रपति, वनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, सुन्दरता, भीड ।

३ वाच्य धर्म क्या है ? निम्न वाक्यो मे कौन कौन से वाच्य धर्म सम्मिलित है ?

(अ) ज्ञान ही शक्ति है।
(व) बन्दर जानवर है।
(स) एक त्रिभुज की तीन भुजाएँ होती है।
(द) सब सुधार अच्छे नही होते ।
(प) वर्ग के चारो कोण वरावर होते है।
(फ) चीता जगल में रहता है।

४ तार्किक विभाग से आप क्या समझते है ? तार्किक, भौतिक, एवं अभिधार्मिक विभाग मे अन्तर कीजिये और प्रत्येक का उदाहरण कीजिये ।

५ निम्न वाक्यो को उचित तार्किक रूप दीजिये और प्रत्येक का गुण और मात्रा निर्धारित कीजिये ।

(१) केवल प्रथम श्रेणी वाले नि शुल्क शिक्षा प्राप्त कर सकते है।
(२) मूर्खो को उनके सिवाय और कोई वडा नही समझता ।
(३) ससार में केवल कुछ ही मनुष्य सुखी है।
(४) सब विद्यार्थी परिश्रमी नही होते ।
(५) इस परीक्षा मे कोई भी उत्तीर्ण हो सकता है।
(६) पुस्तकें सर्वथा लाभदायक नही होती ।

६ रूपान्तर से आप क्या समझते है ? इसके विभिन्न भेद वताइये। उचित उदाहरणो द्वारा प्रत्येक को समझाइये ।

७ स्वार्थ अनुमान और पदार्थ अनुमान मे भेद कीजिये । और अन्तिम की पाश्चात्य न्याय वाक्य से तुलना कीजिये ।

८ हेत्वाभास क्या होता है ? निम्न की परिभाषा दीजिये और स्पष्टीकरण कीजिये ? हेत्वाभास, असिद्ध और सत्याभिचार ।

९ निम्न किन्ही चार तर्को की परीक्षा कीजिये। और यदि उनमे कोई आभास हो तो बताइये।

(अ) बुद्धिमानी आयु के साथ बढती है। आधुनिको से प्राचीन समय के पुरुष अधिक बुद्धिमान थे।

(ब) फ्रेंच बडे नम्र होते है। मार्टिन जो कि एक फ्रेंच है, इसीलिये अति नम्र है।

(स) सब मनुष्य स्वतत्र होने चाहिये क्योकि स्वतन्त्रता का हर मनुष्य को अधिकार है।

(द) सत्य की सदैव विजय होती है। यह सिद्धान्त सत्य होना चाहिये क्योकि इसकी विजय हुई है।

(य) केवल प्रथम श्रेणी वालो को प्रवेश मिल सकता है, मुझे प्रवेश मिलेगा क्योकि मैने प्रथम श्रेणी मे परीक्षा पास की है।

१९५२

१ अज्ञान से क्या समझते है ? ज्ञान का उद्भव किस प्रकार होता है ? अव्यवहित (Immediate) व्यवहित (Mediate) ज्ञान मे क्या अन्तर है ? तर्कशास्त्र का विषय किस प्रकार का ज्ञान है ?

२. किसी पद के गुण और निर्देश से आप क्या समझते है ? क्या प्रत्येक पद का गुण होता है ? क्या व्यक्तिवाचक पद गुणवाचक होते है, इसका पूर्णतया विवेचन कीजिये।

३. तार्किक परिभाषा के नियमो का उल्लेख समझाकर कीजिये और उनके भग करने से उत्पन्न होने वाले दोषो को बताइये।

४. तार्किक विभाग किसको कहते है ? निम्नलिखित विभागो की परीक्षा कीजिये।

(क) पुस्तको का धार्मिक, ऐतिहासिक और दिलचस्प पुस्तको मे विभाजन।

(ख) त्रिभुज का समद्विबाहु (Isosceles) समत्रिबाहु (Equilateral) और समकोण (Right Angled) त्रिभुजो मे विभाजन।

(ग) पदो का व्यक्तिवाचक (Singular), भावात्मक (Positive) और भाववाचक (Abstract) पदो मे विभाजन।

(घ) भारतवर्ष का बगाल, मद्रास, बबई और उत्तर प्रदेश मे विभाजन।

५ निम्नलिखित वाक्यो का तार्किक वाक्यो मे रूपान्तर कीजिये और उनका गुण और परिभाषा बतलाइये।

(क) कुछ को छोडकर सभी बन्दी बना लिये गये।

(ख) आई०एए०एस० की नौकरियो के लिये केवल स्नातक ही अधिकारी है।

(ग) इस परीक्षा को कोई भी पास कर सकता है।

(घ) कुछ बहुत मूल्यवान पुस्तके शायद ही कभी पढी जाती है।

६. निम्नलिखित वाक्यो की सगतता पर विचार कीजिये।

(क) शुद्ध हृदय मनुष्य सदैव सुखी रहते है।

(ख) कुछ शुद्ध हृदय मनुष्य सुखी रहते है।

(ग) कोई भी शुद्ध हृदय मनुष्य सुखी नही रहता है।

(घ) कुछ शुद्ध हृदय मनुष्य सुखी नही रहते है।

७ निम्नलिखित पदो की परिभाषा उदाहरण द्वारा कीजिये।

आकार, सयोग, अनुचित साध्य दोष, और भ्रामक हेतु दोष।

८ अनुमान के पाँच अवयव क्या है? न्याय वाक्य का सिलोजिस्म के तीन विषयो के साथ उनकी तुलना कीजिये। क्या उनकी संख्या कम की जा सकती है।

९ निम्नलिखित पदो की व्याख्या कीजिये :—

हेतु, साध्य व्याप्ति और उपाधि।

१० नीचे दिये हुए तर्को मे से किन्ही चार की परीक्षा कीजिये, यदि उनमे कोई आभास हो तो बताइये।

(क) गुलाब फूल है, फूल वनस्पति है, वनस्पति प्राण है, अतएव गुलाब प्राणी है।

(ख) यह नीति दोषपूर्ण थी, नही तो असफल न होती।

(ग) जो वह है, वह तुम नही हो। वह मनुष्य है। अत· तुम मनुष्य नही हो।

(घ) नैतिक उपदेश व्यर्थ है, क्योकि भले आदमियो को उनकी आवश्यकता नही है और बुरे आदमी उनको सुनते नही।

(ङ) सुकरात ज्ञानी था और केवल ज्ञानी ही सुखी होते है, अतएव सुकरात सुखी था।

(च) भगवान ने मनुष्य को बनाया, मनुष्य ने पाप को बनाया। अतएव भगवान ने पाप को बनाया।

(छ) यदि कोई अपराधी है तो वह भय से कॉपता है, यह अभियुक्त भय से काँप रहा है। अतएव यह अपराधी है।

१९५३

१ तर्कशास्त्र क्या है? तर्कशास्त्र, मनोविज्ञान और दर्शन मे भेद बताइये।

२ निम्नलिखित शब्दो मे क्या भेद है उदाहरण देते हुए बताइये।

शब्द, नाम, पद, धारणा।

३ किसी पद के निर्देश और गुण से आप क्या समझते है? वे किस प्रकार सम्बन्धित है?

४. तार्किक विभाग और परिभाषा से आप क्या समझते है? उदाहरण देकर उनका सम्बन्ध बताइये।

५. निम्नलिखित वाक्यो का रूपान्तर कीजिये और उसका प्रतिवर्त्तन परिवर्त्तन और परिवर्तित–प्रतिवर्तन तथा विपर्यय बताइये?

केवल स्नातक ही अधिकारी है।

६ न्याय वाक्य और आकार के सयोग से आप क्या समझते है? यह प्रमाणित कीजिये कि दूसरे आकार मे कोई ऐसा सयोग नही है, जिसका निगमन भावात्मक हो।

७ उभयतोपाश से आप क्या समझते है? उदाहरण देकर बताइये कि उभयतोपाश या प्रतिरोध कितने प्रकार से किया जा सकता है?

८ भारतीय न्याय मे अनुमान किसे कहते हैं ? अनुमान और पाश्चात्य याय वाक्य का भेद बताइये। दोनो मे कौन-सा अधिक स्वाभाविक है।

अथवा

हेतु किसे कहते हैं ? हेतु और हेत्वाभास मे भेद बताइये। विभिन्न हेत्वाभास का नाम लिखिये और प्रत्येक का उदाहरण दीजिये।

९ नीचे दिये हुए तर्कों मे से किन्ही चार की परीक्षा कीजिये और यदि उनमे कोई आभास हो तो बताइये।

(क) पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है और चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करता है। अतएव चन्द्रमा सूर्य की परिक्रमा करता है।

(ख) सज धज कर रहने वाले ही धनी होते हैं वह सज धज कर रहता है, अतएव वह धनी है।

(ग) पानी तरल है, बरफ पानी है अतएव बरफ तरल है।

(घ) त्रिभुज के सब कोण दो समकोणो के बराबर हैं।
यह कोण एक त्रिभुज का कोण है, अतएव यह दो समकोणो के बराबर है।

१९५४

१ विज्ञान (Science) किसे कहते है ? विज्ञान और कला (Art) मे क्या अन्तर है ? तर्कशास्त्र कला है, अथवा विज्ञान इस विषय पर अपना मत प्रकट कीजिये।

२. पद (Term) और शब्द (Word) मे क्या अन्तर है। पदो का वर्गीकरण कीजिए और प्रत्येक वर्ग की उदाहरणपूर्वक व्याख्या कीजिये।

३ तार्किक विभाग (Division) किसे कहते हैं ? उदाहरण देकर तार्किक विभाग और अन्य प्रकार के विभागो मे भेद बतलाइये।

४ परिमाण (Quantity) और गुण (Quality) की दृष्टि से वाक्यो (Proposition) के भेद कर के उनके उदाहरण देकर समझाइए।

५ निम्नलिखित वाक्यो को तार्किक वाक्यो मे परिवर्तित कीजिये और उनके गुण (Quality) तथा परिमाण (Quantity) भी लिखिए

(१) सभी चोर बदमाश नही होते।
(२) केवल स्नातक ही वोट देने के अधिकारी हैं।
(३) थोडे ही मनुष्य ख्याति प्राप्त कर सकते हैं।
(४) प्रत्येक चोर डाकू नही होता।
(५) प्राय सभी लड़के कक्षा में उपस्थित थे।

६. निम्नलिखित वाक्यो से विरुद्ध भाव (Contraposition) व्यत्यय (Inversion) और परिवर्तन (Convertion) द्वारा अनुमान निकालिये।

(१) कोई मनुष्यपूर्ण नही है।

(२) कुछ ही मनुष्य उपस्थित न थे।

७ सिद्ध कीजिये कि "Syllogism (पाश्चात्य अनुमान) की प्रथम आकृति (First figure) मे मुख्य वाक्य अवश्य सामान्य होना चाहिये। द्वितीय आकृति मे दोनो वाक्यो मे से एक वाक्य निषेधात्मक होना चाहिये।"

८. भारतीय तर्कशास्त्र के अनुसार अनुमान का क्या स्वरूप है, उसे लिखिये और उसकी तुलना पाश्चात्य अनुमान (Syllogism) से कीजिये।

अथवा

हेत्वाभास किसे कहते है? मुख्य हेत्वाभासो के नाम उदाहरण सहित लिखिये।

९. निम्नलिखित तर्को मे से किन्ही ४ की परीक्षा कीजिये और उनके दोषो को प्रकट कीजिये?

(क) सुरेश सज्जन है क्योकि वह धर्मात्मा है, और धर्मात्मा ही सज्जन होते है।

(ख) पैसेंजर गाड़ियो के सिवाय इस स्टेशन पर कोई गाड़ी नही ठहरती यह गाडी जो गई है, एक्सप्रेस के सिवाय और कोई नही हो सकती क्योकि वह इस स्टेशन पर नही ठहरी।

(ग) मेरा हाथ मेज को छूता है और मेज पृथ्वी को छूती है। अतएव मेरा हाथ पृथ्वी को छूता है।

(घ) वह अवश्य हिन्दू है, क्योकि वह भारतीय है। केवल भारतीय ही हिन्दू होते है।

(ड) चम्पा फूल है, फूल वनस्पति (Vegitable) है, वनस्प' प्राणी है। अतएव चम्पा प्राणी है।

(च) भारतीय शान्तिप्रिय राष्ट्र है, श्री जयकर भारतीय है, इसलिये वे भी शान्तिप्रिय है।